BAS0-201

सामाजिक नियंत्रण और परिवर्तन
Social Control & Change

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाई पास रोड,ट्रांसपोर्ट नगर के पास ,हल्द्वानी -२६१३९

फोन न .- 05946-261122, 261123

टॉल फ्री नं - 18001804025

फेक्स नं 05946-264232, **ई -मेल -** info@uou.ac.in

विशेषज्ञ समिति

प्रो.गिरिजा प्रसाद पांडे
निर्देशक,समाज विज्ञानं विधाशाखा
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रो. अरविन्द जोशी
बनारस हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी,उत्तरप्रदेश

प्रो. बी .मोहन कुमार
जी .बी पन्त विश्वविद्यालय
पंतनगर

प्रो.एस .एस पांडे
कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन

डॉ.दीपक पालीवाल
सहायक प्राध्यापक
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

इकाई लेखन	इकाई	इकाई लेखन	इकाई
डॉ.रेनू प्रकाश एस एस जे परिसर, अल्मोड़ा कुमाऊँ विश्वविद्यालय	1,2,3,4,5	अनिल सैनी राजकीय महाविद्यालय, पिथोरागढ़	6,7,8,9
डॉ. विनोद पांडे तीर्थथानकर विश्वविद्यालय मुरादाबाद,उत्तरप्रदेश	12,14,15	डॉ.बबित कुमार बिहान राजकीय महाविद्यालय, जखहोली, रुद्रप्रयाग	10, 11
डॉ.घनश्याम जोशी उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	13		

कॉपीराइट :@ उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण :सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशक :कुल सचिव
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यंत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

बी0ए0एस0ओ0 201

खण्ड–1

इकाई 1- सामाजिक नियंत्रण : अवधारणा, महत्व तथा प्रकार **पृष्ठ** – 5-16
Social Control: Concept, Importance & Types

इकाई 2- **परिवार** **पृष्ठ** – 17-30
Family

इकाई 3. जनरीतियाँ तथा लोकाचार **पृष्ठ** – 31-44
Folkways & Mores

इकाई 4. **धर्म एवं नैतिकता** **पृष्ठ** – 45-58
Religion & Morality

खण्ड - 2

इकाई 5. **सामाजिक परिवर्तन एवं प्रकार** **पृष्ठ** – 59-68
Social Change & Types

इकाई 6. **उद्विकास, प्रगति एवं क्रांति** **पृष्ठ** – 69-78
Social Evolution, Progress & Revolution

इकाई 7. **सामाजिक परिवर्तन के जनसंख्यात्मक कारक** **पृष्ठ** – 79-88
Demographic Factors of Social Changes

इकाई 8. सामाजिक परिवर्तन के प्रौद्योगिकीय कारक **पृष्ठ** – 89-102
Technological factors of Social change

इकाई 9. **सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारक** **पृष्ठ** – 103-114
Economic & Cultural factors of Social change

खण्ड-**3**

इकाई 10. **पश्चिमीकरण** **पृष्ठ** – 115-136
Westernization

इकाई 11. **आधुनिकीकरण** **पृष्ठ** – 137-164
Modernization

इकाई 12. औद्योगीकरण **पृष्ठ** – 165-182
Industrialization

खण्ड – 4

इकाई 13. **नगरीकरण** **पृष्ठ** – 183-200
Urbanization

इकाई 14. **धर्मनिरपेक्षीकरण** **पृष्ठ** – 201-208
Secularization

इकाई-15. **सार्वभौमिकरण** **पृष्ठ** – 209-224
Globalization

NOTES

इकाई 1

समाजिक नियंत्रण : अवधारणा, महत्व तथा प्रकार

Social Control: Concept, Importance & Types

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सामाजिक नियंत्रण की अवधारणा एवं परिभाषा

1.3 सामाजिक नियंत्रण के साधन

1.4 सामाजिक नियंत्रण के प्रकार

1.4.1 कार्ल मैनहीम के अनुसार

1.4.2 चार्ल्स कूले के अनुसार

1.4.3 किम्बाल यंग के अनुसार

1.4.4 गुरविच और मूरे के अनुसार

1.4.5 औपचारिक एवं अनौपचारिक नियंत्रण

1.5 सामाजिक नियंत्रण का महत्व

1.6 सारांश

1.7 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1.8 अभ्ययासार्थ प्रश्न

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

1. सामाजिक नियंत्रण की अवधारणा को समझ सकेंगे।

2. सामाजिक नियंत्रण के द्वारा समाज किस प्रकार किस प्रकार व्यवस्थित एवं संगठित रहता है यह जान जायेंगे।

NOTES

3. सामाजिक नियंत्रण के साधन तथा प्रकार, किस प्रकार मनुष्य को समाज से अनुकूलन रखना सिखाता है, यह स्पष्ट हो जायेगा।

4. सामाजीकरण एवं मानवीकरण में सामाजिक नियंत्रण की भूमिका समझ सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना :

जैसा कि सर्वविदित है एक अकेला मानव अपने अस्तित्व की रक्षा अकेले नही कर सकता है। जिवित रहने के लिए उसे एक दूसरे व्यक्ति, व्यक्तियों के समूह तथा एक समाज की आवश्यकता होती है। समाज में रहकर ही वह अपना सामाजीकरण करता है, और समाज में रहने योग्य बनता है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के विचार, व्यवहार एवं प्रवृत्तिया भिन्न–भिन्न होती है। कुछ प्रवृत्तियां समाज के लिए लाभदायक होती है तो कुछ हानिकारक। सामाजिक निंयत्रण एक ऐसी प्रवृत्ति है, जो व्यक्ति के व्यवहार एवं उसकी हानिकारक प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाकर उसको समाज में रहने योग्य बनाता है, और सामाजीकरण के साथ–साथ समाज हित में कार्य करने के लिए प्रेरित भी करता है।

1.2 सामाजिक नियंत्रण की अवधारणा एवं परिभाषा

मैकाइवर और पेज ने सामाजिक सम्बन्धों के जाल को समाज के रूप में परिभाषित किया है। बिना समाज के किसी भी मनुष्य के अस्तित्व की कल्पना नही की जा सकती है। मानव समूह में रहकर एक दूसरे से अर्न्तक्रिया करके सामाजीकरण करता है, तथा उस समाज में रहने योग्य बनता है। जैसा कि सभी जानते है कि बिना नियंत्रण के किसी भी व्यवस्था को व्यवस्थित रूप से सुचारू नही चलाया जा सकता है। अतः समाज को व्यवस्थित रखने के लिए सामाजिक नियंत्रण एक मुख्य अभिकरण के रूप में प्रयोग होता है।

प्राचीन काल मे परम्परागत समाज छोटे एवं सरल होते थे तथा समाज को व्यवस्थित रखना भी सरल था। जिसमें प्रमुख रूप से धर्म, रीति रिवाज, परम्परायें एवं नैतिक विचार के माध्यम से ही समाज को व्यवस्थित रखा जाता था। परन्तु धीरे–धीरे समाज जब सरल से जटिल होता गया, तो अनेक प्रकार के नियंत्रण के साधनों में भी वृद्धि होती गई। नियंत्रण के अभाव में एक व्यवस्थित एवं नियंत्रित समाज की कल्पना नही की जा सकती है। समाज को व्यवस्थित, संगठित एवं नियंत्रित रखने के लिए समाज में कुछ नियमों को लागू करना होगा जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति, उनकी अभिवृत्तियों, व्यवहार आदि पर नियंत्रण रख सके। इस प्रकार के नियमों को जो मानव व्यवहार पर

नियंत्रण रखकर समाज को संगठित एवं व्यवस्थित रखनें में अपना सहयोग देता है, सामाजिक नियंत्रण कहलाता है।

सामाजिक नियंत्रण की परिभाषा

विभिन्न समाजशास्त्रियों नें सामाजिक नियंत्रण की अलग–अलग परिभाषायें दी है। कुछ प्रमुख समाजशास्त्रियों की प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित है।

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार "सामाजिक नियंत्रण का अर्थ उस ढंग से है जिससे सम्पूर्ण सामाजि व्यवस्था में एकता बनी रहती है तथा जिसके द्वारा यह व्यवस्था एक परिवर्तनशील सन्तुलन के रूपसे कार्य करती है।" [1]

गिलिन एवं गिलिन "सामाजिक नियंत्रण सुझाव अनुनय, प्रतिरोध, उत्पीड़न तथा बल प्रयोग जैसे साधनों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज किसी समूह को मान्यता प्राप्त व्यवहार व प्रतिमानों के अनुरूप बनाता है अथवा जिसके द्वारा समूह सभी सदस्यों को अपने अनुरूप बना लेता है।" [2]

गुरविच और मूरे "सामाजिक नियंत्रण का सम्बन्ध उन सभी प्रक्रियाओं और प्रयत्नों से है जिनके द्वारा समूह अपने आंतरिक तनावों और संधर्षो पर नियंत्रण रखता है और इस प्रकार रचनात्मक कार्यो को और बढाता है।" [3]

आर्गबर्न और निमकाफ "दबाव का वह प्रतिमान जिसे समाज के द्वारा व्यवस्था बनाये रखने और नियमों को स्थापित रखने के लिए उपयोग में लाया जाता है, सामाजिक नियंत्रण कहलाता है।" [4]

आर्गबर्न और निमकाफ "व्यवस्था और स्थापित नियमों को बनाये रखने के लिए एक समाज जिस दबाव के प्रतिमान का प्रयोग करता है वह उसकी सामाजिक नियंत्रण व्यवस्था कहलाती है।" [5]

राँस "इस प्रकार सामाजिक नियंत्रण में रीति रिवाज, सामाजिक धर्म, व्यैक्तिक आदर्श, लोकमत, विधि, विश्वास, उत्सव, कला, ज्ञान, सामाजिक मूल्य आदि वे सभी तत्व आते है, जिनसे व्यक्ति पर समूह का अथवा समूह पर समाज का नियंत्रण रहता है। इससे समाज में व्यवस्था बनी रहती है और व्यक्तिगत व्यवहार की मर्यादायें निश्चित रहती हे। इसके बिना समाज का जीवन नही चल सकता।" [6]

राँस "सामाजिक नियंत्रण का तात्पर्य उन सभी शक्तियों से है जिनके द्वारा समुदाय व्यक्ति को अनुरूप बनाता है।" [7]

गुरबिच और मूरे, "सामाजिक नियंत्रण का सम्बन्ध उन सभी प्रक्रियाओं और प्रयत्नों से है जिनके द्वारा समूह अपने आन्तरिक तनावों और संधर्षो पर नियंत्रण रखता है और इस प्रकार रचनात्मक कार्यो की ओर बढता है।" [8]

ब्राइटली, "सामाजिक नियंत्रण नियोजित अथवा अनियोजित प्रक्रियाओं और ऐजेन्सियों के लिए एक सामुहिक शब्द है जिनके द्वारा व्यक्तियों को यह सिखाया जाता है, उनसे आग्रह किया जाता है अथवा उनको बाध्य किया जाता है कि वे अपने समूह की रीतियों तथा सामाजिक मूल्यों के अनुसार ही कार्य करे।"

मानहीम के अनुसार, "सामाजिक नियंत्रण उन विधियों का योग है जिनके द्वारा समाज व्यवस्था को स्थिर रखने हेतु मानवीय व्यवहार को प्रभावित करने का प्रयत्न करता है।" [9]

लैडिंस के अनुसार, "सामाजिक नियंत्रण एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति को समाज के प्रति उत्तरदायी बनाया जाता है एवं सामाजिक संगठन को निर्मित एवं संरक्षित किया जाता है।"[10]

रूक के अनुसार, "उन प्रक्रियाओं और अभिकरणों (नियोजित अथवा अनियोजित) जिनक द्वारा व्यक्तियों को समूह के रिति–रिवाजों एवं जीवन मूल्यों के समरूप व्यवहार करने हेतु प्रशिक्षित, प्रेरित अथवा बाधित किया जाता है वह सामाजिक नियंत्रण है।" [11]

किम्बाल यंग ने सामाजिक नियंत्रण को परिभाषित करते हुए कहा है कि, "किसी समूह का दूसरे के ऊपर अथवा समूह का अपने सदस्यों के ऊपर अथवा व्यक्तियों का दूसरे के ऊपर आचरण के निर्धारित नियमों का क्रियान्वित करने हेतु दमन, बल, बंधन, सुझाव अथवा अनुनय का प्रयोग है। इन नियमों का निर्धारण स्वंय सदस्यों द्वारा यथा आचरण की व्यवसायिक संहिता में अथवा किसी विशाल समविष्ट समूह द्वारा किसी अन्य छोटे समूह के नियंत्रण हेतू किया जा सकता है।" [12]

हालाकि भिन्न–भिन्न समाजशास्त्रियों ने सामाजिक नियंत्रण की अलग–अलग परिभाषायें दी है किन्तु यह कहना कोई अतिश्योक्ति नही होगी कि लगभग सभी समाजशास्त्रियों ने सामाजिक नियंत्रण को समाज को व्यवस्थित एवं संगठित रखने की एक प्रणाली बताया है। जिससे मानव समूह समाज द्वारा स्वीकृत अनेक नियमों एवं रीति रिवाजों के माध्यम से व्यक्तियों के व्यवहार को नियंत्रित करता है तथा समाज को संधर्ष एवं विधटन से बचाने के लिए नियंत्रित व मर्यादित व्यवहार करने को बाध्य करता है। जिससे समाज संतुलित रहता है तथा व्यक्ति के ऊपर समूह अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रण रख सकता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति समूह द्वारा बनाये गये नियमों के आधीन

स्वप्रगति परीक्षण

1. सामाजिक नियंत्रण की परिभाषा मेकाइबर एवं पेज के अनुसार लिखें।
2. सामाजिक नियंत्रण के बारे में ब्राइटली के विचार क्या हैं ?

रह कर ही उचित ढंग से कार्य करने को बाध्य होता है और प्रत्येक कार्य दूसरे व्यक्ति के हितों को ध्यान में रखकर करने का प्रयत्न करता है।

1.3 सामाजिक नियंत्रण के साधन

सर्वविदित है कि समाज को संगठित रखने में सामाजिक नियंत्रण की एक प्रमुख भूमिका होती है। समाज के कई ऐसे नियम या अभिकरण है जो समाज में सामाजिक नियंत्रण को बनाये रखते है। ये ऐसे साधन है जो व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करके समूह के मूल्यों नियमों एचं रिति रिवाजों का पालन करने के लिए बाध्य करते है। सामाजशास्त्रियों ने सामाजिक नियंत्रण के अलग–अलग साधन बताये है।

- ई0 ए0 रॉस ने जनमत, कानून, प्रथा, धर्म, नैतिकता, लोकाचार तथा लोकरितीयों को सामाजिक नियंत्रण का प्रमुख साधन माना है।
- ई0 सी0 हेज ने सामाजिक नियंत्रण के रूप में शिक्षा, परिवार, सुझाव, अनुकरण, पुरूष्कार एवं दण्ड प्रणाली को नियंत्रण का सबसे प्रभावी साधन एवं महत्वपूर्ण अभिकरण माना है।
- लूम्ले ने सामाजिक नियंत्रण के साधन को दो वर्ग बल पर आधारित तथा प्रतीकों पर आधारित में विभक्त किया है। जिसमें शाररिक बल तथा पुरूष्कार, प्रशंसा, शिक्षा, उपहास, आलोचना, धमकी, आदेश तथा दण्ड सम्मिलित है।
- लूथर एल0 बर्नाड ने सामाजिक नियंत्रण के साधन को अचेतन एवं चेतन के रूप में बाटा है। अचेतन साधनों मे प्रथा, रिति रिवाज एवं परम्परायें है। चेतन साधन में दण्ड, प्रतिकार तथा धमकी आदि है।[13]

1.4 सामाजिक नियंत्रण के प्रकार

सामाजिक नियंत्रण की परिभाषा से स्पष्ट है कि, व्यक्ति की पाशविक प्रवृतियों पर अंकुश लगाकर सामाजीकरण एवं मानवीकरण करके समाज को व्यवस्थित एवं संगठित रखना ही सामाजिक नियंत्रण है। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों, आदतों एवं स्वभाव के कारण प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है। अतः इसी विभिन्नता के चलते सामाजिक नियंत्रण के स्वरूप में भी विभिन्नता आती जाती है। कुछ व्यक्तियों को प्रत्यक्ष तथा कुछ को परोक्ष रूप से नियंत्रित करने की आवश्यकता होती है। इस आधार पर प्रत्येक समाज तथा व्यक्ति की नियंत्रण की प्रकृति भी भिन्न होती है। विभिन्न समाजशास्त्रियों ने सामाजिक नियंत्रण के स्वरूप को अनेकों प्रकार से वर्गीकृत किया है।

1.4.1 कार्ल मैनहीम ने सामाजिक नियंत्रण के दो प्रकार बताये है।

- प्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण।
- अप्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण।

- **प्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण**

प्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण प्रायः प्राथमिक समूहो में पाया जाता है। जैसे परिवार, पड़ोस तथा खेल समूह। यह नियंत्रण व्यक्ति पर उन व्यक्तियों द्वारा किये गये व्यवहार तथा प्रक्रियाओं का प्रभाव है जो उसके सबसे करीबी हो। क्योंकि व्यक्ति पर समीप रहने वाले व्यक्ति के व्यवहार का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। यह नियंत्रण्स प्रशंसा, निन्दा, आलोचना, सुझाव, पुरूस्कार, आग्रह तथा सामाजिक बहिष्कार आदि के द्वारा लगाया जाता है तथा प्रत्यक्ष रूप से लगाया गया सामाजिक नियंत्रण का प्रभाव स्थायी होता है तथा व्यक्ति इसको स्वीकार भी करता है।

- **अप्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण**

अप्रत्यक्ष या परोक्ष सामाजिक नियंत्रण व्यक्ति पर द्वितियक समूहो द्वारा लगाये गये नियंत्रण से है। विभिन्न समूहो, संस्थाओं, जनमत, कानूनों तथा प्रथाओं द्वारा व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित कर एक विशेष प्रकार का व्यवहार करने को बाध्य किया जाता है। व्यक्ति इस नियंत्रित व्यवहार को धीरे–धीरे अपनी आदतों में शामिल कर लेता है यही अप्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण है। समाज एवं समूह को व्यवस्थित एवं संगठित रखने के लिए अप्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण का विशेष महत्व है तथा यह समूह के कल्याण में अपनी विशेष भूमिका का निर्वहन करते है।

1.4.2 चार्ल्स कूले ने सामाजिक धटनाओं के आधार पर सामाजिक नियंत्रण के प्रकारों को स्पष्ट किया है। कूले के अनुसार सामाजिक धटनायें दो प्रकार से समाज को नियंत्रित करती है।

चेतन नियत्रण–

मनुष्य अपने जीवन में अपने समूह के लिए कई कार्य तथा व्यवहार जागरूक अवस्था में सोच समझ कर करता है। यह चेतन अवस्था कहलाती है। जागरूक अवस्था में किया गया कोई भी कार्य चेतन नियंत्रण कहलाता है।

NOTES

अचेतन नियंत्रण–

प्रत्येक समाज या समूह की अपनी संस्कृति, प्रथायें, रीति रिवाज, लोकाचार, परम्परायें तथा संस्कारों से निरन्तर प्रभावित होकर उनके अनुरूप ही समाज व समूह के प्रति व्यवहार करता है, इन प्रथाओं रीति रिवाजों या धार्मिक संस्कारों के प्रति व्यक्ति अचेतन रूप से जुड़ा रहता है और जीवन पर्यन्त वह उसकी अवहेलना नहीं कर पाता जो समाज व समूह को नियंत्रित करने में अपनी प्रमुख भूमिका निभाते है। यह अचेतन नियंत्रण कहलाता है।

1.4.3 किम्बाल यंग ने सामाजिक नियंत्रण को सकारात्मक नियंत्रण एवं नकारात्मक नियंत्रण दो भागों में विभाजित किया है।

सकारात्मक नियंत्रण–

सकारात्मक नियंत्रण में पुरूस्कारों के माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित किया जाता है। प्रोत्साहन या पुरूस्कार व्यक्ति की कार्यक्षमता को तो बढाता ही है साथ ही अच्छे कार्यो के लिए प्रेरित भी करता है। प्रथाओं और परम्पराओं का पालन करने की कोशिश करता है जो समाज उसे एक सम्मानजनक स्थिति प्रदान करता है। उदाहरण के लिए स्कूल कालेजों में विद्यार्थियों को तथा समाज में उत्कृष्ट कार्य करने के व्यक्ति को पुरूस्कार द्वारा सम्मानित करना।

नकारात्मक नियंत्रण–

जहां एक ओर समाज में प्रोत्साहन या पुरूस्कारों द्वारा व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित किया जाता है वही दूसरी ओर दण्ड के माध्यम से भी व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित किया जाता है। समाज द्वारा स्वीकृत नियमों, आदर्शो, मूल्यों तथा प्रथाओं का उल्लधंन करने पर व्यक्ति को अपराध के स्वरूप के आधार पर सामान्य से मृत्यु दण्ड तक दिया जाता है। यही कारण है कि व्यक्ति आदर्शो के विपरीत आचरण नही करते या करने से डरतें है। इस प्रकार के नियंत्रण को नकारात्मक नियंत्रण कहते है। जैसे कि जाति के नियमों के विरूद्व आचरण करने वाले व्यक्ति को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है।

1.4.4 गुरविच और मूरे ने सामाजिक नियंत्रण को संगठित, असंगठित, सहज नियंत्रण तीन भागों में विभाजित किया है।

संगठित नियंत्रण–

इस प्रकार के निंयंत्रण में लिखित नियमों के द्वारा व्यक्तियों के व्यवहारों को नियंत्रित करकिया जाता है। जैसे– राज्य के कानून इसके उदाहरण है।

स्वप्रगति परीक्षण

3. कार्ल मैनहीम ने सामाजिक नियंत्रण के कौन–से दो प्रकार बताये हैं ?

असंगठित नियंत्रण–

विभिन्न प्रकार के संस्कारों, प्रथाओं, लोकरीतियां तथा जनरीतियों द्वारा स्थापित नियंत्रण असंगठित नियंत्रण कहलाता है।

सहज नियंत्रण–

प्रत्येक व्यक्ति की अपनी आवश्यकतायें, नियम, मूल्य, विचार एवं आर्दश होते है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समय पर निर्भर रहना पड़ता है और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यक्ति स्वीकृत नियमों के अन्दर रहकर ही करता है। इस प्रकार का नियंत्रण सहज सामाजिक नियंत्रण कहलाता है। जैसे– धार्मिक रीति रिवाजों का पालन सहज सामाजिक नियंत्रण का उदाहरण है।

1.4.5 औपचारिक तथा अनौपचारिक नियंत्रण–

औपचारिक नियंत्रण–

औपचारिक नियंत्रण के अन्तर्गत समाज में स्थापित एक ऐसी व्यवस्था जिसकी स्थापना राज्य तथा समाज मे व्याप्त औपचारिक संगठनों द्वारा बनाये गये स्वीकृत नियमों के आधार पर समूह के व्यक्तियों के व्यवहार पर नियंत्रण रखना होता है। इस प्रकार के नियमों का उल्लधंन करने पर दण्ड व्यवस्था का भी प्राविधान रखा जाता है। जैसे – कानून, न्यायपालिका, पुलिस, प्रचार प्रसार संगठन आदि।

अनौपचारिक नियंत्रण–

अनौपचारिक नियंत्रण में किसी प्रकार के लिखित कानूनों की आवश्यकता नही होती बल्कि समाज में व्याप्त स्वीकृत नियम, आर्दश,मूल्य, जनरीतियां, प्रथायें, लोकाचार तथा नैतिक नियमों के आधार पर नियंत्रण रखा जाता है।

बोध प्रश्न-1.

1. **चेतन व अचेतन नियंत्रण का उल्लेख किसने किया है**

(a) **श्रीनिवास** (b) **कुले एवं बनार्ड**

(b) **रोस** (c) **ग्रीन**

2. **"सामाजिक नियंत्रण एक प्रक्रिया है" यह किसने कहा**

(a) **रोस** (b) **ग्रीन**

(c) **पी .एच .लेंडिस** (d) **मर्टन**

3. **निम्नांकित में से सामाजिक नियंत्रण का औपचारिक साधन कौन सा है**

(a) **राज्य** (b) **सरकार**

(b) **कानून** (d) **उपयुक्त सभी**

NOTES

1.5 सामाजिक नियंत्रण का महत्व

सभ्यता के आरम्भिक स्तर पर जब समाज का स्वरूप अपेक्षाकृत छोटा होता था तब समाज को नियंत्रित करना भी सरल था। समूह का एक मुखिया होता था और समूह के प्रत्येक सदस्य मुखिया के आदेशों का पालन करता थां। कार्यात्मक विभाजन के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के अपने अलग– अलग कार्य होते थे जिससे व्यक्ति का व्यवहार नियंत्रित रहता था। जिसके परिणाम स्वरूप समाज को नियंत्रित एवं व्यवस्थित रखना सरल था। जैसे–जैसे सभ्यता का विकास होता चला गया सामाजिक जीवन विभिन्न समूहों एवं संस्थाओं में परिवर्तित होता गया जिससे समाज सरल से जटिल होता जा रहा है। जैसा कि सर्वविदित है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है। यहा तक कि एक समूह के आचार विचार भी दूसरे समूह से भिन्न होते है। सामाजिक नियंत्रण के द्वारा जहां एक ओर व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित रखा जाता है वहीं दूसरी ओर समाज को व्यवस्थित एवं संतुलित रखा जाता है। सामाजिक नियंत्रण के महत्व को निम्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

- **समाज का संगठन एवं व्यवस्था**

  सामाजिक नियंत्रण के द्वारा समाज को व्यक्तियों के व्याहारों को नियंत्रित रखकर समाज को संगठित एवं व्यवस्थित बनाया जाता है।

- **स्थायित्वता–**

  समाज के प्रत्यक समूह तथा संगठन को नियंत्रित कर संगठन में स्थायित्वता लाई जाती है।

- **सहयोग एवं एकता–**

  समाजिक नियंत्रण से व्यक्ति समूह एवं संगठन मे सहयोग एवं एकता की भावना का विकास किया जाता है। व्यवहारों पर नियंत्रण रखकर प्रत्येक व्यक्ति समाज में मिल जुल रहता है। व्यक्ति के जीवन में जीवन यापन हेततु सहयोग एवं एकता अति आवश्यक तत्व है।

- **संस्कृति एवं परम्परा की रक्षा–**

  समाजिक नियंत्रण के अन्तर्गत व्यक्ति को स्वीकृत नियमों आर्दशों एवं मूल्यों के अनुसार ही व्यवहार करने को बाध्य किया जाता है। जिससे संस्कृति, प्रथायें एवं परम्परायें निरन्तर चलती रहती है।

- **सामाजिक हित सर्वोपरि–**

  औपचारिक एवं अनौपचारिक नियंत्रण के भय से समूह में प्रत्येक व्यक्ति समाज व समूह द्वारा स्वीकृत नियमों के अनुसार ही व्यवहार करता है। जिससे प्रत्येक व्यक्ति कोई भी कार्य व्यक्तिगत हित न मानकर सामाजिक हित को सर्वोपरि मानता है।

- **सामाजिक एवं मानसिक सुरक्षा–**

  सामाजिक नियंत्रण का महत्व इस दृष्टिकोण से भी समझा जा सकता है कि यह व्यक्ति को सामाजिक एवं मानसिक सुरक्षा प्रदान करता है। जिससे व्यक्ति समाज को संगठित एवं व्यवस्थित रखने मे अपना पूर्ण योगदान देते है तथा अपना संर्वागीण विकास भी करता है।

1.6 सारांश

इस प्रकार कहा जा सकता है। कि सामाजिक नियंत्रण के आभाव में कोई भी समाज न तो संगठित एवं व्यवस्थित रह सकता है। और ना ही सुरक्षित रह सकता है। जैसा कि हम सभी जानते है कि बिना समाज के हम किसी भी मानव क अस्तित्व की कल्पना नही कर सकते है। व्यक्ति संर्वागीण विकास के लिए एक सभ्य समाज का होना आवश्यक होता है। अतः सभ्य समाज को संगठित एवं व्यवस्थित सामाजिक नियंत्रण के द्वारा ही रखा जा सकता है। प्राचीन समय में जब समाज का आकार छोटा होता था तब मर्यादा, धार्मिक विश्वास एवं नैतिक नियमों की प्रधानता रहती थी और संस्कृति एवं धार्मिक विश्वास के आधार पर व्यक्ति के व्यवहार नियंत्रित रहते थे। कालान्तर में जैसे–जैसे सभ्यता का विकास होता चला गया वैसे–वैसे समाज विस्तृत एवं जटिल होते चले गये साथ ही प्रत्यक्ष नियंत्रण भी आवश्यक हो गया। जिससे पुलिस, कानून, न्यायलयों एवं विभिन्न संस्थाओं द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों पर नियंत्रण रखा जाता है। अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामाजिक नियंत्रण समाज, सामाजिक सम्बन्धों, व्यवस्था एवं संगठन के लिए आवश्यक है जो समाज को बनाये रखने में अपना पूर्ण सहयोग देता है।

1.7 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1. **मैकाइवर एवं पेज** के अनुसार "सामाजिक नियंत्रण का अर्थ उस ढंग से है जिससे सम्पूर्ण सामाजि व्यवस्था में एकता बनी रहती है तथा जिसके द्वारा यह व्यवस्था एक परिवर्तनशील सन्तुलन के रूपसे कार्य करती है।"

2. **ब्राइटली**, "सामाजिक नियंत्रण नियोजित अथवा अनियोजित प्रक्रियाओं और ऐजेन्सियों के लिए एक सामुहिक शब्द है जिनके द्वारा व्यक्तियों को यह सिखाया जाता है, उनसे आग्रह किया जाता है अथवा उनको बाध्य किया जाता है कि वे अपने समूह की रीतियों तथा सामाजिक मूल्यों के अनुसार ही कार्य करे।"

3. कार्ल मैनहीम ने सामाजिक नियंत्रण के दो प्रकार बताये है।

   - प्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण।
   - अप्रत्यक्ष सामाजिक नियंत्रण।

1.8 अभ्यार्साथ प्रश्नः

1. सामाजिक नियंत्रण का क्या अर्थ है? सामाजिक नियंत्रण के उद्देश्यों को स्पष्ट करें।
2. सामाजिक नियंत्रण की परिभाषा लिखे तथा विभिन्न प्रकारों का संक्षेप में विवेचना किजिए।
3. सामाजिक नियंत्रण की अवधारणा क्या है? सामाजिक नियंत्रण के महत्व अथवा उपयोगिता को स्पष्ट करे।
4. सामाजिक निंत्रत्रण मे प्राथमिक समूहो (परिवार, क्रीड़ा समूह, पड़ोस) की क्या भूमिका है?
5. सामाजिक नियंत्रण मानव समाज के लिए आवश्यक है। स्पष्ट किजियें।
6. क्या सामाजिक नियंत्रण व्यक्ति के लिए आवश्यक है? यदि हा तो विस्तृत रूप से व्यख्या करे।

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

- मैकाइवर एवं पेज, "सोसाइटी" पे0न0 8–137
- गिलिन एवं गिलिन, "कल्चरल सोसियोलोजी" पे0न0 693
- गुरविच और मूरे, "बीसवी सदी का समाजशास्त्र" पेज नं0 287–288
- आर्गवर्न और निमकाफ, "ए हेण्डबुक आफ सोसियोलाजी"
- आर्गवर्न और निमकाफ, "ए हेण्डबुक आफ सोसियोलाजी" पेज नं0 182
- राँस – "सोसियल कन्ट्रोल" (1901)
- राँस – "सोसियल कन्ट्रोल" (1901)
- गुरविच और मूरे, "बीसवी सदी का समाजशास्त्र" पेज नं0 287–288
- डा0 जी0के0 अग्रवाल, "सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन" 2000
- डा0 जी0के0 अग्रवाल, "मानव समाज" 2000

NOTES

- डा0 रामनाथ शर्मा तथा डा0 राजेन्द्र कुमार शर्मा, "सामाजिक परिवर्तन और समाजिक नियंत्रण" 1996
- विद्याभूषण तथा सचदेव, "समाजशास्त्र के सिद्वान्त" 2010
- 'मानहीम, "सिस्टेमेटिक सोसियोलोजी" पेज नं0 125
- लैडिंस, "सोसियल कन्ट्रोल" पेज0 नं0 04
- रूक, "सोसियल कन्ट्रोल" पेज0 नं0 03
- यंग, "एन इन्ट्रोडक्ट्री सोसियोलोजी" पेज0 ने0 520
- विद्याभूषण तथा सचदेव, "समाजशास्त्र के सिद्वान्त" पेज0 नं0 570–571

NOTES

इकाई 2

परिवार

Family

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 परिवार की अवधारणा और परिभाषा

2.3 परिवार की विशेषताएं

2.4 परिवार के प्रकार

2.4.1 संबंधों पर आधारित परिवार

2.4.2 वंशावली या सत्ता पर आधारित परिवार

2.5 परिवार के कार्य

2.6 सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में परिवार का महत्व

2.7 सारांश

2.8 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

2.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात–

1. परिवार की अवधारणा स्पष्ट हो जायेगी।
2. सामाजिक नियंत्रण में परिवार की भूमिका स्पष्ट हो जायेगी।
3. परिवार के प्रकार तथा उसमें होने वाले परिवर्तनों के बारे में जान सकेंगे।
4. समाज के प्रत्येक समूह में परिवार किस प्रकार कार्य करता है, यह जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही परिवार सामाजिक संगठन की प्राथमिक एवं मौलिक इकाई के रूप में महत्वपूर्ण रहा है। जैसे कि सर्वविदित है समाज के आभाव में मानव के अस्तित्व की कल्पना नही की जा सकती है। अतः व्यक्ति के अस्तित्व की रक्षा, उसके मानवीकरण एवं सामाजीकरण के लिए समाज की आवश्यकता होती है। अरस्तु के अनुसार समुदाय परिवारों का संगठन है, तथा मैकाइवर और पेज ने भी परिवार को अन्य सामाजिक संगठनों का केन्द्र कहा है। बीसन्स और बीसन्स ने परिवार के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि परिवार मौलिक और सार्वभौमिक संस्था है, उस पर प्रत्येक समाज का अस्तित्व निर्भर है। सामाजिक नियंत्रण के अभिकरण के रूप में यदि देखे तो परिवार सबसे ज्यादा व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित रखने वाला प्रभावपूर्ण अभिकरण रहा है। प्राथमिक समूह में परिवार ही एक ऐसा प्राथमिक समूह है जहां व्यक्ति का सामाजीकरण होता है। व्यक्ति परिवार में ही रहकर अपनी संस्कृति, रीति–रिवाज, भाषा, धार्मिक विश्वास एवं प्रथाओं को सीखता है तथा अपने को उस सभ्य समाज के अनुकूल बनाता है, साथ ही अपने नियंत्रित व्यवहार से समाज के संगठन में अपना योगदान देता है।

2.2 परिवार का अर्थ एवं परिभाषा

परिवार शब्द का तात्पर्य प्रायः ऐसे लोगो के समूह से है, जो आपस में सेवाभाव से रहते है। शाब्दिक रूप से परिवार अंग्रेजी शब्द family तथा लेटिन शब्द Famulur से बना है। जिसका अर्थ भी सेवक ही होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक ऐसा प्राथमिक समूह जिसमें समूह का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे के साथ हम की भावना से बधें रहते है, और समूह के सदस्यों के प्रति सेवा भाव से एक दूसरे के साथ रहते है। प्रत्येक समाज की अपनी एक अलग संस्कृति, कार्य, धार्मिक संस्कार व रीति रिवाज होते है। अतः आकार औकार्यात्मक विभाजन के आधार पर अलग–अलग समाजों में इसके रूप भिन्न–भिन्न होते है। यही कारण है कि विभिन्न समाजशास्त्रियों ने परिवार को निम्न् प्रकार से परिभाषित किया है।

मैकाइवर और पेज ने परिवार को परिभाषित करते हुए कहा है कि, "परिवार ऐसा समहू है जो यौन सम्बन्धों पर आश्रित है, तथा इतना छोटा और शक्तिशाली है कि सन्तान के जन्म और पालन पोषण की व्यवस्था की क्षमता रखता है।"

मैकाइवर और पेज ने इस परिभाषा में यौन संबन्धों को पश्चिमी सभ्यता के समान परिवार का एक प्रमुख तत्व माना है।

किग्सलें डेविस के अनुसार, "परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिनके एक दूसरे के प्रति सम्बन्ध संगोत्रता पर आधारित होते है और जो इस प्रकार एक दूसरे के रक्त सम्बन्धी होते है।"

बर्गेस और लॉक के कथनानुसार, "परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो विवाह, रक्त अथवा गोद लेने के सम्बन्धों द्वारा संगठित है तथा एक छोटी सी गृहस्थी का निर्माण करते है, और पति–पत्नी, माता–पिता, पुत्र–पुत्री, भाई तथा बहन के रूप में एक दूसरे से अर्न्तक्रियाएं करते तथा एक सामान्य संस्कृति का निर्माण तथा देख–रेख करते है।"

आगबर्न और निमकाफ के अनुसार, "परिवार लगभग एक स्थायी समिति है, जो पति–पत्नी से निर्मित होती है, चाहे उनके सन्तान हो अथवा न हो।"

बीसन्स के अनुसार, "परिवार की परिभाषा एक दृष्टिकोण से यह कि जा सकती है कि, एक स्त्री बच्चे सहित तथा एक पुरूष उनकी देख–रेख हेतू" हो तो परिवार कहलाता है।

क्लेअर ने परिवार को परिभाषित करते हुए कहा है कि, परिवार से हम सम्बन्धों की वह व्यवस्था समझते है जो माता पिता और उनकी संतानों के बीच पाया जाता है।

इसी प्रकार इलियट तथा मैरिल ने भी परिवार को पति, पत्नी एवं बच्चों से निर्मित एक जैविक सामाजिक इकाई माना है।

अमेरिकन ब्यूरो आफ सेन्सस के अनुसार परिवार रक्त, विवाह तथा गोद लेने के आधार पर सम्बन्धित दो या दो से अधिक व्यक्तियों का समूह है, इन सभी व्यक्तियों को एक परिवार का सदस्य समझा जाता है।

आरनाल्ड ग्रीन ने भी परिवार को एक संस्थायीकृत सामाजिक समूह माना है, जिस पर जनसंख्या प्रस्थापन का भार होता है।

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो रक्त संबंधी, विवाह संबंधी तथा गोद लिए गये व्यक्तियों के सम्बन्धों पर आधारित होता है, और एक स्थायी समिति के आधार पर सदस्यों की सुरक्षा तथा आवश्यकताओं की भी पूर्ति करता है।

2.3 परिवार की मुख्य विशेषतायें

यद्यपि विभिन्न समाजों में कार्य तथा स्वरूप के आधार पर अलग–अलग तरह के परिवार पाये जाते है, परन्तु आकार एंव स्वरूप में विभिन्नतायें होने के पश्चात भी सभी परिवारों की कुछ सामान्य मुख्य विशेषतायें होती है जो निम्नवत् है।

1. **सीमित आकार–** सामान्यतया सभी समाजों में परिवार का आकार अपेक्षाकृत सीमित होता है। परिवार में जन्म तथा विवाह के आधार पर ही सदस्यों की संख्या का निर्धारण होता है।

2. **यौन सम्बन्धों पर आधारित–** प्रत्येक परिवार का अस्तित्व प्रायः एक पुरूष एवं स्त्री के परस्पर यौन सम्बन्धों पर आधारित होता है। ये सम्बन्ध जीवन पर्यन्त बने रहते है।

3. **विवाह सम्बन्धों पर आधारित–** यौन सम्बन्ध विवाह संस्था द्वारा स्थापित एवं सम्पन्न किये जाते है। जिनके प्रक्रिया एवं स्वरूप अलग–अलग हो सकते है। जीवन साथी का चयन माता पिता या संबंधित लड़के या लड़की द्वारा किया जा सकता है।

4. **उत्तरदायित्व की भावना–** परिवार में प्रत्येक व्यक्ति में **"हम की भावना"** होती है। अपने निजी हितों को भूलकर प्रत्येक व्यक्ति परिवार कल्याण में कार्य करना अपना प्रमुख उत्तरदायित्व समझता है।

5. **सर्वव्यापी संस्था–** परिवार एक सर्वव्यापी संस्था है, क्योंकि समाज का आकार व स्वरूप चाहे कैसा भी हो परन्तु परिवार की कार्य प्रणाली सभी समाजों में प्रायः समान रूप की होती है।

मैकाइवर और पेज ने परिवार की आठ विशेषताओं का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित है। [6]

1. **सर्वव्यापकता–** सभी सामाजिक संस्थाओं और समितियों में परिवार सबसे अधिक सर्वव्यापक है। स्वरूप तथा कार्य में परिवर्तन होने के बाद भी यह समाप्त नही होता है। एडरसन ने भी इस सम्बन्ध में कहा है कि, "परिवार का एक रूप वह है जिसमें हम जन्म लेते है, तथा दूसरा रूप वह है जिसमें हम स्वयं बच्चों को जन्म देते है।" परिवार की सार्वभौमिकता इसी बात से स्पष्ट हो जाती है कि हम में से कोई भी व्यक्ति ऐसा नही है जो परिवार के इन दोनों स्वरूपों में से एक का भी सदस्य ना हो। [7]

2. **भावनात्मक आधार–** मैकाइवर तथा पेज कहते है कि परिवार के सभी सदस्य भावनात्मक आधार पर समान रूप से मिल–जुल कर कार्य करते है। सभी सदस्यों में हम की भावना पायी जाती है तथा परिवार का हित सर्वोपरि होता है, जो प्रत्येक सदस्य को एक दूसरे के साथ बाधें रखता है।

3. **रचनात्मक प्रभाव–** जैसा कि हम जानते है कि, परिवार का महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि, यहा परिवार के सभी सदस्यों के हितों को समान महत्व दिया जाता है, तथा बच्चों पर परिवार के नियमों भाषा तथा संस्कृति का एक स्थायी प्रभाव पड़ता है। जो जन्म से लेकर मृत्यु तक बना रहता है।

4. **छोटा आकार–** परिवार की एक मुख्य विशेषता यह है कि, दूसरे समूहों की तुलना में इसका आकार काफी छोटा होता है। जन्म विवाह और निकट सम्बन्धियों के द्वारा परिवार की स्थापना होती है तथा वर्तमान समय में औद्योगीकरण के कारण परिवार का आकार और अधिक सिमित हो गया है।

5. **सामाजिक ढांचे मे केन्द्रीय स्थिति–** सम्पूर्ण सामाजिक ढाचें में परिवार का स्थान केन्द्रीय होता है। समाज की केन्द्रीय इकाई होने के कारण इसका एक महत्वपूर्ण स्थान है। अरस्तू ने समुदाय को परिभाषित करते हुए इसे परिवारों का संकलन कहकर संबोधित किया था। अर्थात परिवार ही सामाजिक ढांचे का आधार हैं।

6. **सदस्यों के असिमित उत्तरदायित्व–** परिवार एक ऐसा समूह है जहां व्यक्ति अपने हितों को ध्यान में न रखकर पूरे परिवार के हितों को ध्यान में रखकर कार्य करता है। परिवार के सदस्यों के लिए त्याग की भावना सर्वोपरि होती है। एसी स्थिति में परिवार का प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्य के प्रति असिमित उत्तरदायित्व की भावना रखता है। यहां पर निजी हितों की अपेक्षा पारिवारिक हितों और कर्तव्यों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

7. **सामाजिक नियमन का आधार–** परिवार के अपने कुछ निश्चित नियम होते है, जो परिवार के प्रत्येक सदस्य के व्यवहार पर नियंत्रण रखते है जिससे व्यक्ति का सामाजिक जीवन नियंत्रित रहता है।

8. **परिवार का स्थायी व अस्थायी स्वभाव–** मैकाइवर ने परिवार की अंतिम विशेषता में परिवार के दो रूपों का उल्लेख किया है। इसका तात्पर्य यह है कि परिवार एक समिति भी है और संस्था भी। एक समिति के रूप में परिवार पति–पत्नी बच्चों अथवा कुछ अन्य व्यक्तियों का समूह है। इस रूप में परिवार अस्थायी है क्योंकि, विवाह विच्छेद, मृत्यु, विवाह अथवा नये शिशु के जन्म के कारण परिवार के आकार में परिवर्तन हो जाना स्वभाविक है। यदि परिवार के नियम और कार्यप्रणालियों को व्यवस्था के रूप में देखा जाये तो परिवार एक संस्था होगी और संस्था के रूप में परिवार स्थायी है। पति–पत्नी अथवा किसी

NOTES

अन्य सदस्य के ना रहने पर भी परिवार के नियम सदैव बने रहते है। इस प्रकार परिवार का रूप स्थायी भी है और अस्थायी भी है।

बोध प्रश्न

1. 'Family' **शब्द का उद्गम** 'Famulus' **शब्द से हुआ है** Famulus **शब्द किस भाषा का है**

   (a) **अमेरिकन** (b) **लेटिन**

   (c) **उर्दू** (d) **अंग्रेजी**

2. "परिवार लगभग एक स्थायी समिति है, जो पति–पत्नी से निर्मित होती है, चाहे उनके सन्तान हो अथवा न हो।"**यह परिभाषा किसने दी**

   (a) आगबर्न और निमकाफ (b) किग्सलें डेविस

   (c) मैकाइवर और पेज (d) आरनाल्ड ग्रीन

2.4 परिवार के प्रकार

जैसा कि हम जानते है कि समाज में अलग–अलग तरह की संस्कृति एवं धार्मिक संस्कार पाये जाते है। यही कारण है कि प्रत्येक समूह के अलग–अलग संस्कृति होने के कारण इनके पारिवारिक संगठन में भी अन्तर पाया जाता है। इस प्रकार परिवार के वर्गीकरण को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

2.4.1 सम्बन्धों पर आधारित परिवार

रक्त सम्बन्धी परिवार– एक परिवार में पति–पत्नी और उनके बच्चे जो आपस में रक्त सम्बन्धी होते है और जन्म के द्वारा परिवार के दूसरे सदस्यों से सम्बन्धित होते है अथवा दम्पति द्वारा गोद लिए गये हो। ऐसे परिवार रक्त संबंधी परिवार कहलाते है।

विवाह सम्बन्धी परिवार– पति और बच्चों के द्वारा बने हुए परिवार विवाह सम्बन्धी परिवार कहलाते है। जैसा कि हिन्दु धर्म में विवाह को एक पवित्र धार्मिक संस्कार माना जाता है। अतः परिवार दो व्यक्तियों को मिलाने वाला ना मानकर दो परिवारों को मिलाने वाला समझा जाता है।

प्राथमिक या एकाकी परिवार– समाज में आकार के दृष्टिकोण से प्राथमिक या एकाकी परिवार सबसे छोटी इकाई मानी जाती है। हैरिस ने इस सम्बन्ध में कहा है कि

"एक एकाकी परिवार उन व्यक्तियों का छोटा समूह है, जो जैविकीय भूमिका निभाने के अतिरिक्त एक दूसरे के प्रति संस्थागत सामाजिक दायित्वों को पूरा करते है तथा ऐसा करने के साथ ही उन विश्वासों और मूल्यों का पालन करते है जिनकी उनसे परिवार के अन्तगर्त पूरा करने की आशा की जाती है।" [8]

विस्तृत या संयुक्त परिवार– विस्तृत या संयुक्त परिवार ऐसे परिवार को कहा जाता है जिसमें कई एकल परिवारों के मिलने से उस परिवार का आकार बढ जाता है। विस्तृत परिवार में अनेक नाते–रिश्तेदार होते है। ये रिश्तेदार पति अथवा पत्नी दोंनों के परिवारों से हो सकते है। इस प्रकार के परिवार मध्य भारत की अनेक जनजातियों में पाये जाते है।

2.4.2 वंशावली या सत्ता पर आधारित परिवार

इस आधार पर परिवार को दो भागों मे बाटां जा सकता है।

मातृसत्तात्मक या मातृवंशीय परिवार– ऐसे परिवार जहॉ परिवार के समस्त दायित्वों का निर्वहन एक स्त्री द्वारा किया जाता है। ऐसे परिवार को मातृसत्तात्मक परिवार कहा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि परिवार की सत्ता प्रमुख रूप से महिला के हाथ में होती है। ऐसे परिवारों में वंश परम्परा एक स्त्री के नाम पर चलती है और बच्चे प्रायः अपनी माता के कुल या वंश के नाम ग्रहण करते है। भारत में आज भी बहुत सी जनजातियों में ऐसे वंश या परिवार पाये जाते है। जिनमे नायर, खासी, व थारू जनजातियां प्रमुख है।

पितृसत्तात्मक या पितृवंशीय परिवार– पितृसत्तात्मक परिवार या पितृ वंशीय परिवार में परिवार की पूर्ण सत्ता तथा अधिकार पिता या पति के हाथ मे होते है। ऐसे परिवारों का वंश पिता के नाम से चलता है और बच्चे अपने पिता के वंश के नाम को ग्रहण करते है। पितृ सत्तात्मक परिवारों में पुरूषों द्वारा अधिकारों एवं कर्तव्यों के निर्धारण के साथ ही परिवार की सम्पत्ति का प्रत्येक सदस्य में वितरण का भी अधिकार रहता है।

बोध प्रश्न-2

1. **किस प्रकार के परिवार विश्व के सभी समाजो में पाये जाते है**

   (a) **संयुक्त परिवार** (b) **विस्तृत परिवार**

   (c) **एकांकी परिवार** (d) **पितृवंशीय परिवार**

2. **पति -पत्नी और उनके आश्रित बच्चों से मिलकर बने परिवार को कहते है**

   (a) **केंद्रीय या नाभिक परिवार** (b) **एकांकी परिवार**

(c) **विस्तृत परिवार** (d) **समरक्त परिवार**

3. **जिस परिवार में सत्ता एवं अधिकार माता से पुत्रियों को मिलता है ,उसे कहते है**

(a) **पत्नी सतात्मक परिवार** (b) **मात् सतात्मक परिवार**

(c) **पितृवंशीय परिवार** (d) **स्थानीय परिवार**

2.5 परिवार के कार्य

परिवार किसी भी समाज एवं समूह की एक प्रमुख प्राथमिक एवं मौलिक इकाई है। जिसमें व्यक्ति समाज में रहने योग्य बनता है तथा एक सभ्य समाज में किस प्रकार अनुकूलन किया जा सकता है यह भी सीखता है। कहने का तात्पर्य यह है कि परिवार की संस्कृति भाषा नियमों एवं हम की भावना के कारण ही

आदिकालीन बर्बर एवं असभ्य युग से निकल कर एक सभ्य प्राणी बन सका, जिससे समाज संतुलित एवं व्यवस्थित हो गया। परिवार के प्रमुख कार्यो को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **यौन इच्छाओं की पूर्ति–** समाज को व्यवस्थित रूप देने के लिए परिवार द्वारा विवाह संस्था की स्थापना की जाती है। जिसका प्रमुख कार्य मनुष्य की यौन प्रवृत्तियों की संतुष्टि करना है। यदि काम भावना का दमन किया जाये तो व्यक्तित्व का संतुलन बिगड़ने लगता है। अनैतिक तरीके से किये गये यौन संबधों की स्थापना समाज को अव्यवस्थित कर सकता है। अतः परिवार का सबसे अनिवार्य कार्य व्यक्ति की लैंगिक संतुष्टि से है। परिवार विवाह द्वारा ऐसे अवसर प्रदान करता है, जिसमें व्यक्ति नैतिक तरीके से यौन इच्छाओं की संतुष्टि कर पाता है।

2. **सन्तानोत्पत्ति तथा पालन पोषण–** समाज का सबसे प्रमुख कार्य परिवार की निरन्तरता को बनाये रखना है। इस निरन्तरता को बनाये रखने के लिए संतान की उत्पत्ति अति आवश्यक है। परिवार इसका प्रमुख माध्यम है साथ ही संतान के पालन पोषण के लिए भी परिवार एक सर्वोच्च संस्था मानी जाती है।

3. **सामाजीकरण–** परिवार का सबसे प्रमुख कार्य व्यक्ति का सामाजीकरण करना है। जन्म के समय मनुष्य को किसी प्रकार का ज्ञान नही होता है। सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा ही वह समाज में रहने योग्य बनता है तथा अन्य समूहों की अपेक्षा परिवार द्वारा सिखाये गये नियम, आर्दश, मूल्य, संस्कृति, भाषा तथा दायित्वों का प्रभाव जीवन पर्यन्त रहता है।

4. **धार्मिक कार्य–** परिवार का एक प्रमुख कार्य व्यक्ति में धार्मिक प्रवृत्तियों का विकास करना भी है। परिवार में ही व्यक्ति धर्म से संबंधित नैतिक आचरण एवं आर्दशों को सीखता है, जो व्यक्ति के व्यवहार को भी संतुलित एवं व्यवस्थित करता है। उदाहरणार्थ जैसे विवाह हिन्दु धर्म में एक धार्मिक संस्कार माना जाता है।

5. **आर्थिक कार्य–** परिवार आर्थिक क्रियाओं का भी केन्द्र माना जाता है। यह उत्पादन की इकाईयों तथा आर्थिक गतिविधियों में अपना एक प्रमुख स्थान रखता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य को जहां एक ओर आर्थिक सुविधाये ंतो प्रदान करता है, साथ ही आवश्यकता अनुसार प्रत्येक सुविधाएं भी प्रदान करता है। श्रम विभाजन के आधार पर परिवार के प्रत्येक सदस्यों के कार्य अलग–अलग होते है और उत्तरदायित्तव की भावना के कारण उनका निर्वहन भी करता है।

6. **सांस्कृतिक कार्य–** समाज को व्यवस्थित बनाये रखने में संस्कृति की निरन्तरता आवश्यक है। इसे प्रभावपूर्ण बनाने में परिवार का योगदान सर्वाधिक होता है। संस्कृति व्यक्ति को परिवार द्वारा पीढी दर पीढी विरासत मे मिलती है। प्रत्येक समाज तथा समूह मे कई प्रकार के आर्दश, नियम, मूल्य, जनरीतियां, लोकाचार तथा प्रथायें होती है, जिनका निर्वहन करना अनिर्वाय रूप से प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य होता है।

7. **मनोरंजनात्मक कार्य–** मनोरंजनात्मक कार्य के अर्न्तगत परिवार सामुहिक रूप से धार्मिक उत्सवों एवं त्यौहारों के माध्यम से परिवार के सदस्यों के लिए स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था करता है। सामाजिक त्यौहार तथा उत्सव धर्म से संबंधित होने के कारण व्यक्ति पूर्ण नैतिकता से इनका निर्वहन भी करता है जिससे संस्कृति की निरन्तरता बनी रहती है, साथ ही संबंधों में दृढता आती है।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि परिवार द्वारा किये जाने वाले कार्यो का मुख्य उद्देश्य परिवार के सदस्यों की सुरक्षा, सामाजीकरण तथा व्यक्तित्व विकास के लिए आवश्यक परिस्थितिया तैयार करना है। परिवार एक सामाजिक मौलिक इकाई इसलिए मानी जाती है कि, यह एक सभ्य समाज के लिए सभ्य मानव का निर्माण करता है। जो समाज में अनुकूलन करने की क्षमता रखता है।

2.6 सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में परिवार का महत्व

जैसा कि हम जानते है कि परिवार सामाजिक संगठन की सबसे प्राथमिक इकाई है। परिवार जहा एक ओ व्यक्ति के अस्तित्व की रक्षा करता है वही उसके सामाजीकरण एवं मानवीकरण में भी अपनी विंशेष भूमिका निभाता है।

एण्डरसन ने इस सम्बन्ध में कहा है कि, "एक कार्यात्मक इकाई के रूप में परिवार इतनी महत्वपूर्ण संस्था है कि सभी समाज परिवार के माध्यम से ही अपने मान्यता प्राप्त लक्ष्यों को पाने का प्रयत्न करते है।" [9]

इसी प्रकार किग्सले डेविस के कथनानुसार, "परिवार के सभी कार्य इतने स्वतन्त्र प्रकृति के होते है कि उन सभी कार्यो को अन्य संस्थाओं के द्वारा भी पूरा किया जा सकता है लेकिन परिवार के अतिरिक्त ऐसी कोई संस्था नही है जिसमें इन कार्यो को असीमित उत्तरदायित्व की भावना के साथ किया जाता हो।" [10]

"परिवार के विभिन्न कार्यो के फलस्वरूप ही मानव बर्बरता और असभ्यता की सीमाओं को लाघकर एक सभ्य प्राणी बन सका है। एक ऐसा प्राणी जिसके पास संस्कृति व ज्ञान है और आविष्कार करने की क्षमता है। परिवार के कारण ही मनुष्य दूसरे के लिए त्याग करना सीखता है और सामुहिक जीवन के महत्व को स्वीकार करता है।" [11]

परिवार सामाजिक नियंत्रण का सबसे प्रभावशाली अभिकरण है। मानव जो परिवार में जन्म लेता है और अपने जीवन के अन्त तक किसी न किसी रूप मे परिवार से जुड़ा रहता है और परिवार के सभी नियमों का पालन करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि परिवार समाज को व्यवस्थित एवं संगठित रखने में परिवार का एक केन्द्रीय एवं प्रमुख स्थान होता है। परिवार सामाजिक संरचना एवं व्यक्ति के व्यवहारों पर नियंत्रण का प्रमुख साधन माना जा सकता है। सामाजिक नियंत्रण में परिवार की भूमिका को निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है।

1– मानवीयकरण एवं सामाजीकरण–

जैसा कि पूर्व से ही हम जानते है कि परिवार एक ऐसी संस्था है जहां व्यक्ति का सामाजीकरण एवं मानवीयकरण होता है परिवार में रहकर ही व्यक्ति समाज में रहने का ढंग एवं तौर तरीका सीखता है। परिवार द्वारा सीखे हुए गुण, अनुशासन, सहानुभूति, समर्पण की भावना से व्यक्ति समाज में सामंजस्य स्थापित करता है तथा परिवार द्वारा बनाये गये विभिन्न नियमों को मानकर अपने व्यवहार को भी अनुशासिमत करता है। परिवार द्वारा बनाये गये विभिन्न नियम समाज तथा व्यक्ति पर नियंत्रण रखने का कार्य करते है।

2– कर्तव्यों एवं दायित्वों का निवर्हन–

परिवार का मुखिया परिवार के प्रत्येक सदस्य को उसके उम्र के हिसाब से कार्यात्मक विभाजन करके उनसे अपने कर्तव्यों एवं दायित्वों का निवर्हन परिवार एवं समाज के हित में करने को कहता है। जिससे व्यक्ति के व्यवहार पर नियंत्रण रखा जाता है।

समाज व परिवार में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति भी सामाजिक बहिष्कार एवं तिरस्कार के डर से प्रत्येक नियमों एवं आदर्शो को मानने का बाध्य होता है। इस सम्बन्ध में कालमन ने कहा है कि "परिवार में जो माता–पिता बच्चों के पालन पोषण का जितना अधिक ध्यान रखते है उनका व्यवहार सामाजिक रूप से उतना ही अधिक नियंत्रित होता है।"[12]

3– सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से–

परिवार सामाजिक नियंत्रण का एक प्रमुख अभिकरण इसलिए भी माना जाता है क्योंकि, यह व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करता है। जैसा कि विदित है कि परिवार अथवा समाज के अभाव में व्यक्ति अपने अस्तित्व की रक्षा नही कर सकता। अतः व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक परिवार में सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से भी जुड़ा रहता है। परिवार प्रत्येक सदस्य को सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति परिवार व समाज के नियमों एवं संस्कृति के प्रति निष्ठावान रहता है, तथा परिवार के विभिन्न सुविधाओं का उपभोग भी जीवन पर्यन्त करता है। अतः सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से परिवार सामाजिक नियंत्रण का एक प्रमुख साधन है। क्योकि प्रत्येक व्यक्ति बाल्यावस्था, वृद्वावस्था, दृर्घटना, बेरोजगारी एवं बीमारी की स्थिति में परिवार में ही अपने को सुरक्षित महसूस करता है और परिवार ही प्रत्येक अवस्था में उसकी सुरक्षा करता हैं।

4– धार्मिक नियम एवं संस्कृति द्वारा नियंत्रण–

विभिन्न धार्मिक नियम एवं सांस्कृतिक नियमों के माध्यम से भी परिवार व्यक्ति पर सामाजिक नियंत्रण रखता है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार, विचार, आर्दश, मूल्य एवं नियम उसके धार्मिक नियमों एवं संस्कृति पर निर्भर करते है। इस सम्बन्ध में क्यूबर का कथन है कि, "परिवार द्वारा स्थापित नियंत्रण में परिवार के नियमों का प्रभाव सबसे अधिक होता है। परिवार के नियम चाहे प्रथाओं के रूप में हो अथवा परम्परा के रूप मे व्यक्ति के व्यवहारों पर नियंत्रण रखने में इनका प्रभाव सर्वव्यापी होता है।" परिवार के नियम चार प्रकार से नियंत्रण की स्थापना करते है।

(अ) प्रत्येक परिवार विवाह से संबंधित कुछ मर्यादाओं और निषेधों का पालन करता है। उदाहरण के लिए एक हिन्दु परिवार में प्रत्येक व्यक्ति को विवाह के समय की गई प्रतिज्ञाओं के अनुसार जीवन पर्यन्त अपने कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। इसी प्रकार कोई कानून न होने पर भी व्यक्ति अपने गोत्र अथवा निकट संबंधी से केवल इसलिए विवाह करने की बात नही सोचता कि, इससे परिवार के नियम की अवहेलना हो सकती है। इसके फलस्वरूप नैतिक व्यवहारों को प्रोत्साहन मिलता है और व्यक्ति सामाजिक मूल्यों से बधां रहता है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. मेकाइबर ने परिवार के स्थायी व अस्थायी स्वभाव के बारे में क्या कहा है?
2. प्राथमिक या एकाकी परिवार की धारणा क्या है ?
3. परिवार के सांस्कृतिक कार्य क्या हैं ?

(ब) अधिकांश परिवार साधारणतया विवाह विच्छेद की अनुमति नही देते अथवा विवाह विच्छेद करना अनुचित मानते है। इसके फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवहारों और उद्देश्यों पर नियंत्रण रखकर परिवार को संगठित बनाये रखने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार विवाह विच्छेद संबंधी नियमों ने मानवीय व्यवहारों पर नियंत्रण रखा है।

(स) परिवार के नियम व्यक्ति को यह निर्देश देते है कि, वह सांस्कृतिक मूल्यों का प्रत्येक स्थिति में पालन करेगा। इसके फलस्वरूप व्यक्ति समाज विरोधी कार्यो की ओर प्रतृत्त नही हो पाते।

(द) सामाजिक नियंत्रण के क्षेत्र में पारिवारिक नियंत्रण इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि, यह व्यक्ति की यौनिक प्रेरणाओं पर कठोर प्रतिबन्ध लगाये रखता है। परिवार के अतिरिक्त दूसरी कोई भी संस्था इस क्षेत्र में प्रभावपूर्ण नही बन सकती है। परिवार के यौनिक आचरण सम्बन्धी इन नियमों ने व्यक्तियों का पारस्परिक संघर्षो से बचाया है। [13]

इसी आधार पर क्यूबर ने भी स्पष्ट किया है कि, "परिवार के नियम परम्परागत आदर्शो पर आधारित होने के बाद भी सामाजिक नियंत्रण का सबसे प्रभावशाली माध्यम है।" [14]

2.7 सारांश

सम्पूर्ण विवेचना के आधार पर कह सकते है कि परिवार समाज की प्राथमिक एवं मूलभूत इकाई होने के साथ–साथ सामाजिक नियंत्रण में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। परिवार एक ऐसा एकमात्र समूह है जो व्यक्ति के अस्तित्व की रक्षा के साथ ही संर्वागीण विकास में भी सहायक है। जैसा कि हम जानते है नियंत्रण के अभाव में कोई भी समाज व्यवस्थित व संगठित नही रह सकता। कहने का आशय यह है कि समाज तभी सुव्यवस्थित रह सकता है जब उस पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष नियंत्रण हो। नियंत्रण के अभाव में यदि परिवार विघटित होते है, तो सामाजिक संगठन भी कभी व्यवस्थित नही रह सकता है। व्यक्ति अपने चरित्र और व्यक्तित्व का निर्माण अपने परिवार द्वारा दिये गये गुणों, मूल्यों एवं आर्दशो के आधार पर करता है और आगे चलकर समाज में उसी के अनुसार व्यवहार भी करता है। अतः कहा जा सकता है कि परिवार एक ऐसा अभिकरण है जा व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार को नियंत्रित कर एक संगठित और व्यवस्थित आर्दश समाज बनाने में अति महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। आकार तथा स्वरूप के आधार पर परिवार में अनेकों विभिन्नतायें पायी जाती है परन्तु परिवार का सबसे प्रमुख कार्य ही समाज के प्रत्येक पक्ष पर नियंत्रण रखकर समाज को संगठित एवं व्यवस्थित करना होता है।

2.8 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1. मैकाइवर ने परिवार की अंतिम विशेषता में परिवार के दो रूपों का उल्लेख किया है। इसका तात्पर्य यह है कि परिवार एक समिति भी है और संस्था भी। एक समिति के रूप में परिवार पति–पत्नी बच्चों अथवा कुछ अन्य व्यक्तियों का समूह है। इस रूप में परिवार अस्थायी है क्योंकि, विवाह विच्छेद, मृत्यु, विवाह अथवा नये शिशु के जन्म के कारण परिवार के आकार में परिवर्तन हो जाना स्वभाविक है। यदि परिवार के नियम और कार्यप्रणालियों को व्यवस्था के रूप में देखा जाये तो परिवार एक संस्था होगी और संस्था के रूप में परिवार स्थायी है। पति–पत्नी अथवा किसी अन्य सदस्य के ना रहने पर भी परिवार के नियम सदैव बने रहते है। इस प्रकार परिवार का रूप स्थायी भी है और अस्थायी भी है।

2. **प्राथमिक या एकाकी परिवार–** समाज में आकार के दृष्टिकोण से प्राथमिक या एकाकी परिवार सबसे छोटी इकाई मानी जाती है। हैरिस ने इस सम्बन्ध में कहा है कि "एक एकाकी परिवार उन व्यक्तियों का छोटा समूह है, जो जैविकीय भूमिका निभाने के अतिरिक्त एक दूसरे के प्रति संस्थागत सामाजिक दायित्वों को पूरा करते है तथा ऐसा करने के साथ ही उन विश्वासों और मूल्यों का पालन करते है जिनकी उनसे परिवार के अन्तगर्त पूरा करने की आशा की जाती है।"

3. समाज को व्यवस्थित बनाये रखने में संस्कृति की निरन्तरता आवश्यक है। इसे प्रभावपूर्ण बनाने में परिवार का योगदान सर्वाधिक होता है। संस्कृति व्यक्ति को परिवार द्वारा पीढी दर पीढी विरासत मे मिलती है। प्रत्येक समाज तथा समूह मे कई प्रकार के आर्दश, नियम, मूल्य, जनरीतियां, लोकाचार तथा प्रथायें होती है, जिनका निर्वहन करना अनिर्वाय रूप से प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य होता है।

2.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. परिवार का अर्थ एवं परिभाषा समझाइए तथा परिवार के कार्यो की विवेचना किजिये।
2. सामाजिक नियंत्रण के अभिकरण के रूप में परिवार की भूमिका की विवेचना किजिये।
3. परिवार किस प्रकार सामजिक नियंत्रण में अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वहन करता है?
4. परिवार समाज के प्राथमिक और मौलिक इकाई है। स्पष्ट करें।
5. समाज को परिवार किस प्रकार व्यवस्थित और संगठित करता है? विस्तार से समझाइयें।

6. परिवार कितने प्रकार के होते है? तथा इसके महत्व को स्पष्ट किजिये।
7. परिवार की प्रमुख विशेषतायें कौन सी है? मैकाइवर तथा पेज द्वारा दी गई विशेषताओं का उल्लेख करें।

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

- डा0 जी0के0 अग्रवाल, "सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन" 2000
- डा0 जी0के0 अग्रवाल, "मानव समाज" 2000
- डा0 रामनाथ शर्मा तथा डा0 राजेन्द्र कुमार शर्मा, "सामाजिक परिवर्तन और समाजिक नियंत्रण" 1996
- विद्याभूषण तथा सचदेव, "समाजशास्त्र के सिद्वान्त" 2010
- मैकाइवर और पेज, "समाज" पेज नं0 238
- किग्सलें डेविस, "ह्यूमन सोसाइटी"
- बर्गेस और लॉक, "फेमिलि" पेज नं0 08
- ऑगबर्न और निमकाफ, "ए हेण्डबुक आफ सोसियोलोजी" पेज नं0 459
- बीसन्स एवं बीसन्स, " मार्डन सोसाइटी एन इन्ट्रोडक्सन टू सोसियल साइंस " पेज नं0 204
- डा0 जी0के0 अग्रवाल, "सोसियल कन्ट्रोल एण्ड चेन्ज" 2000 पेज नं0 126–127
- जे0ई0 क्यूबर, "सोसियोलोजी ए सिनाप्सिस आफ प्रिंसपल" पेज नं0 439–41
- एण्डरसन एण्ड पार्कर, "सोसाइटी" पेज नं0 162
- किग्सलें डेविस, "ह्यूमन सोसाइटी" पेज नं0 35
- डा0 जी0के0 अग्रवाल, "ह्यूमन सोसाइटी" पेज नं0 162
- क्यूरीज कोलमेन एवं राल्फ लेन, "सोसियोलोजी : एन इन्ट्रोडक्सन" पेज नं0 126
- सी0सी0 हैरिस, "दि फेमिलि" (1969) पेज नं0 70
- मैकाइवर और पेज सोसाइटी पेज नं0 240–241
- एडरसन एण्ड पार्कर सोसाइटी : इट्स आर्गेनाइजेसन एण्ड आपरेशन पेज नं0 160

NOTES

इकाई 3

जनरीतियाँ तथा लोकाचार

Folkways & Mores

इकाई की रुपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 जनरीति का अर्थ तथा परिभाषा

3.3 जनरीति की विशेषताएं

3.4 लोकाचार का अर्थ तथा परिभाषा

3.5 लोकाचार की विशेषताएं

3.6 लोकाचार के कार्य

3.7 जनरीति तथा लोकाचार में अन्तर

3.8 सामाजिक **नियंत्रण** में जनरीतियों तथा लोकाचारों की भूमिका

3.9 सारांश

3.10 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

3.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0 उदेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

1– जनरीतियां तथा लोकाचार की अवधारणा समझ सकेंगे।

2– जनरीतिया तथा लोकाचारों के कार्यो के बारे में जानकारी हासिल कर सकेंगे।

3– जनरीतियों तथा लोकचारों के सामाजिक महत्व को समझ सकेंगे।

4– जनरीति लोकाचार से किस प्रकार अलग हैय ह स्पष्ट हो जायेगा।

5– सामाजिक नियंत्रण में जनरीतियों तथा लोकाचारों की भूमिका स्पष्ट हो जायेगी।

3.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम सभी जानते है कि समाज को संगठित एवं व्यवस्थित रखने में परिवार, राज्य एवं धर्म का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। ये सभी साधन समाजिक नियन्त्रण की स्थापना में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते है। परिवार, राज्य या धर्म के अपने नियम, आदर्श, मूल्य एवं संस्कृति होती है। इन्ही के माध्यम से ये अभिकरण व्यक्ति तथा व्यक्ति के व्यवहार पर नियन्त्रण लगाते है। समाज द्वारा कोई भी नियम किसी व्यक्ति विशेष द्वारा बनाये नही जाते बल्कि व्यक्ति समाज के प्रत्येक दूसरे व्यक्ति के साथ विभिन्न परिस्थितियों में अलग–अलग तरह के व्यवहार करते है। कुछ व्यवहार समाज द्वारा स्वीकृत होते है और कुछ अस्वीकृत। स्वीकृत व्यवहार धीरे–धीरे व्यक्ति अपनी दैनिक दिनचर्या में शामिल कर लेता है। तब उस व्यवहार को सम्पूर्ण समूह द्वारा भी स्वीकृती मिल जाती है। इस तरह के व्यवहार को जनरीतियॉ कहा जाता है। जनरीतियों के सन्दर्भ में **समनर** ने कहा है कि "जनरीतियों का तात्पर्य व्यवहार के उन प्रत्याशित और संचित प्रतिमानों से हैं, जो तत्कालीन परिस्थितियों और पारस्परिक क्रियाओं की आवश्यताओं को पूरा करने के फलस्वरूप उत्पन्न होते है।"[1]

समूह द्वारा स्वीकृत व्यवहार जो समाज के लिए उपयोगी तथा आवश्यक होते है, और जनरीति के रूप में परिवर्तित हो जाते है, ऐसे व्यवहार आगे चलकर लोकाचार कहलाते है। **समनर** ने लोकाचार को स्पष्ट करते हुये कहा है कि लोकाचार समूह की महत्वपूर्ण जनरीतियॉ है। लोकाचार का तात्पर्य कार्य करने के ऐसे तरीकों अथवा व्यवहारों से है, जिन्हें समूह कल्याण के लिए आवश्यक समझा जाता है। यद्यपि इन्हें किसी सर्वमान्य सत्ता द्वारा लागू नही किया जाता, लेकिन यह व्यक्ति को अपने अनुरूप व्यवहार करने को बाध्य करते है। इस प्रकार कहा जा सकता है, कि जनरीतियॉ तथा लोकाचारों की सामाजिक नियन्त्रण में सबसे प्रमुख भूमिका रही है।

3.2 जनरीति का अर्थ तथा परिभाषा

जनरीति का अर्थ

समनर ने सर्वप्रथम अपनी पुस्तक फोकवेज में जनरीति षब्द का प्रयोग किया था। समनर ने अपनी पुस्तक में जनरीति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा था कि, प्रत्येक मानव समाज के साथ समायोजन करने के लिए प्रत्येक दूसरे व्यक्ति के व्यवहार

अनुरूप ही व्यवहार करता है, और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती करता है। व्यक्ति द्वारा किये गये व्यवहार यदि उपयोगी होते है, तो वह समाज द्वारा स्वीकार करके सम्पूर्ण समूह के लिए उपयोगी बन जाता हैं। उसे जनरीति कहा जाता है।

डॉ0 अग्रवाल ने इस सम्बन्ध में कहा कि, जनरीति का सम्बन्ध व्यक्ति के प्रति समूह की प्रत्याशाओं से है। इसका तात्पर्य यह है कि, सामाजिक जीवन में समाज हमसे जिन हजारो प्रकार के व्यवहार की आशा करता है, वे उस समाज की जनरीतियों के रूप में अभिव्यक्त होते है। यदि कोई व्यक्ति इन प्रत्यशाओं के अनुसार व्यवहार न करे तो इसके लिए उसे कोई कानूनी दण्ड तो नही मिलता, लेकिन उसको मिलनें वाला तिरस्कार और सामाजिक व्यंग कानूनी दण्ड से भी अधिक प्रभावपूर्ण हो जाता है। यही कारण है, कि व्यक्ति बिना किसी प्रकार का तर्क किये हुए जनरीतियों का पालन करता है।

जनरीति के सन्दर्भ में अनेक समाजशास्त्रियों ने अलग–अलग परिभाषायें दी है। कुछ प्रमुख परिभाषायें निम्नवत है।

- **समनर**– "जनरीतियों का सम्बन्ध किसी परिस्थिति में सही प्रकार का व्यवहार करने से है।"

- **मैकाइवर और पेज**–"जनरीतियाँ समाज में आचरण करने की स्वीकृत अथवा मान्यता प्राप्त विधिया है।"

- **प्रो0 ग्रीन** के कथनानुसार– "जनरीतियों का तात्पर्य व्यवहार के उन तरीको से है, जो एक समाज अथवा समूह में सामान्य रूप से पाये जाते है तथा जो एक पीढी से दूसरी पीढी को हस्तान्तरित कर दिये जाते है।"

- **मैरिल और एलरिज** – "जनरीतियॉ सामान्य व्यक्तियों की कार्य विधिया है। ये वे सामाजिक आदतें अथवा सामूहिक कार्य है, जो नित्यप्रति के सामूहिक जीवन से उत्पन्न होते है।"

- **मार्टिण्डेल और मोनाकेसी**– "जनरीतियॉ कार्य करने के वे अभ्यस्त्र तरीके है, जो एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्तियों और व्यक्ति का अपनी स्थान सम्बन्धी परिस्थितियों से अनुकूलन करने के फलस्वरूप उत्पन्न होते है।"

समनर के अनुसार "जनरीतियां प्राकृतिक षक्तियों की उपज के समान होती है, जिनको मनुष्य अचेतनावस्था में प्रारम्भ करते है, अथवा वे पशुओं की नैसर्गिक अवस्थाओं के समान होती है। जो अनुभव से विकसित होती है तथा किसी स्वार्थ के लिए अधिकतम अनुकूलन के अन्तिम स्वरूप तक पहुचती है। जो परम्परायें पूर्व से चली आती है, और जो किसी भी अपवाद या भिन्नता को स्वीकार नही करती तथापि नई परिस्थितयों का अनुकूलन करने के लिए बदलती है। परन्तु तब भी उन्ही सीमित पद्वतियों के अतंगर्त ही परिवर्तित होती है, और जो विवेकपूर्ण मनन या उदेश्य से रहित होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है, कि

सभी युगों एवं संस्कृति की सभी अवस्था में मानव प्राणियों का सम्पूर्ण जीवन, प्रजाति की प्रारम्भिकतम अवस्थिति से हस्तातंरित अनेक लोकरीतियों द्वारा मुख्यतः नियंत्रित होता है। यहा पर समनर ने माना है कि, जनरीति वास्तव में मानव की पशुवत परिस्थितियों को परिवर्तित करके मनुष्य की श्रेणी में रखते है।

ओडम ने जनरीति को परिभाषित करते हुए कहा है कि "लोकरीतियॉ व्यक्ति की आदतें एवं समूह की प्रथाएँ होती है, जिनका जन्म स्वाभाविक एवं सहज ढंग से होता है, एवं जो जीवन के विभिन्न अंगो के चारो ओर धीरे–2 विकसित होती है।"

बोगार्डस– "समूह की जनरीतियों में लोकाचार एवं व्यवहार के सभी अन्य ढंग सम्मिलित है। जिन्हे रूचिकर समझा जाता है, परन्तु समूह कल्याण हेतु अनिवार्य नही है।"

रेन्टर एवं हार्ट के अनुसार – "लोकरीतियॉ कार्य की सरल आदतें है, जो समूह के सदयों में सामान्य रूप से पाई जाती है। वे लोगो के ढंग है, जो कुछ स्तरीकृत है एवं जिनके पीछे उनकी दीर्धता के लिए परम्रागत संपुष्टि की कुछ मात्रा भी है।"

हार्टन एवं हंट – "लोकरीतियॉ सरल शब्दों में प्रथागत सामान्य एवं स्वाभावगत ढंग है। जिनके अनुसार कोई समूह कार्य करता है।"

लुण्डबर्ग एवं अन्य– "लोकरीतियॉ किसी समूह अथवा समुदाय में पालन किए जाने वाले आचरण की षैली मनोवृत्तियॉ एवं स्वभावगत विश्वास है।"
यद्यपि अलग–अलग समाजशत्रियों द्वारा जनरीति को अलग–अलग परिभाषायें दी गई है। उपरोक्त सभी परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है, कि व्यक्तियों द्वारा

किये गये व्यवहार जो समय के लिए उपयोगी तथा अर्थपूर्ण होते है, और सम्पूर्ण समूह द्वारा भी स्वीकार कर लिए जाते है, वह जनरीति कहलाती है।

बोध प्रश्न

1. **.....**ने लोकाचार को स्पष्ट करते हुये कहा है कि लोकाचार समूह की महत्वपूर्ण जनरीतियॉ है।

   (a) लुण्डबर्ग (b) समनर

   (c) हार्टन एवं हंट (c) रेन्टर एवं हाट

2. **किसके अनुसार** "जनरीतियॉ समाज में आचरण करने की स्वीकृत अथवा मान्यता प्राप्त विधिया **हैं**

   (a) मैकाइवर और पेज (b) समनर

   (c) लुण्डबर्ग (c) **दुर्खेइम**

3.3 जनरीति की विशेषताएं

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि, जनरीतियॉ ऐसे आदर्श नियमों एवं रीति रिवाजों का कहा जाता है जो सम्पूर्ण समूह द्वारा स्वीकृत कर लिए जाते है, और यह एक पीढी से दूसरी पीढी को हस्तान्तरित भी होते रहते है। इस आधार पर जनरीति की कुछ समान्य विषेषतायें इस प्रकार है।

1– जनरीति किसी व्यक्ति विशेष द्वारा बनाये गये नियम नही है, बल्कि एक सामान्य विचार जो समाज के लिए उपयोगी है। समूह द्वारा स्वीकार कर लिया जाते है और बाद में यह जनरीति का स्वरूप बन जाता है।

2– जनरीति इतनी प्रभावपूर्ण होती है कि, सामाजिक बहिष्कार के डर से प्रत्येक व्यक्ति इन्हे मानने को बाध्य होता है।

3– जनरीति कभी स्थाई नही होती बल्कि सामाजिक मूल्यों परिस्थितियों तथा पर्यावरण के अनुसार इनमें परिवर्तन होते रहता है।

4– सामाजिक नियन्त्रण में जनरीति की एक मुख्य भूमिका होती है। यह व्यक्ति के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखकर समाज को संगठित करने में अपना योगदान देता है।

5– जनरीति एक बार समय द्वारा स्वीकार करने के पष्चात पीढी दर पीढी हस्तांतरित होती रहती है।

3.4 लोकाचार का अर्थ तथा परिभाषायें

शाब्दिक रूप से लोकाचार अंग्रेजी षब्द mores लैटिन षब्द mos का बहुबचन है। जिसका तात्पर्य प्रथा से होता है। समनर द्वारा mores का प्रयोग उन लोकरीतियों के लिए किया गया है। जो समाज के लिए उपयोगी तथा कल्याणकारी होते है। समनर के अनुसार "लोकचारों से मेरा तात्पर्य लोकप्रिय रीतियों एवं परम्पराओं से है। जब इनमें ये निर्णय सम्मिलित हो कि वे सामाजिक कल्याण के लिए लाभदायक है, और व्यक्ति पर उनका पालन किए जाने के लिए बल प्रयोग किया जाता है। यद्यपि उन्हे किसी सत्ता द्वारा समन्वित नही किया जाता।" [12]

वास्तव में लोकाचार व्यक्ति द्वारा किये गये व्यवहार जो उसके तथा समूह के लिए उपयोगी है, जनरीति है। यही जनरीति जब सम्पूर्ण समाज द्वारा स्वीकृत कर ली जाती है। तो यह समय के लिए उपयोगी एवं कल्याणकारी हो जाती है। तब यही जनरीतियॉ लोकाचार में परिवर्तित हो जाती है। समनर ने इस सम्बन्ध कहा भी है कि हमारे उदेश्य हेतु लैटिन षब्द mores उन लोकरीतियो जिसमें समाजिक कल्याण के अर्थ निहित हो लोकाचार कहलाते है।

अलग–अलग समाजशास्त्रियों ने लोकाचार की विभिन्न परिभाषायें दी है जो निम्नांकित है।

डासन एवं गेट्टीज के अनुसार "लोकाचार वे जनरीतियॉ है, जिन्होने अपने साथ किसी प्रकार ऐसे निर्णय जिन पर समूह का कल्याण मुख्यतया निर्भर है को जोड़ लिए है।" [13]

गिलिन एवं गिलिन– "लोकाचार वे प्रथाए एवं समूह दिनचर्याएं है, जिन्हें समाज के सदस्यों द्वारा समूह को सतत अवास्थिति हेतु आवश्यक समझा जाता है।" [14]

मैकाइवर– "जब लोकरीतियों के साथ समूह कल्याण को धारणाएं तथा उचित और अनुचित के स्तर मिल जाते है, तो वे लोकरीतियॉ लोकाचारों में बदल जाती है।" [15]

स्पेअर – "षब्द mores उन प्रथाओं के लिए सुरक्षित है, जो व्यवहार की विधियों के सही अथवा गलत होने के बारे में पर्याप्त दृढ भावों की व्यक्त करते है।" [16]

ग्रीन– ''कर्म करने की सामान्य रीतियॉ लोकाचार होती है, जो लोकरीतियों की अपेक्षा अधिक निश्चयपूर्वक सही एवं उचित मानी जाती है, और जो अधिक कठोर एवं निश्चित दण्ड दिलवाती है। यदि कोई उनका उल्लधंन करें।" [17]

सदरलैण्ड एवं अन्य– "लोकाचार वे लोकरीतियॉ है, जो एक समूह के लिए महत्वपूर्ण समझी जाती है। विशेष रूप से उस समूह के कल्याण के लिए महत्वपूर्ण समझी जाती है।" [18]

लुम्ले – "लोकरीतियॉ उस समय लोकाचार बन जाती है, जब उसके साथ कल्याण का तत्व जोड़ दिया जाता है।" [19]

समनर– "जब सत्य और औचित्य के तत्व कल्याण के सिद्वान्तो मे विकसित हो जाते है, तो लोकरीतियॉ दूसरे उच्च क्षेत्र में विकसित हो जाती है।"

मैरिल के अनुसार – "लोकाचारों की प्रकृती सर्वव्यापी नही होती बल्कि समूह की परिस्थितियों के अनुसार इनकी प्रकृति में भिन्नता पायी जाती है। एक समूह में जो व्यवहार लोकाचार होता है, वही दूसरे समूह में अपराध बन सकता है। उदाहरणार्थ एस्कीमों जनजाति के कुछ भागो में शिशु हत्या और पितृ हत्या एक लोकाचार है। जबकि हमारे समाज में यह एक गम्भीर अपराध है। युद्वकाल में दूसरे पक्ष की हत्या करना प्रशंसनीय हो जाता है। जबकि षान्तिकाल के लोकाचार हिंसा में विरोधी होते है।[20]

इस प्रकार सभी परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि, लोकाचार जनरीतियों का वह समूह है जिस पर सामुहिक कल्याण की भावना जुड़ी रहती है तथा यह जनरीति से अधिक कठोर होते है एवं अवहेलना करने पर व्यक्ति दण्ड का भागीदार भी बनता है।

3.5 लोकाचारों की विशेषतायें

1– समूह कल्याण के लिए आवश्यक – लोकाचार में व्यक्ति के उन्ही व्यवहारों को समूह या समाज द्वारा मान्यता मिलती है, जो सम्पूर्ण समूह के कल्याण के लिए आवश्यक होती है।

2– आदर्श मूल्यों का समावेश – व्यक्ति के वह व्यवहार जो समाज के लिए उपयोगी तो होते है, साथ ही उसमें आदर्श मूल्यों का भी समावेश होता है, वह लोकाचार है। जैसे अपने से बड़ो का सम्मान करना तथा मद्यपान ना करना आदि कुछ ऐसे सामान्य लोकाचार है, जिसमें आदर्श, मूल्यों एवं नैतिकता का समावेश होता है।

3– सार्वभौमिकता का गुण – समाज को संगठित एवं व्यवस्थित बनाने में लोकाचार की एक प्रमुख भूमिका है। यद्यपि अलग–2 समूह में विभिन्नता के गुण होने के कारण लोकाचार भी भिन्न–2 हो सकते है। परन्तु लोकाचार सभी समूहो एवं समाज की एक सार्वभौमिक विशेषता है।

4– बाध्यता का गुण – जैसा कि आप जानते है कि व्यक्ति द्वारा किये गये एक व्यवहार स्वीकृत होकर जब समूह का लोकाचार बन जाता है, तो समूह के प्रत्येक व्यक्ति के लिए इनका पालन करना आवश्यक हो जाता है। सामाजिक बहिष्कार एवं दण्ड के भय से व्यक्ति इन लोकाचारों को मानने के लिए बाध्य भी होता है।

3.6 लोकाचारों के कार्य

समाज को संगठित रखने में लोकाचारों की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सामाजिक जीवन में लोकाचारों के प्रमुख कार्यो को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

मैकाइवर ने लोकाचारों के निम्नलिखित कार्यो का उल्लेख किया है।

1– लोकाचार हमारे अधिकांश निजी व्यवहारों को निश्चित करते है। वे व्यवहार को बाधित एवं निषेधित दोनो करते है। वे सदैव प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति को प्रतिबंधित एवं प्रभावित करते रहते है। दूसरे षब्दों में नियंयण के उपकरण है। समाज में असंख्य लोकाचार यथा एक पत्नीत्व दास–विरोधिता, प्रजातंत्र एवं मद्यनिषेध आदि है, जिसका अनुपालन आवश्यक समझा जाता है।

2– लोकाचार व्यक्ति का समूह से तादात्म्य स्थापित करते है। लोकाचारों के अनुपालन द्वारा व्यक्ति अपने साथियों के प्रति तादात्म्य स्थापित कर लेता है, और उन सामाजिक सूत्रों को बनाए रखता है। जो सन्तोषपूर्ण जीवन के लिए स्पष्टतः बहुत ही आवश्यक है।

3– वे सामाजिक सुदृढता के संरक्षक है, लोकाचार समूहों के सदस्यों को एकता के सूत्र में बाधे रखता है। समूह के सदस्यों में यद्यपि उनमे समानता की चेतना होती है। जीवन एवं प्रस्थिति को अच्छी वस्तुओं को प्राप्त करने हेतु परस्पर प्रतियोगिता रहती है। उन्हें लोकाचार ही सीमा के अंदर रखते है। समान लोकाचारों का अनुसरण करने वाले व्यक्तियों में उनकी समान भावनाओं के कारण अच्छी सदृढता का भाव होता है। इसका यह भी अर्थ है कि भिन्न लोकाचारो का अनुसरण करने वाले व्यक्ति के प्रति उनमें विरोध एवं प्रतिरोध की भावना होती है। लिंग, आयु, वर्ग और समूह प्रत्येक के लिए एवं सभी समूहों के लिए लोकाचार विधमान है। जो समूह की दृढता को बनाए रखने का कार्य पूरा करते है। [21]

3.7 जनरीति तथा लोकाचार में अन्तर

जनरीति तथा लोकाचार वास्तव में व्यवहार के एक सामान्य तरीके है और दोनों ही समूह कल्याण के लिए आवश्यक भी माने जाते है। परन्तु वास्तविकता यह है कि दोनो की प्रकृति एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न है। जनरीति तथा लोकाचार के अन्तर को निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है।

1– जनरीति व्यक्तियों द्वारा नैतिक नियमों के आधार पर किये गये सामान्य व्यवहार को कहा जाता है। जबकि लोकाचार ऐसे विचारो एवं व्यवहार को कहा जाता है, जो एक बार समूह में आने के पश्चात समूह के लिए उपयोगी होने के दशा में सम्पूर्ण समूह द्वारा स्वीकृत कर लिये जाते है।

2– जनरीति उपयोगी होने की दशा में लोकाचार तो बन सकता है परन्तु एक बार लोकाचार बन जाने के पश्चात वह पुनः जनरीति नही बन सकता।

3– जनरीति परिस्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित होते रहते है, जबकि लोकाचार मे परिवर्तन संभव नही होता और ना ही कोई व्यक्ति लोकाचारों की अवहेलना कर पाता है।

4– जनरीति का पालन व्यक्ति अपने हितों तथा आवश्यकता की पूर्ती के लिए करता है, जबकि लोकाचार समूह कल्याण के लिए आवश्यक होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को इनका पालन करना आवश्यक होता है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. मेकाइबर एवं पेज के शब्दों में जनरीति का अर्थ स्पष्ट करें।
2. लोकाचार को स्पष्ट करते हुए सदरलैण्ड एवं अन्य ने क्या कहा है ?
3. लोकाचार का कोई एक प्रमुख कार्य लिखिये।

5– जनरीतियां अपनी परिवर्तनशील प्रवृत्ति के कारण कानून का रूप नही ले सकती है, जबकि उपयोगी लोकाचार एक बार स्वीकृत होने के पश्चात धीरे–धीरे कानून का रूप धारण कर लेते है।

6– लोकाचार जनरीतियों की अपेक्षा समाज में अधिक स्थाई एवं प्रभावशाली होते है, ये व्यक्तियों के व्यवहार को नियंत्रित एवं संतुलित करने वाले होते है।

7– लोकाचार में बाध्यता का गुण होता है जबकि जनरीति में बाध्यता का गुण नही होता है। जनरीति का उल्लघंन हो सकता है किन्तु सामाजिक बहिष्कार के भय से लोकाचार का उल्लघंन नही किया जा सकता है।

3.8 सामाजिक नियंत्रण में जनरीतियों तथा लोकाचारों की भूमिका

जनरीतियां तथा लोकाचार दोनों ही सामाजिक नियंत्रण के एक ऐसे महत्वपूर्ण अभिकरण है जो समाज में व्यक्ति के व्यवहारों पर नियंत्रण लगाकर समाज को व्यवस्थित बनाने में अपना सहयोग देते है। समूह में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक बहिष्कार एवं सामाजिक अवहेलना के भय से इनको मानने के लिए बाध्य होते है। लिखित कानून की अपेक्षा जनरीतियां तथा लोकाचार व्यक्ति तथा व्यक्ति के व्यवहार को अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित करते है। सामाजिक नियंत्रण में जनरीतियों तथा लोकाचारों की भूमिका को निम्नांकित आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है।

1. समनर ने जनरीतियों तथा लोकाचारों की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जनरीतियां तथा लोकाचार व्यक्ति को अनुसाशन, सामाजिक आदतों तथा सामाजिक निर्णयों में निष्ठा बनाये रखने की प्रेरणा देते है। यदि प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यवहारों का निर्धारण स्वयं करना पड़े और उसे प्रत्येक परिस्थिति में किये जाने वाले व्यवहारों का निर्णय स्वयं लेना पड़ें तो ऐसा व्यक्ति जीवन के बोझ को उठाने में भी असफल हो जायेगा। लोकाचार व्यक्ति को अपने साधनों का अधिकतम उपयोग करने और संभावित कठिनाइयों से बचने की क्षमता प्रदान करते है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी संस्कृति और भाषा उसी समाज में सीखता है जिस समाज में वह जन्म लेता है। लोकरीतियां तथा लोकाचार के माध्यम से व्यक्ति उसी प्रकार का व्यवहार करता है जो समाज में व्यक्ति द्वारा पूर्व में किये जा रहे होते है। अतः समाज में अनुकूलन तथा अपने को समाज के अनुरूप

बनाने में व्यक्ति को किसी प्रकार की भी कठिनाई नही होती है तथा किसी भी क्षेत्र में व्यक्ति कोई भी निर्णय सरलता से लेता है।

2. जनरीति तथा लोकाचार के कारण ही व्यक्ति में सामुदायिकता या हम की भावना का विकास होता है। प्रत्येक व्यक्ति जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन पर्यन्त जिस समूह में रहता है उसके बनाये गये नियमों तथा रीति–रिवाजों के आधीन रहकर ही कार्य करता है। जनरीति तथा लोकाचार कानून तथा दण्ड से भी ज्यादा शक्तिशाली एवं प्रभावशाली होते है। व्यक्ति प्रत्येक कार्य अपने हित में ना सोचकर सम्पूर्ण समाज के हित के सन्र्दभ में सोचकर करता है।

3. प्रत्येक व्यक्ति अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए पूर्ण रूप से समाज पर आश्रित होता है और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सदैव सही व नैतिक मार्ग का चुनाव करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति सामाजिक मूल्यों तथा नैतिक व्यवहारों को ही अपने विचारों एवं जीवन में उतारने का प्रयास करता है जो सामाजिक जीवन को नैतिक रूप से दृढ बनाये रखने में अपना सहयोग देते है।

4. जनरीतियों तथा लोकाचारो के माध्यम से व्यक्ति समूह अथवा समाज में एक विशेष प्रकार के व्यवहार को करने के लिए बाध्य होता है। अनेक ऐसे विचार या व्यवहार समय के साथ अनुपयोगी हो जाते है, परन्तु समाज या समूह द्वारा स्वीकृत होने के कारण व्यक्ति इनका विरोध नही कर पाता है और ना ही इन्हें बदलने का साहस कर पाता है। इस प्रकार रूढिगत विचारधारा होने के पश्चात भी कुछ नियम ऐसे होते है जो समाज में प्रभावपूर्ण स्थान तो रखते है साथ ही अपरिवर्तनशील भी होते है। स्थायित्वता का गुण होने के कारण सामाजिक जीवन को ये नियंत्रित भी करते है।

5. धार्मिक या धर्म संबंधी नियमों का समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। जनरीति तथा लोकाचार धार्मिक जीवन में भी प्रभावशाली स्थान रखते है। व्यक्ति अपने व्यवहार में कई ऐसे कार्यो को करने से डरता है जो हमारे धार्मिक विश्वासों के विपरीत होते है। जैसे– अदृश्य एवं अलौकिक शक्तियों को मानना। इस प्रकार के मर्यादित व्यवहार समाज को नियंत्रित रखने में अपना सहयोग देते है।

3.8 सारांश

सम्पूर्ण विवेचना के आधार पर हम कह सकते है कि जनरीतियां तथा लोकाचार सामाजिक नियंत्रण में अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वहन करते है। जैसा कि हम जानते है कि मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए समाज तथा समाज के प्रत्येक दूसरे व्यक्ति पर निर्भर रहना पड़ता है। अपनी आवश्यकताओ की पूर्ती व्यक्ति द्वारा उचित माध्यम द्वारा ही पूर्ण की जाती है। यहां पर व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती तथा समाज से अनुकूलन के लिए समाज के नियमों एवं आर्दशों के आधारा पर ही व्यवहार व अर्न्तक्रिया करता है। उपयोगी व्यवहार धीरे–धीरे समाज या समूह द्वारा स्वीकृत होते है और सामाजिक कल्याण के लिए उपयोगी कोई भी विचार या व्यवहार एक बार समाज द्वारा स्वीकृत होने के पश्चात जनरीति तथा लोकाचार बन जाते है। ये जनरीतियां तथा लोकाचार इतने प्रभावशाली होते है कि व्यक्ति इनके अनुरूप कार्य करने के लिए बाध्य हो जाता है। यदि वह इन जनरीतियों तथा लोकाचारों के विपरीत कार्य या व्यवहार करता है तो समूह से उसे बहिष्कार व तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। जो कानूनी दण्ड से भी भयावह होता है। यद्यपि समाज तथा समूह की भिन्न– भिन्न प्रकृति होने के कारण प्रत्येक समाज की अपनी– अपनी जनरीतिया तथा लोकाचार होते है। एक समूह के लिए जो लोकाचार या जनरीतियां उपयोगी होती है वही दूसरे समूह के लिए अनुपयोगी भी हो सकती है। जैसे– परदा प्रथा, बाल विवाह, अर्न्तविवाह आदि। परन्तु यह भी वास्तविकता है कि इनके प्रभाव समाज या समूह में पूर्णतया कभी समाप्त नही होते है। यही कारण है कि जनरीतिया तथा लोकाचार व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित एवं संतुलित करते है साथ ही यह समाज को संगठित एवं व्यवस्थित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते है।

3.9 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1. **मैकाइवर और पेज**–"जनरीतियाँ समाज में आचरण करने की स्वीकृत अथवा मान्यता प्राप्त विधिया है।"

2. सदरलैण्ड एवं अन्य– "लोकाचार वे लोकरीतियॉ है, जो एक समूह के लिए महत्वपूर्ण समझी जाती है। विशेष रूप से उस समूह के कल्याण के लिए महत्वपूर्ण समझी जाती है।"

3. लोकाचार हमारे अधिकांश निजी व्यवहारों को निश्चित करते है। वे व्यवहार को बाधित एवं निषेधित दोनो करते है। वे सदैव प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति को

प्रतिबंधित एवं प्रभावित करते रहते है। दूसरे षब्दों में नियंयण के उपकरण है। समाज में असंख्य लोकाचार यथा एक पत्नीत्व दास–विरोधिता, प्रजातंत्र एवं मद्यनिषेध आदि है, जिसका अनुपालन आवश्यक समझा जाता है।

3.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जनरीतियों का अर्थ तथा परिभाषा को स्पष्ट कीजिए तथा समाज में उनके महत्व की व्याख्या कीजिए।
2. लोकाचारों को परिभाषित करते हुए उसके कार्यो की विवेचना कीजिए।
3. जनरीतियों तथा लोकाचारों में अन्तर को सविस्तार स्पष्ट कीजिए।
4. जनरीतियों तथा लोकाचारों के कार्यो को स्पष्ट कीजिए।
5. सामाजिक नियंत्रण में जनरीतियों तथा लोकाचारों के महत्व को स्पष्ट कीजिए।
6. सामाजिक नियंत्रण में जनरीतियों तथा लोकाचारों की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
7. लोकाचार किसे कहते है तथा लोकाचार की प्रमुख विशेषताएं क्या है?
8. जनरीति तथा लोकाचारों के सामाजिक महत्व को स्पष्ट कीजिए।
9. जनरीति तथा लोकाचार किस प्रकार सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में कार्य करते है?

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

- डा0 जी0के0 अग्रवाल, "सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन" 2000
- डा0 जी0के0 अग्रवाल, "मानव समाज" 2000
- डा0 रामनाथ शर्मा तथा डा0 राजेन्द्र कुमार शर्मा, "सामाजिक परिवर्तन और समाजिक नियंत्रण" 1996
- विद्याभूषण तथा सचदेव, "समाजशास्त्र के सिद्वान्त" 2010
- डब्लू0 जी0 समनर, "फोकवेज"
- विद्याभूषण तथा सचदेव, "समाजशास्त्र के सिद्वान्त" 2010

NOTES

- डासन एवं गेट्टीज, , "एन इन्ट्रोडक्सन टू सोसाइटी" पेज नं0 50
- .गिलिन एवं गिलिन, "कल्चरल सोसियोलोजी" पेज नं0 315
- मैकाइवर आर0 एम0, "सोसियोलोजी" पेज नं0 19
- "स्पेअर इनसाइक्लोपीडिया आफॅ सोसियल साइंसेज" पेज नं0 658
- ग्रीन ए0डब्लु0, "सोसियोलोजी" पेज नं0 86
- सदरलैण्ड, वर्ल्डलैण्ड एवं मारवलेल, इन्ट्रोडक्टरी सोसियोलोजी पेज नं0 23
- लुम्ले, "प्रिसंपल आफ सोसियोलोजी" पेज नं0 170
- मैरिल, "सोसाइटी एण्ड कल्चर" पेज नं071
- जे0के0 अग्रवाल, "सोसियल कन्ट्रोल एण्ड चेंज" 2000 पेज नं0 107
- ए0 डब्लू0 ग्रीन, "सोसियोलोजी"
- मैरिल एवं एल्डरिच, "कल्चर एण्ड सोसाइटी" पेज नं0 31
- मार्टिण्डेल और मोनाकेसी, "इलीमेन्टस आफॅ सोसियोलोजी" पेज नं0 120

NOTES

इकाई 4

धर्म एवं नैतिकता

Religion & Morality

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 धर्म का अर्थ तथा परिभाषा

4.3 धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्त

4.4 धर्म के प्रमुख तत्व

4.5 नैतिकता का अर्थ तथा परिभाषा

4.6 नैतिकता की विशेषताए

4.7 धर्म तथा नैतिकता में अन्तर

4.8 सामाजिक नियंत्रण में धर्म एवं नैतिकता का महत्व

4.9 सारांश

4.10 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

4.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

1. धर्म एवं नैतिकता किसे कहते है, समझ जायेंगे।
2. धर्म की उत्पत्ति एवं कार्य को जान जायेंगे।
3. नैतिकता की विशेषताएं तथा महत्व स्पष्ट हो जायेगा।
4. सामाजिक नियंत्रण में धर्म तथा नैतिकता की प्रमुख भूमिका क्या है, स्पष्ट हो जायेगी।

4.1 प्रस्तावना

मनुष्य जब इस संसार में जन्म लेता है किसी एक समाज या समूह का सदस्य बनता है। वह अपने जीवन में कुछ लक्ष्य निर्धारित करके अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता है। व्यक्ति व समूह के बीच सम्बन्धों को संतुलित करने के लिए भारतीय समाज में पुरूषार्थ के माध्यम से व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवन में अपने विभिन्न कर्तव्यों का निर्वहन संतुलित ढंग से करता है। इस संसार में व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए जो भी कार्य करता है, उनका अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना होता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए धर्म, अर्थ और काम ऐसे पुरूषार्थ है जो व्यक्ति को उसके जीवन के विभिन्न कर्तव्यों तथा दायित्वों का बोध कराते है और यही तीनों पुरूषार्थो को प्राप्त करके व्यक्ति अन्त में जीवन मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है और मोक्ष को प्राप्त करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक व्यक्ति जो संसार में जन्म लेता है, अपना सम्पूर्ण जीवन इन्ही पुरूषार्थो के माध्यम से मोक्ष प्राप्ति के लिए करता है। वास्तव में मानव की वास्तविक प्रकृति आध्यात्मिक होती है और जीवन का मुख्य उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करना होता है। धर्म को एक महत्वपूर्ण पुरूषार्थ माना गया है। धर्म ऐसा पुरूषार्थ है जो व्यक्ति को अपने कर्तव्य पालन तथा उत्तरदायित्वों का निर्वहन सही मार्ग के द्वारा करने को प्रेरित करता है। धर्म और नैतिकता दोनों ही अभिकरण ऐसे है, जो व्यक्ति के समक्ष आर्दश मूल्यों को अपने व्यवहार में सम्मिलित करने के लिए बाध्य करते है। कहने का आशय यह है कि सामाजिक नियंत्रण में धर्म तथा नैतिकता का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि इन दोनों का ही सम्बन्ध सांसारिक जीवन से न होकर पारलौकिक जीवन से होता है। प्रत्येक मनुष्य धार्मिक एंव नैतिक विचारों से बधां होता है तथा अलौकिक एवं अदृश्य शक्ति पर विश्वास रखते हुए अपने कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों का निर्वहन इस प्रकार करता है कि किसी का अहित न हो और वह सही मार्ग का चुनाव कर अपने कर्तव्यों का पालन करें। जिससे उसे परलोक में मोक्ष की प्राप्ति तो होगी ही साथ ही सांसारिक जीवन भी सुधर जायेगा। संक्षेप में कहा जा सकता है कि धर्म तथा नैतिकता दोनों ही अभिकरण ऐसे है जो व्यक्ति के व्यवहार पर नियंत्रण रखकर धर्म के मार्ग पर चलने को प्रेरित करती है। यह भी विश्वास दिलाती है कि इससे पुन्य की प्राप्ति होगी और मोक्ष को प्राप्त होगा

4.2 धर्म का अर्थ तथा परिभाषा

जैसा कि विदित है कि विकसित मस्तिष्क के कारण इस संसार में मानव अन्य जीव जन्तुओं से श्रेष्ठ प्राणी माना जाता है। आदिम युग से वर्तमान तक मनुष्य के लिए जीवन आज भी रहस्य बना हुआ है। जिज्ञासु प्राणी होने के कारण व्यक्ति के मस्तिष्क में प्रतिदिन ये विचार आते है कि जीवन क्या है, और जीवन में दिन प्रतिदिन होने वाले

परिवर्तन कैसे होते है। अन्त में जब वह इन कारणों को ज्ञात नही कर पाता तो उस अदृश्य शक्ति को सम्पूर्ण सृष्टि का जनक तथा शक्तिशाली समझ कर उसकी पूजा तथा आराधना करने लगता है। धीरे–धीरे यही धर्म का रूप धारण कर लेता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसी अलौकिक शक्तियां जो हमारे विश्वासों से संबंधित होता है धर्म कहलाती है। अनेक समाजशास्त्रियों ने धर्म की अलग–अलग परिभाषायें दी है, जो निम्नवत् है।

जानसन के अनुसार "धर्म कम या अधिक मात्रा में अधि प्राकृतिक तत्वों, शक्तियों, स्थानों और आत्माओं से संबंधित विश्वासों तथा आचरणों की एक संगठित व्यवस्था है।"

मैकाइवर के कथनानुसार, "धर्म जैसा कि हम समझते आए है से केवल मानव की बीच का संबंध ही नही, एक उच्चतर शक्ति के प्रति मानव का संबंध भी सूचित करता है।"

सर जेम्सक्रेजर के अनुसार, " धर्म से मैं मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की संतुष्टि या आराधना समझता हूँ जिनके संबंध में यह विश्वास किया जाता है कि वे प्रकृति और मानव जीवन को मार्ग दिखलाती और नियंत्रित करती है।"

क्रिस्टोफर डासन, "जब कभी और जहां कही मानव को ऐसी बाध्य शक्तियों पर आश्रित रहना पड़ता है जो उसकी अपनी शक्तियों से अधिक रहस्यपूर्ण व ऊँची हो तो धर्म की उत्पत्ति होती है और ऐसी शक्तियों के सामने मानव एक प्रकार के भय एवं तुच्छता की भावना से भर जाता है। जिस भावना को धार्मिक भावना कहा जाता है। यह भावना उपासना और प्रार्थना की जड़ है।"

क्रेजर, "धर्म से मेरा तात्पर्य मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की संतुष्टि अथवा अराधना करना है जिनके बारे में व्यक्तियों को यह विश्वास है कि वे प्रकृति और मानव जीवन को नियंत्रित करती है तथा उनकों निर्देश देती है। "

मैलीनास्की, "धर्म क्रिया की एक विधि और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी धर्म एक समाजशास्त्रीय तथ्य के साथ ही एक व्यक्गित अनुभव भी है।"

डब्लू राबर्टसन, "धर्म अनजान शक्तियों का अस्पष्ट भय नही है न भय की उपज है। अपितु किसी समुदाय के सभी सदस्यों के साथ उस समुदाय के सभी सदस्यों के साथ उस समुदाय का हित चाहने वाली ऐसी शक्ति के साथ संबंध है जो उसके कानून एवं आचार व्यवस्था की रक्षा करती है।"

दुर्खिम, "धर्म पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वासों और आचरणों की वह समग्र व्यवस्था है जो इन पर विश्वास करने वालो को एक नैतिक समुदाय में संयुक्त करती है।"

क्यूबर, "धर्म सांस्कृतिक जीवन से संबंधित व्यवहार का वह प्रतिमान है जिसका निमार्ण पवित्र विश्वासों से संबंधित उद्वेगपूण विचारों तथा इन्हें व्यक्त करने वाली बाहरी आचरणों से होता है।"

मिल्टन यंगर, "धर्म वह व्यवस्थित प्रयास है जिससे हम जीवन की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है पूरा करते है।"

जान्सन, "धर्म कम या अधिक मात्रा में अलौकिक शक्तियों तत्वों तथा आत्मा से संबंधित विश्वासों और आचरणों की एक संगठित व्यवस्था है।"

एण्डरसन, "धर्म एक नैतिक आध्यात्मिक संस्था अथवा अनेक विचारों, उद्वेगों और विश्वासों का एक संकुल है जो किसी अलौकिक शक्ति के प्रति अभिव्यक्ति होता है।"

अर्नाल्ड ग्रीन, "धर्म ऐसे विश्वासों की प्रतीकात्मक क्रियाओं एवं वस्तुओं की प्रणाली है जो मनुष्य को अनदेखी एवं नियंत्रण क्षेत्र से दूर अति प्राकृतिक शक्ति के साथ संबंध कर देती है।"

टायलर, "धर्म आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास है।"

हानिगशीम, "प्रत्येक मनोवृत्ति जो इस विश्वास पर आधारित या इस विश्वास से संबंधित है कि अलौकिक शक्तियों से संबंधित है कि अलौकिक शक्तियों का अस्तित्व है और उनसे संबंध स्थापित करना सम्भव एवं महत्वपूर्ण है धर्म कहलाती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि मनुष्य उन अदृश्य शक्तियों पर विश्वास करता है जिन्हें वह शक्तिशाली तथा श्रेष्ठ समझता है। कहने का तात्पर्य यह है कि लगभग सभी समाजशास्त्रियों ने धर्म को एक अलौकिक शक्तियों से जोड़ा है जिस पर मानव पूर्ण रूप विश्वास करके उनकी अराधना या पूजा करता है। साथ ही यह धार्मिक प्रवृत्तिया मनुष्य के विचारों तथा व्यवहारों पर नियंत्रण तो लगाती ही हैं साथ ही उन्हें समाज से समायोजित करने के लिए आवश्यक निर्देश भी देती है।

4.3 धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्त

धर्म की उत्पत्ति के सन्दर्भ में अनेक समाजशास्त्रियों की विचारधाये भिन्न–भिन्न है। धर्म की उत्पत्ति आदिकालीन समाज से मानी जाती है तथा ऐसा माना जाता है कि प्राचीन घटनायें धर्म की उत्पत्ति का प्रमुख कारण रहा है।

1. **आत्मवाद–** एडवर्ड टायलर ने सर्वप्रथम इस मत का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार धर्म की उत्पत्ति प्रेतात्माओं के भय से हुई है। जनजातीय समाज में

आत्मवाद के सिंद्धान्त को धर्म की उत्पत्ति का कारण माना है। इन समाजों में ऐसा माना जाता है कि व्यक्ति का केवल शरीर मरता है जबकि आत्मा अजर–अमर है। कहा जाता है कि व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात भी आत्मा कभी समाप्त नही होती है। ये आत्मायें किसी के भी शरीर अथवा पदार्थ में शामिल होकर समाज में मानवीय क्रियाओं को संचालित एवं निर्देशित करते है। यह व्यक्ति के जीवन को पूर्ण रूप से प्रभावित भी करते है। अतः व्यक्ति के लिए इन आत्माओं को प्रसन्न रखना आवश्यक हो गया, जिसके लिए वह उनकी आराधना करने लगा। आत्मा के अस्तित्व को पहचानने के सन्दर्भ में टायलर ने माना है कि जनजातियों ने अपने अनुभव के आधार पर आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किया है। किसी प्रकार की परछाई सपने देखना तथा व्यक्ति का निर्जीव होकर मृत्यु को प्राप्त करना ये ऐसे उदाहरण है जिसके आधार पर व्यक्ति ने माना कि आत्मा कभी नष्ट नही होती है। आदिम समाज में जब व्यक्ति का मष्तिष्क पूर्ण विकसित नही था तब प्राकृतिक घटनायें उसके लिए रहस्य बनी हुई थी तब उसे यह विश्वास होने लगा कि कुछ अदृश्य शक्तियां ऐसी है जो उसके आस–पास विद्यमान है और उसके अच्छे और बुरे को उस आत्मा से जोड़कर देखने लगा और आत्मा की शक्ति पर विश्वास करके वह उसकी आराधना तथा पूजा करने लगा।

2. जी0 के0 अग्रवाल ने अपनी पुस्तक मानव समाज में आत्माओं के दो प्रकार के अस्तित्व का स्वीकार किया है। पहला शरीर आत्मा तथा दूसरा स्वतन्त्र आत्मा। आपका मानना है कि शरीर आत्मा स्वतन्त्र नही होती शरीर से एक बार निकल जाने पर यह पुनः लौटकर नही आती और फलस्वरूप व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। स्वतन्त्र आत्मा शरीर से बार–बार निकलती है और पुनः शरीर में प्रवेश कर जाती है। यह स्वतन्त्र आत्मा जिस स्थान पर भी विचरण करती है अथवा जिस व्यक्ति से भी सम्पर्क स्थापित करती है उन सारी घटनाओं का धुधला आभास शरीर को भी स्वप्न के रूप मे होता रहता है। आदिवासियों का मानना था कि ये अदृश्य आत्माए उनका अनिष्ट भी कर सकती है और विपत्तियों से उनकी रक्षा भी कर सकती है। इसी प्रकार टायलर का विश्वास है कि पूर्वजों की आत्माओं से डरना और उनको प्रसन्न रखने के लिए उनकी पूजा व आराधना करना ही धर्म की उत्पत्ति का मौलिक श्रोत है।

3. **जिवित सत्तावाद अथवा मानावाद का सिद्धान्त–** बिट्रिश मानवशास्त्री राबर्ट मेरेर ने धर्म के एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे उससे जीवित सत्तावाद अर्थात मानावाद का सिद्धान्त कहा। मैलेनेशिया की जनजातियों के अध्ययन के आधार पर इस सिद्धान्त का जन्म हुआ। अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ

कि मैलेनिशिया की जनजातियां एक अलौकिक एवं अदृश्य शक्तियों पर विश्वास करती है। उनका मानना है कि कुछ ऐसी अदृश्य शक्तिशाली शक्तियां है जो प्रत्येक व्यक्ति तथा पदार्थो में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है। मैलेनिशिया की जनजातियां इस शक्ति को "माना" के रूप में जानती है। कुछ जनजातियां इसे माना के अतिरिक्त बाकुवा अथवा बोगा भी कहते है। प्रमुख समाजशास्त्री लोवी ने इस शक्ति को बिजली के प्रभाव के समान स्वीकार किया है। जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति अथवा एक वस्तु से दूसरी वस्तु में जा और आ सकती है। जनजातियां यह विश्वास करती है कि माना की यह शक्ति उन्हें सफलता भी दिला सकती है और इसके दोषपूर्ण होन पर असफलता का कारण भी बन सकती है।

4. अलौकिक शक्तियों पर विश्वास करने के कारण ही जनजातियों ने इसकी पूजा आराधना करना आरम्भ कर दिया। यही पूजा धर्म का मौलिक रूप था। अपनी माना शक्ति को दूसरों के पास जाने से रोकने और अन्य व्यक्तियों अथवा वस्तुओं को माना शक्ति के सम्भावित दुष्परिणामों से बचाने के लिए ही जनजातियों में अनेक प्रकार के निषेधों और पवित्रता की धारणा का विकास हो गया।

5. **समाजशास्त्रीय सिद्धान्त–** समाजशास्त्री सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वप्रथम दुर्खिम ने अपनी पुस्तक "दि एलीमेन्ट्री फोर्म्स आफ रिलीजियस लाइफ" में किया। दुर्खिम ने धर्म को पूर्णतया एक सामाजिक तथ्य माना है। समाज में यह एक सामुहिक चेतना के रूप में विद्यमान रहता है। दुर्खिम ने सम्पूर्ण सामाजिक तथ्यों को दो भागों में विभाजित किया है। साधारण तथा पवित्र। दुर्खिम के अनुसार सभी धर्मो का संबंध पवित्र समझी जाने वाली वस्तुओं से है। लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नही है कि सभी पवित्र वस्तुएं धार्मिक या ईश्वरीय होती है। ये पवित्र घटनाएं सामुहिक चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। इसी कारण व्यक्ति इनसे प्रभावित भी होते है। दुर्खिम ने आस्ट्रेलिया की अरूण्टा जनजाति के अध्ययन से निष्कर्ष निकाला है कि पवित्र वस्तुओं तथा घटनाओं को व्यक्ति अपवित्र वस्तुओं से दूर रखते है तथा उसकी रक्षा करते है। यही संस्कार तथा आचरण बाद में धार्मिक क्रियाओं का रूप लेते है। दुर्खिम के अनुसार एक दुनिया (समाज) तो वह है जिससे उसका प्रतिदिन का जीवन नीरस रूप से व्यतीत होता है। लेकिन दूसरी दुनियां वह है जिसमें व्यक्ति उस समय तक प्रवेश नही कर सकता जब तक कि उसका संबंध ऐसी असाधारण शक्तियों से न हो जाये जिससे वह अपने अस्तित्व को ही न भूल जाये। पहली दुनियां साधारण है और दूसरी दुनियां पवित्र।

6. दुर्खिम ने पवित्र तथा अपवित्र वस्तुओं में भेद टोटमवाद के आधार पर स्पष्ट किया है। टोटम कोई भी पशु, पौधा या निर्जिव पदार्थ है जिसे ये जनजातियां उन्हें अपने पूर्वज के रूप में स्वीकार करती हैं तथा उसके प्रति भय, श्रद्धा तथा सम्मान की भावना रखी जाती है। दुर्खिम ने धर्म को परिभाषित करते हुए कहा है कि धर्म पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वासों तथा क्रियाओं की वह सम्पूर्ण व्यवस्था है जो अपने सदस्यों को एक नैतिक समुदाय में बांधती है।

7. **प्रकृतिवाद–** प्रकृतिवाद सिद्धान्त के प्रतिपादक मैक्स मूलर है। मैक्स मूलर ने इस संबंध में कहा है कि आदिकालीन मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन प्रकृति के बीच में रहकर व्यतीत होता था। अतः प्राकृतिक शक्तियों ने उसके अन्दर भय तथा श्रद्धा को उत्पन्न किया। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति की कई वस्तुएं जहां एक ओर व्यक्ति के लिए उपयोगी होती है वहीं दूसरी ओर व्यक्ति के लिए विनाशकारी भी हो सकती है। जैसे वर्षा कभी लाभ पहुचाती है तो कभी विनाश भी करती है। प्राकृतिक स्वरूप में परिवर्तन होने से व्यक्ति यह मानने लगा कि संसार में ऐसी कोई अदृश्य शक्तियां है जो मानव से भी अधिक शक्तिशाली है तथा व्यक्ति को परोक्ष रूप से प्रभावित करती रहती है। अतः मैक्स मूलर का विचार है कि आदिमानवों ने भी प्राकृतिक शक्तियों जैसे–

सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, जल, पेड़–पौधें के प्रति श्रद्धा तथा आराधना करना प्रारम्भ कर दिया जिससे यह शक्तिया मानव के लिए उपयोगी बन जाये तो उनके दुष्परिणामों से मुक्ति मिल जाये। अतः प्राकृतिक शक्तियों से भय के कारण ही धर्म की उत्पत्ति हुइ तथा इस सिद्धान्त को प्रकृतिवाद सिद्धान्त कहा गया।

4.4 धर्म के प्रमुख तत्व

धर्म के प्रमुख तत्वों को निम्नांकित आधार पर प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. **अदृश्य एवं अलौकिक शक्तियों पर विश्वास–** धर्म का सबसे प्रमुख तत्व व्यक्ति द्वारा अदृश्य एवं अलौकिक शक्तियों पर विश्वास करना है। व्यक्ति का मानना है कि संसार में कुछ ऐसी शक्तिया भी होती है जो मनुष्य को दिखाई नही देती परन्तु वह इतनी शक्तिशाली होती है कि व्यक्ति की समस्त क्रियाओं को संचालित करने की भी क्षमता रखती है। व्यक्तियों का यह विश्वास होता है कि हमारे पाप और पुण्य का निर्धारण भी यही शक्तियां करती है जिसके परिणाम स्वरूप हमें अपने जीवन में सफलता और असफलता तथा सुख–दुख की प्राप्ति है। ऐसा माना जाता है कि हमारे कर्मों के आधार पर ही यह शक्तियां हमारे सम्पूर्ण जीवन को अच्छे या बूरे रूप में प्रभावित करती है।

2. **धार्मिक स्तरीकरण–** किसी भी समाज में धार्मिक क्रियाओं को करने वाले व्यक्तियों का समाज या समूह में विशेष स्थान होता है। जैसे पुजारी, तांत्रिक ओझा आदि धर्म के प्रति निष्ठा रखने वाले व्यक्ति जो संयम में रहकर अपनी जीवन व्यतीत करते है तथा धर्म का प्रचार प्रसार करते है उन्हें समाज या समूह में द्वितीय स्थान प्राप्त होता है। जैसे साधु, सन्त या महन्त। समाज में सबसे निम्नतम् स्थान उन व्यक्तियों का होता है जो अपवित्र कार्य करते है या अपवित्र व्यवसाय करते हैं जैसे अस्पृश्य जातियां आदि। इस प्रकार कार्यात्मक आधार पर प्रत्येक समाज में धर्मगत् संस्तरण सा स्तरीकरण पाया जाता है।

3. **धार्मिक क्रिया कलाप–** धर्म का एक महत्वपूर्ण तत्व व्यक्ति द्वारा धर्म के प्रति अपने विश्वास को प्रकट करने के लिए किये गये विभिन्न धार्मिक क्रिया कलापों की अभिव्यक्ति है। जैसे मन्दिर में जाकर पूजा–पाठ करना, व्रत रखना, यज्ञ तथा विशेष कर्मकाण्ड करना आदि।

4. **धार्मिक अनुष्ठानों की प्रधानता–** अदृश्य शक्तियों को प्रसन्न रखने के लिए प्रत्येक समाज में विभिन्न धार्मिक क्रियाओं के आधार पर कुछ धार्मिक अनुष्ठान किये जाते हैं जो उन शक्तियों के प्रति विश्वास तथा श्रद्धा को प्रकट करते है। ब्रूम ने इस संबंध में कहा है कि धार्मिक अनुष्ठानों का तात्पर्य ऐसी स्वीकृत क्रियाओं से है जो स्वयं पवित्र होती है तथा साथ ही किसी पवित्र वस्तु को प्रतीकात्मक रूप से स्पष्ट करती है। [16]

एण्डरसन एवं पार्कर ने धर्म के चार प्रमुख तत्वों का उल्लेख किया है जो निम्नांकित है।

1. **अति प्राकृतिक शक्तियों में विश्वास–** प्रत्येक धर्म किसी अप्राकृतिक शक्तियों जो मनुष्य एवं उसके पर्यवेक्षणीय संसार से परे है, में विश्वास करता है। ये शक्तिया मानवीय घटनाओं एवं परिस्थियों को प्रभावित करती है। ऐसा माना जाता है कुछ इनको ईश्वर कुछ देवता कहते है तो अन्य इन शक्तियों का कोई नामकरण नही करते।

2. **अति प्राकृतिक शक्तियों के प्रति मनुष्य का अनुकूलन–** चूंकि मनुष्य इन शक्तियों पर आश्रित है अतः उसे स्वयं को इनके प्रति अनुकूलित करना चाहिए। परिणाम स्वरूप प्रत्येक धर्म में कुछ बाह्य क्रियाओं यथा प्रार्थना, उपासना, कीर्तन, यज्ञ एवं भक्ति के अन्य प्रकारों की व्यवस्था होती है। इन क्रियाओं को न करना पाप समझा जाता है।

3. **कार्यो की पाप में परिभाषा–** प्रत्येक धर्म कुछ कार्यो को पाप कहता है। ऐसे कार्य ईश्वर अथवा देवताओं के साथ मनुष्य के मधुर संबंधों को नष्ट करते है एवं उसे उनका क्रोध सहन करना पड़ता है।

4. **मुक्ति की विधि–** मनुष्य को किसी ऐसी विधि की आवश्यकता होती है जिसके द्वारा वह अपने दोष को दूर कर ईश्वर के साथ समरसता को पुनः प्राप्त कर सके। इस प्रकार बौद्ध धर्म निमार्ण तथा हिन्दू धर्म–कर्म के बंधन से छुटकारा दिलाने के रूप में मुक्ति की व्यवस्था करता है।

4.5 नैतिकता का अर्थ तथा परिभाषा

जैसा कि आप सभी जानते है कि मनुष्य जिस समूह या समुदाय में रहता है उसका व्यवहार तथा आचरण कुछ नियमों के आधीन रहता है। इन व्यवहारों को करते समय मानव यह सोचता है कि वह जो भी कार्य करता है वह अच्छा कार्य तथा बुरा कार्य होता है। गलत कार्य करने का भय उस पर बुरा प्रभाव डाल सकता है। अतः अच्छे कार्य के अर्न्तगत किये गये प्रत्येक कार्य जो सामाजिक नियमों के अनुरूप हो नैतिकता कहलाता है। नैतिकता के अर्न्तगत किये गये व्यवहारों का संबंध हमारी आत्मा से होता है। जैसे बड़ो का सम्मान करना, ईमानदारी, दूसरों के प्रति वफादार रहना, सदैव सच बोलना तथा सद्मार्ग पर चलना कुछ ऐसे नैतिक नियम है जो समाज द्वारा स्वीकृत होते है और व्यक्ति के व्यक्तित्व को भी संतुलित रखते है। विभिन्न समाजशास्त्रीयों ने नैतिकता की अलग–अलग परिभाषाऐ दी है जो निम्नलिखित है।

डेविस, "नैतिकता कर्तव्य की आन्तरिक भावना अर्थात उचित और अनुचित पर बल देती है।"

जिम्सबर्ट के कथनानुसार, "नैतिक नियम नियमों की वह व्यवस्था है जो अच्छे और बुरे से संबंध है तथा जिसका अनुभव व्यक्ति को अर्न्तआत्मा के द्वारा होती है।"

मैकाइवर के अनुसार, "धर्म एंव नैतिकता की उत्पत्ति एक साथ हुई है तथा उन्होनें एक दूसरे को शक्ति प्रदान की है। हम यह नहीं कह सकते कि पहले धार्मिक नियम उत्पन्न हुए या नैतिक नियम। सामाजिक तथा नैतिक चिन्तन के तत्वों को धर्म अपने में मिला लेता है और नैतिक नियम तो धार्मिक अवधारणाओं से बहुत कुछ प्रभावित होते है। नैतिक नियमों के निर्देशों ने धार्मिक विश्वासों के स्थायित्व पर पथ प्रशस्त किया हैं। धार्मिक नियमों ने अपनी अति प्राकृतिक सम्पुष्टियों के सहारे एक समूह की नीति को स्थाई बना दिया है। साथ ही मैकाइवर का कहना है कि नियम धार्मिक ही है चाहे इसके उपदेश ईश्वर के प्रति मानव के संबंधों से संबंधित हो जैसा कि प्रथम चार आदेशों में है या मानव के संबंधों से जैसे कि अतिंम छः आदेशों में है। नियम जब

स्वप्रगति परीक्षण

1. सर जेम्स फ्रेजर ने धर्म की क्या परिभाषा दी है ?
2. मैलीनास्की के धर्म के बारे में क्या विचार हैं ?
3. दुर्खिम ने पवित्र तथा अपवित्र वस्तुओं में क्या भेद किया है ? इन्होंने धर्म के बारे में क्या कहा है ?

आचरण के स्तर को प्रसारित करता है तो वह नैतिक है। जो अच्छे एंव बुरे के मानवीय स्पष्टीकरण से अपना पर्याप्त औचित्य प्राप्त करता है।

इस संबंध में श्री अरविन्द घोष का कहना है कि सच्चा धर्म आध्यात्मिक धर्म है जो आत्मा में निवास करता है। जो बुद्धि से परे मनुष्य के कलात्मक, आचारात्मक एवं व्यवहारिक जीवन से परे है। इसका प्रयास मनुष्यों को आत्मा के उच्चतर प्रकाश एवं विधान से सूचित एंव शासित करना होता है। दूसरी ओर धर्मवाद स्वयं को निम्न प्राणियों के संकुचित अति धर्म पौराणिक उत्कर्ष उत्कर्षण तक ही सिमित रखता है अथवा बौद्धिक, अंधविश्वासों, रूपों एवं संस्कारों किन्ही स्थाई एवं अनमनीय नैतिक नियमों किसी धार्मिक राजनैतिक अथवा धार्मिक सामाजिक प्रणाली पर अनन्य बल देता है।

कानून और नैतिकता के संबंध को स्पष्ट करते हुए मैकाइवर ने कहा है कि सब व्यक्तियों के लिए केवल एक ही कानून होना आवश्यक है किन्तु नैतिक नियम प्रत्येक व्यक्ति के अपने आचरण व स्वभाव की अभिन्यासी होने के कारण प्रत्येक के लिए भिन्न है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि नैतिकता समाज या समूह द्वारा ऐसे स्वीकृत नियम है जो हमें अच्छे या बुरे का भेद करने या समझनें में मदद करता है तथा यह हमारे चरित्र की पवित्रता एवं सत्यता के द्वारा समाज में व्यवहार करने को प्रेरित करता है।

4.6 नैतिकता की विशेषताऐं

नैतिकता की विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1. नैतिकता ऐसे नियम है जो समाज द्वारा स्वीकृत होते है।
2. नैतिकता चारित्रिक गुणों को विकसित करता है जैसे सत्य के मार्ग में चलना तथा इमानदारी के साथ जीवन व्यतीत करना।
3. समूह तथा समाज के स्वरूप के आधार पर नैतिक नियम बनते तथा बिगड़ते रहते है। कहने का तात्पर्य यह है कि नैतिकता में परिवर्तनशीलता का गुण पाया जाता है।
4. नैतिकता एक ऐसा आन्तरिक तथ्य है जिस पर बाहरी नियमों का प्रभाव नही पड़ता क्योंकि व्यक्ति पाप और पुण्य को ध्यान में रखकर ही नैतिक नियमों का पालन करता है और नैतिक नियम उसके आंतरिक विचार होते है।

5. नैतिकता व्यक्ति के विचार, विवेक एवं तर्क पर आधारित होते है। क्योंकि व्यक्ति सदैव उन्हीं नियमों का पालन करता है जिससे किसी दूसरे व्यक्ति का अहित न हो।

4.7 धर्म तथा नैतिकता में अन्तर

ऐसा माना जाता है कि धर्म और नैतिकता का आपस में एक घनिष्ट संबंध होता है। परन्तु वास्तविक रूप में ये दोनों अवधारणाएं एक दूसरे से विल्कुल भिन्न है। धर्म और नैतिकता में अन्तर को निम्नांकित रूप में समझा जा सकता है।

1. धर्म एक ऐसी अलौकिक शक्तियों का पुंज है जिसकी अवहेलना करने का साहस व्यक्ति नहीं कर सकता। क्योंकि ऐसा करने पर व्यक्ति समझता है कि ईश्वर उसे दण्ड देगा जबकि नैतिकता का पालन व्यक्ति समाज में अपने को समायोजित करने के लिए करता है और नैतिक नियमों की अवहेलना से उसे सामाजिक बहिष्कार का भय बना रहता है।
2. धार्मिक नियम कभी भी परिवर्तनशील नही होते, समाज द्वारा एक बार कोई भी धार्मिक नियम स्वीकृत होने के पश्चात उनमें किसी प्रकार का भी परिवर्तन नही किया जा सकता जबकि नैतिक नियम समाज तथा परिस्थियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते है।
3. धर्म मुख्यतया अतार्किक होता है जबकि नैतिकता व्यक्ति के विवेक एवं तर्क पर आधारित होता है।
4. धार्मिक नियम अपरिवर्तनशील होने के कारण कभी–कभी समाज के विकास एंव प्रगति में बाधक होते है जबकि नैतिकता में परिवर्तनशीलता का गुण होने के कारण वह सदैव समाज हित में कार्य करता है।

4.8 सामाजिक नियंत्रण में धर्म एवं नैतिकता का महत्व

सामाजिक नियंत्रण के मुख्य अभिकरण के रूप में धर्म एवं नैतिकता का प्रमुख महत्व है। धर्म तथा नैतिकता सामाजिक संगठन को दृढता प्रदान करने में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते है। क्योकि प्रत्येक व्यक्ति धर्म तथा नैतिकता से गहराई से जुड़ा होता है और उसके नियमों की अवहेलना करने का साहस नही कर पाता। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि व्यक्ति धर्म एवं नैतिकता का पालन उचित और अनुचित या पाप तथा पुण्य के आधार पर करता है। अलौकिक तथा अदृश्य शक्तियों के आधीन रहकर जब कोई व्यक्ति समाज में व्यवहार करता है तब उसके अन्दर यह भावना निहित होती है कि यदि वह धर्म एवं नैतिक नियमों के विरूद्ध कोई कार्य करता है तो अलौकिक एवं अदृश्य शक्तियां उससे अप्रसन्न हो जायेगी और उसका अहित करेंगी। कहने का

तात्पर्य यह है कि सामाजिक नियंत्रणों के साधन में कानून, न्यायलय, पुलिस तथा दण्ड प्रक्रिया की अवहेलना तो व्यक्ति कर सकता है किन्तु अलौकिक तथा अदृश्य शक्तियों का भय व्यक्ति को सामाजिक नियमों की अवहेलना करने से रोकता है। यही कारण है कि समाज को संगठित, व्यवस्थित एंव नियंत्रित करने में धर्म तथा नैतिकता का विशेष महत्व है। इस संबंध में जॉनसन का कहना है कि जीवन से निराश व्यक्ति सामाजिक नियमों की सबसे अधिक अवहेलना करता है। इस स्थिति में धर्म एकमात्र ऐसा अभिकरण है जो व्यक्ति के सामने नैतिक मूल्यों के महत्व को स्पष्ट करता है और व्यक्ति को यह बताता है कि दूसरे लोग उससे कैसे व्यवहार की आशा करते है।

इसी प्रकार डेविस ने भी अपनी अवधारणाओं में स्पष्ट किया है कि यदि हमारा लक्ष्य किसी विश्वास का प्रचार करना है तो राजशक्ति उसे असफल बना सकती है। यदि हमारा लक्ष्य अपने देश को संसार का अगवा बनाना है तो विनाशकारी युद्ध इस पर तुषारापात कर सकता है। यदि लक्ष्य प्रसिद्धि प्राप्त करना है तो एक छोटी सी असफलता ही हमें निराश कर सकती है। इस प्रकार सभी संसारिक लक्ष्य तरह–तरह की निराशाओं को जन्म देकर व्यक्तित्व को विघटित कर सकते है। लेकिन कुछ लक्ष्य ऐसे भी है जिन्हें प्राप्त करने में असफलता की कोई संभावना नही होती। यह लक्ष्य अधिदैविक लक्ष्य है तथा यही सामाजिक जीवन में उत्पन्न निराशा को दूर करने का भी प्रयत्न करते है। इस प्रकार पवित्र वस्तुओं की विद्यमानता और पवित्र संस्कारों में भाग लेना व्यक्ति को सुख ही प्रदान नही करता बल्कि उसके विश्वास को भी दृढ बनाता है।

4.9 सारांश

उपरोक्त सम्पूर्ण विवेचना के आधार पर हम यह कह सकते है कि धर्म तथा नैतिकता दोनों ही अभिकरण सामाजिक नियंत्रण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते है। सामाजिक व्यवस्था को संगठित रखने में धार्मिक नियम व्यक्ति के विचारों तथा व्यवहारों को नियंत्रित रखता है। व्यक्ति के विचार तथा व्यवहार मनोवैज्ञानिक रूप से उचित तथा अनुचित विचारधारा से जुड़े रहते है। यही उचित तथा अनुचित विचारधारा उसके पाप और पुण्य जैसी अवधारणा को जन्म देते है। सरल शब्दों में यदि कहे तो व्यक्ति ईश्वरीय भय के आधीन रहकर अपना प्रत्येक कार्य करता है। अच्छे कर्मो के लिए पुण्य तथा बुरे कर्मो के लिए पाप की भावना निहित होती है। अदृश्य तथा अलौकिक शक्तियों के भय से व्यक्ति का व्यवहार संतुलित रहता है और धार्मिक नियमों तथा नैतिक नियमों के अनुसार ही व्यवहार करता है तथा समाज को संगठित रखने में भी सहयोग प्रदान करता है साथ ही सामाजिक नियंत्रण को प्रभावपूर्ण बनाये रखता है।

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि धर्म तथा नैतिकता समाज या समूह में व्यक्ति को संतुलित व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है तथा व्यक्ति इन नियमों का पालन भी नैतिक कार्यो एवं पुण्य प्राप्ति के लिए करता है जिससे सामाजिक व्यवस्था को संगठित एंव व्यवस्थित रखने में मदद मिलती है।

4.10 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1. सर जेम्सफ्रेजर के अनुसार, " धर्म से मैं मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की संतुष्टि या आराधना समझता हूँ जिनके संबंध में यह विश्वास किया जाता है कि वे प्रकृति और मानव जीवन को मार्ग दिखलाती और नियंत्रित करती है।"
2. मैलीनास्की, "धर्म क्रिया की एक विधि और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी धर्म एक समाजशास्त्रीय तथ्य के साथ ही एक व्यक्गित अनुभव भी है।"
3. दुर्खिम ने पवित्र तथा अपवित्र वस्तुओं में भेद टोटमवाद के आधार पर स्पष्ट किया है। टोटम कोई भी पशु, पौधा या निर्जिव पदार्थ है जिसे ये जनजातियां उन्हें अपने पूर्वज के रूप में स्वीकार करती हैं तथा उसके प्रति भय, श्रद्धा तथा सम्मान की भावना रखी जाती है। दुर्खिम ने धर्म को परिभाषित करते हुए कहा है कि धर्म पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वासों तथा क्रियाओं की वह सम्पूर्ण व्यवस्था है जो अपने सदस्यों को एक नैतिक समुदाय में बांधती है।

4.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. धर्म को परिभाषित कीजिए तथा धर्म की उत्पत्ति के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए।
2. धर्म का क्या अभिप्राय है? धर्म के प्रमुख तत्वों एवं विशेषताओं की विवेचना कीजिए।
3. सामाजिक नियंत्रण के अभिकरण के रूप में धर्म की क्या भूमिका है? स्पष्ट करे।
4. नैतिकता किसे कहते है तथा नैतिकता की विशेषताएं समझाइए।
5. सामाजिक नियंत्रण के अभिकरण के रूप में धर्म तथा नैतिकता का क्या महत्व है?
6. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

   (अ) धर्म तथा नैतिकता।
   (ब) धर्म तथा नैतिकता में अन्तर।
   (स) धर्म तथा नैतिकता का महत्व।

NOTES

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

- डा0 जी0के0 अग्रवाल, "सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन" 2000
- डा0 जी0के0 अग्रवाल, "मानव समाज" 2000
- डा0 रामनाथ शर्मा तथा डा0 राजेन्द्र कुमार शर्मा, "सामाजिक परिवर्तन और समाजिक नियंत्रण" 1996
- विद्याभूषण तथा सचदेव, "समाजशास्त्र के सिद्वान्त" 2010
- जानसन, "ऐ सिस्टेमेटिक इन्ट्रोडक्सन" पेज नं0 392
- जेम्स को फ्रेजन द गोल्डन बॉग
- डासन, "द एज आफ द गोड्स " पेज नं0 22
- मैलीनास्की, " मैजिक साइंस एण्ड रिलिजन एण्ड अदर ऐसेस" पेज नं0 24
- कोटेड बाय एस0 कोइनियल सोसियोलोजी पेज नं0 110
- जे0 एफ0 क्यूबर, "सोसियोजलोजी ए सिनोप्सिस 1968 " पेज नं0 511
- जे0 मिल्टन यंगर, "रिलीजन सोसियोलोजी एण्ड इन्डीविजुअल" पेज नं0 12
- एच0 जानसन, "सोसियोलोजी ए सिस्टेमैटिक इन्ट्रोडक्सन" पेज नं0 392
- किग्संले डेविस, "ह्यूमन सोसाइटी" पेज नं0 532
- जानसन, "सोसियोलोजी" पेज नं0 464
- किग्सलें डेविस, "ह्यूमन सोसाइटी" पेज नं0 73
- पी0 जिम्सबर्ट, "फण्डामेन्टल आफ सोसियोलोजी" पेज नं0 183
- मैकाइवर एवं पेज, "सोसाइटी" पेज नं0 157

इकाई 5

सामाजिक परिवर्तन एवं प्रकार
Social Change and Types

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा
5.3 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं
5.4 सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रतिमान
5.5 सामाजिक परिवर्तन के प्रकार
5.6 सामाजिक नियंत्रण में सामाजिक परिवर्तन की भूमिका
5.7 सारांश
5.8 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर
5.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप–

1. सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा समझ सकेंगे।
2. सामाजिक परिवर्तन के सामान्य विशेषताएं स्पष्ट हो जायेगी।
3. सामाजिक परिवर्तन कितने प्रकार का होता है जान जायेंगे।
4. सामाजिक नियंत्रण में सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख भूमिका स्पष्ट हो जायेगी।

5.1 प्रस्तावना

परिवर्तन प्रकृति का नियम है, समाज, समूह तथा सामाजिक व्यवस्था में सदैव परिवर्तन होते रहते है। मैरिल ने इस संबंध में कहा है कि मानव सभ्यता का सम्पूर्ण इतिहास सामाजिक परिवर्तन का ही इतिहास है। यह एक वास्ततिकता है कि समाज कभी भी स्थिर नही रह सकता। आदि काल में असभ्य मानव समाज परिवर्तन के कारण ही आज

वर्तमान में सभ्य तथा आधुनिक समाज का निर्माण हो पाया है। किसी भी समाज में परिवर्तन या तीव्र गति से होता है या धीमी गति से। परन्तु प्रत्येक समाज में परिवर्तन की प्रवृत्ति निरन्तर चलती रहती है। परिवर्तन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका स्वरूप एवं पद्धतिया समाज की परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। सामाजिक परिवर्तन जहां एक ओर समाज के विकास एवं प्रगति में अपना विशेष योगदान देता है वही कभी–कभी अनेकों प्रकार की समस्याऐं भी परिलक्षित होने लगती है। प्रो0 ग्रीन ने इस सम्बन्ध में कहा है कि "सामाजिक परिवर्तन समाज में सदैव विद्यमान रहता है क्योकि प्रत्येक समाज मे कुछ ना कुछ मात्रा में असंतुलन बना रहता है।"

अतः कहा जा सकता है कि परिवर्तन एक ऐसा सास्वत नियम है, जो प्रत्येक समाज में पाया जाता है। सामाजिक नियंत्रण के सन्दर्भ में यदि परिवर्तन को देखा जाए तो समाज के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों एवं दशाओं में होने वाले परिवर्तनों को संतुलित रखने के लिए सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता होती है। अतः सामाजिक नियंत्रण एवं सामाजिक परिवर्तन एक दूसरे के पूरक है तथा इनमें आपस में घनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता है।

5.2 सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा

सामाजिक परिवर्तन समाज मे होने वाले अनेकों परिवर्तनों को कहा जाता है, जिन्हें हम महसूस करते है तथा ये परिवर्तन हमें स्पष्ट दिखलाई देते है। संक्षिप्त शब्दों में किसी पूर्व अवस्था या अस्तित्व के प्रकार में पैदा होने वाले भिन्नता को ही परिवर्तन कहा जाता है।

सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ मे विभिन्न समाजशास्त्रियों ने अलग–अलग परिभाषाऐं दी है जोनिम्नांकित है।

मैकाइवर तथा पेज, "समाजशास्त्री होने के नाते हमारा प्रत्यक्ष संबंध केवल सामाजिक संबंधों के अध्ययन से है इस दृष्टिकोण से सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन को हम सामाजिक परिवर्तन कहते है।"

किग्सलें डेविस, "सामाजिक परिवर्तन से हमारा अभिप्राय उन परिवर्तनों से है, जो सामाजिक संगठन अर्थात समाज की संरचना और कार्यो में उत्पन्न होते है।"

गिन्सबर्ग के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन से हमारा तात्पर्य सामाजिक ढांचे में परिवर्तन होना है। अर्थात समाज के आकार इसके विभिन्न अगों के बीच के संतुलन अथवा समाज के संगठन में होने वाला परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है।"

गिलिन एवं गिलिन, "सामाजिक परिवर्तन का अर्थ जीवन की स्वीकृत विधियों में होने वाले परिवर्तन से है, चाहे ये परिवर्तन भौगोलिक दशाओं के कारण हो, सांस्कृतिक उपकरणों, जनसंख्या के रूप अथवा विभिन्न सिद्धान्तों के कारण हो अथवा एक समूह में अविष्कार या संस्कृति के प्रसार से उत्पन्न हुए हो।"

जेन्सन, "सामाजिक परिवर्तन को व्यक्तियों के कार्य करने और विचार करने के तरीको में उत्पन्न होने वाला परिवर्तन कहकर परिभाषित किया जा सकता है।"

एच0टी0 मजूमदार के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन समाज की क्रिया अथवा लोगों के जीवन में प्राचीन ढंग को विस्थापित अथवा परिवर्तिक करने वाला नवीन शोभाचार अथवा ढंग है।"

मैरिल एवं एल्ड्रज, "सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य यह है कि समाज के अधिकतर व्यक्ति इस प्रकार के कार्यो में संलग्न है जो उसके पूर्वजों से भिन्न है।"

एडरसन एवं पार्कर के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन में समाजकीय प्रकारों अथवा प्रक्रियाओ की संरचना अथवा क्रिया में परिवर्तन निहित है।"

गर्थ तथा मिल्स के कथनानुसार, "सामाजिक परिवर्तन के द्वारा हम उसे संकेत करते है जो समय के साथ–साथ कार्यो, संस्थाओं अथवा उन व्यवस्थाओं में होता है जो सामाजिक संरचना एवं उनकी उत्पत्ति, विकास एवं पतन से सम्बन्धित है।"

जी0 के0 अग्रवाल के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन का क्षेत्र व्यापक है समाज से हमारे सभी व्यवहार किसी न किसी सामाजिक नियम से प्रभावित होते है। इस प्रकार जब कभी भी सामाजिक नियमों, मूल्यों अथवा सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन के तत्व स्पष्ट होने लगते है तब सामाजिक व्यवस्था का रूप भी बदलने लगता है। परिवर्तन की इस दशा को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि समाज में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों का सम्बन्ध मानव समूह के सामाजिक सम्बन्धों एवं सामाजिक संरचना में होने वाले परिवर्तनों से है। सभी समाजशास्त्रीयों का मानना है कि जब सामाजिक संरचना में

परिवर्तन होता है तो वह समाज के अन्य पक्षों में भी अपना प्रभाव डालता है। जिससे सामाजिक नियम, मूल्य तथा सामाजिक दशायें परिवर्तित हो जाती है। जिसे सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है।

5.3 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं

प्रत्येक समाज दूसरे समाज से भिन्न होता है। व्यक्तियों के विचारों एवं व्यवहारों में भिन्नता होने के कारण सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते रहते है। इसकी कुछ सामान्य विशेषताओं को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

- **सार्वभौमिक प्रकिया**

सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक प्रकिया है। कोई भी समाज सदैव एक समान या स्थिर नही रह सकता है। समय के साथ उसमें परिवर्तन होना स्वाभाविक है। किसी समाज में परिवर्तन तीव्र गति से होता है तो किसी में धीमी गति से होता है।

- **सामुदायिक परिवर्तन का गुण**

सामाजिक परिवर्तन किसी एक व्यक्ति में होने वाले परिवर्तन को नहीं कहा जाता, बल्कि जब सम्पूर्ण समूह के सामाजिक सम्बन्धों, अर्न्तकियाओं तथा सामाजिक आर्दशों एवं मूल्यों में परिवर्तन होने लगता है तो उसे सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। कहने का आशय यह है कि जब सामुदायिक रूप से परिवर्तन होता है तो वह सामाजिक परिवर्तन कहलाता है। जिससे समाज के प्रत्येक भाग में भी परिवर्तन होता है।

- **निरन्तर चलने वाली प्रकिया**

सामाजिक परिवर्तन एक स्वभाविक प्रकिया है जो समाज में निरन्तर चलती रहती है। मनुष्य अपनी परिस्थितियों के अनुसार समाज में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं में बदलाव के कारण होने वाले परिवर्तन सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन लाते है। अतः यह प्रकिया किसी भी समाज या समूह में निरन्तर परिवर्तन लाता रहता है।

- **निश्चित भविष्यवाणी का आभाव**

प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार, मनोवृत्तियां एव विचार व मूल्य समय के अनुसार परिवर्तित होते रहते है तथा सामाजिक परिवर्तन भी उन्हीं के अनुरूप होते है। अतः

परिवर्तनशीलता का गुण होने के कारण सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में कोई भी निश्चित भविष्यवाणी नही की जा सकती है।

- **सामाजिक परिवर्तन समान नही होता**

यद्यपि सामाजिक परिवर्तन प्रकृति का नियम है और प्रत्येक समाज में सामाजिक परिवर्तन निरन्तर गति से होता रहता है, परन्तु वास्तविक रूप में सामाजिक परिवर्तन की गति प्रत्येक समाज में समान नही होती। किसी एक समाज में यदि परिवर्तन तीव्र गति से होता है तो यह आवश्यक नही हैं कि दूसरे समाज में भी परिवर्तन उसी गति से हो।

5.4 समाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रतिमान

मैकाइवर एवं पेज ने सामाजिक परिवर्तन के तीन प्रतिमानों का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित है।[13]

प्रथम प्रतिमान

इसके अर्न्तगत हम उन परिवर्तनों को सम्मिलित करते है जो एकाएक हमारे सामने आ जाते है। जैसे– नवीन आविष्कारों से सम्बन्धित परिवर्तन, ये परिवर्तन एक बार उत्पन्न होने के बाद निरन्तर कुछ ना कुछ परिवर्तन उत्पन्न करते रहते है। क्योकि बहुत से दूसरे व्यक्ति उस आविष्कार में सुधार भी करते है। टेलीफोन, वायुयान, रेडियों और इसी प्रकार के बहुत से आविष्कारों का इतिहास यदि देखा जाए तो स्पष्ट हो जायेगा कि इन आविष्कारों के कारण उत्पन्न होने वाला परिवर्तन केवल आकस्मिक नही होता बल्कि गुणात्मक रूप से यह अनेक नये परिवर्तन उत्पन्न करता रहता है। ये परिवर्तन तब तक होते रहते है जब तक किसी दूसरे और पहले से अच्छे उपकरण का आविष्कार न हो जायें। लेकिन परिवर्तन की यह श्रृखला किसी न किसी रूप में निरन्तर बनी रहती है। ऐसे परिवर्तनों को रेखीय परिवर्तन कहा जा सकता है।

दूसरा प्रतिमान

परिवर्तन का दूसरा प्रतिमान वह है जिसमें कुछ समय तक तो परिवर्तन प्रगति की ओर होता है, लेकिन इसके बाद इसकी दिशा समृद्धि तथा ह्रास, किसी भी ओर मुड़ सकती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि आरम्भ में परिवर्तन की रेखा ऊपर की ओर उठेगी लेकिन कुछ समय बाद इसके ऊपर–नीचे होते रहने के बाद अन्त में नीचे

की ओर जाने की भी संभावना हो सकती है। इस प्रकार इसे उतार–चढ़ावदार परिवर्तन कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए– आर्थिक क्रियाओं और जनसंख्या सम्बन्धी परिवर्तन में यही प्रतिमान देखने को मिलता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि नगरों का पहले विकास होता है फिर ह्रास, राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार पहले लाभप्रद होता है और फिर अक्सर ह्रास्रोन्मुख हो जाता है। आर्थिक क्रियाओं में समृद्धि स्थिरता और अवसाद की परिस्थितियां सदैव किसी न किसी तरह उत्पन्न होती रहती है । इस प्रकार प्रथम प्रतिमान में कम से कम यह निश्चितता जरूर रहती है कि परिवर्तन एक ही दिशा में होगा, जबकि दूसरे प्रतिमान में इस प्रकार की कोई निश्चितता नही होती।

तृतीय प्रतिमान

परिवर्तन के तृतीय प्रतिमान की प्रकृति दूसरे प्रतिमान से कुछ मिलती जुलती होती है, अन्तर केवल इतना है कि दूसरे प्रतिमान में प्रगति अथवा ह्रास्र का तत्व विद्यमान होता है लेकिन इस तीसरे प्रतिमान में हम प्रगति अथवा ह्रास्र के बारे में निश्चित रूप से कुछ नही कह सकते। क्योकि ऐसे परिवर्तनों का सम्बन्ध साधारणतया मनोवृत्तियों और विचारों के परिवर्तन से होता है। इस प्रतिमान को यदि रेखा के रूप में प्रस्तुत किया जाये तब इसका रूप एक तरंग अथवा लहर के समान होगा। जैसे– प्राकृतिक परिवर्तन एक निश्चित क्रम में पाये जाते है, नक्षत्रों की स्थिति, ऋतुओं के समय और मनुष्य की जीव–रचना में होने वाले परिवर्तन इसी श्रेणी में आते है। जिस प्रकार समुद्र में लहर उठते समय न तो इसका कोई निश्चित स्रोत मालूम किया जा सकता है और न ही एक निश्चित अन्त। लेकिन फिर भी लहरों का आना जाना लगभग एक निश्चित क्रम में बना रहता है। उसी प्रकार अनेक विद्धानों ने मानवीय कार्यो, व्यवहारों तथा राजनैतिक क्रियाओं के परिवर्तन को इसी प्रतिमान के आधार पर स्पष्ट किया है। उदाहरण के लिए हम रूढ़िवादी से प्रगतिवादी और पुनः रूढ़िवादी स्तर की ओर बढ़ जाते है। फैशन की एक वस्तु छोड़कर दूसरी का प्रचार करते है फिर पुरानी वस्तु ग्रहण कर लेते है। स्वतन्त्रता से परिपूर्ण व्यवस्थाओं को अनुचित समझकर सामाजिक नियंत्रण को कठोर कर देने के पक्ष में हो जाते है। इस प्रकार ऊपर नीचे होते हुए भी परिवर्तन एक ही क्रम में स्पष्ट होते हुए देखे गये है। [14]

5.5 सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रकार

जैसा कि आप जानते है कि सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है, और यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। समाज के स्वरूप के आधार पर परिवर्तन

अलग–अलग तरह से होता है अतः सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रकारों को निम्नांकित आधार पर समझा जा सकता है।

1. **सामाजिक प्रकार–** किसी भी समाज या समूह के सामाजिक सम्बन्धों या समाज की संरचना में जब परिवर्तन होने लगता है तो उसे सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। सोरोकिन ने सामाजिक परिवर्तन को सामाजिक गतिशीलता के आधार पर स्पष्ट किया है। सोरोकिन का मानना है कि सामाजिक गतिशीलता का अर्थ एक सामाजिक स्थिति से दूसरी स्थिति में किसी व्यक्ति, सामाजिक तथ्य अथवा सामाजिक मूल्य का संक्रमण होना है अथवा किसी भी उस वस्तु का संक्रमण होना है जो मनुष्य के प्रयत्न द्वारा निर्मित अथवा संशोधित हो।[15]

   इस प्रकार कहा जा सकता है कि जब किसी भी समाज में समाज या व्यक्ति की सामाजिक स्थिति या संरचना में परिवर्तन होने लगता है तथा यह परिवर्तन व्यक्ति के विभिन्न पक्षों को भी परिवर्तित कर तो उसे सामाजिक परिवर्तन कहा जा सकता है।

2. **सांस्कृतिक प्रकार–** किसी भी समाज की संस्कृति उस समाज को व्यवस्थित एवं संगठित रखने में अपना विशेष योगदान देती है। जब संस्कृति में परिवर्तन होने लगता है तो वह समाज के अन्य पक्षों में भी अपना प्रभाव डालती है। धर्म, नैतिकता, प्रथायें, परम्परायें, रूढ़िया, लोकाचार आदि में होने वाले परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन कहलाते है। यह परिवर्तन सामाजिक संरचना तथा सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन उत्पन्न कर देते है।

3. **आर्थिक प्रकार–** कार्ल मार्क्स ने आर्थिक प्रकार को सामाजिक परिवर्तन का एक प्रमुख आधार माना है। मार्क्स का मानना है कि जब उत्पादन प्रणाली में परिवर्तन होता है तो यह समाज के कई पक्षों को भी परिवर्तित कर देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि समाज में जब आर्थिक पक्ष जैसे उत्पादन प्रक्रिया, सम्पत्ति का स्वरूप एवं वितरण, व्यवसायगत परिस्थितियां, आर्थिक रूप से स्तरीकरण एवं प्रतिस्पर्द्धा साथ ही श्रम विभाजन प्रणाली में होने वाले परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन के लिए भी उत्तरदायी होते है।

4. **राजनैतिक प्रकार–** जैसा कि आप जानते है कि समाज तभी संगठित रह सकता है जब उस पर पूर्ण रूप से सत्ता का नियंत्रण होता है, राज्य एक ओर

स्वप्रगति परीक्षण

1. सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा के विचार मेकाइबर एवं पेज के कथनों में प्रस्तुत करें।
2. जी.के. अग्रवाल के विचार सामाजिक परिवर्तन के विचार के सम्बंध में क्या हैं?
3. सामाजिक परिवर्तन समान नहीं होता है, इसे स्पष्ट करें।

समाज को नियंत्रित रखता है वही सामाजिक विकास कार्यो में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। राज्य की कई सरकारी तथा गैरसरकारी कल्याणकारी नीतियां एक ओर समाज को विकसित करती है वही दूसरी ओर कानून एवं दण्ड व्यवस्था के आधार पर व्यक्ति तथा व्यक्ति के व्यवहार को भी नियंत्रित रखती है।

5. **भौगोलिक प्रकार–** किसी भी समाज को वहा की भौगोलिक दशायें विशेष रूप से प्रभावित करती है। क्योंकि व्यक्ति का रहन सहन, खान–पान तथा उसके जीवन स्तर पर वहा की भौगोलिक दशाओं का विशेष प्रभाव पड़ता है। भौगोलिक परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तन से समायोजन एवं अनुकूलन करने के लिए व्यक्ति अपने व्यवहार एवं विचारों में भी परिवर्तन लाता है जिससे सम्पूर्ण समाज एवं समूह में भी परिवर्तन होने लगता है।

5.6 सामाजिक नियंत्रण में सामाजिक परिवर्तन की भूमिका

जैसा कि सर्वविदित है कि किसी भी समाज या समूह में सामाजिक परिवर्तन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। सामाजिक परिवर्तन जहॉ एक ओर समाज के विकास एवं प्रगति में अपना विशेष सहयोग देती है वहीं दूसरी ओर विघटन तथा असन्तुलन की स्थिति भी उत्पन्न करती है। अतः सामाजिक परिवर्तन को उपयोगी तथा प्रभावपूर्ण बनाने में सामाजिक नियंत्रण की विशेष भूमिका होती है। सामाजिक नियंत्रण व्यक्ति के व्यवहार एवं विचारों पर नियंत्रण रखकर समाज को संगठित एवं संतुलित रखने में सहयोग प्रदान करता है। सामाजिक परिवर्तन होने की दशा में जब समाज के विभिन्न पक्षों में परिवर्तन होता है तो वह व्यक्ति के जीवन स्तर, मनोवृत्तियों, विचारों एवं व्यवहार के ढंग में भी परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। अतः यहा पर सामाजिक नियंत्रण की आवश्यकता महसूस होती है। सामाजिक नियंत्रण समाज में होने वाले परिवर्तनों को समाज के लिए उपयोगी बनाने में सहयोग देता है तथा समाज को संतुलित एवं संगठित रखने मे लिए समस्त परिवर्तनों को समाज में व्यवस्थित रखने की दिशा में परिवर्तित करता है।

5.7 सारांश

उपरोक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक परिवर्तन है तथा प्रत्येक समाज तथा समूह में परिवर्तन सदैव चलता रहता

है। कुछ समाजों में यह परिवर्तन तीव्र गति से होता है तो कुछ में धीमी गति से होता है। सामाजिक परिवर्तन सामाजिक सम्बन्धों तथा सामाजिक संरचना को परिवर्तित कर समाज के प्रत्येक पक्ष पर अपना प्रभाव डालती है तथा समाज में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होते रहते है, जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति के विचारों, व्यवहारों एवं मनोवृत्तियों में भी परिवर्तन आ जाता है। जैसा कि हम जानते है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ती के लिए प्रत्येक समूह या समाज से जुड़ा रहता है तथा समय के साथ–साथ मनुष्य की आवश्यकतायें भी बदलती रहती है। आवश्यकताओं में बदलाव के कारण व्यक्ति के सम्बन्धों एवं अर्न्तक्रियाओं में परिवर्तन आता है और यही परिस्थितिया सामाजिक परिवर्तन के लिऐ उत्तरदायी होती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामाजिक परिवर्तन से समाज में गतिशीलता आती है, विकास की प्रक्रिया तेज होती है और समाज प्रगति करता है साथ ही कई प्रकार की समस्यायें भी परिलक्षित होती है जिसके निदान के लिए कई प्रकार के आविष्कार होते है। अतः प्रत्येक परिस्थितियों में सामाजिक परिवर्तन उपयोगी होने के साथ ही सामाजिक ढांचे एवं सम्बन्धों में परिवर्तन लाकर समाज को संतुलित रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है।

5.8 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1. मैकाइवर तथा पेज, "समाजशास्त्री होने के नाते हमारा प्रत्यक्ष संबंध केवल सामाजिक संबंधों के अध्ययन से है इस दृष्टिकोण से सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन को हम सामाजिक परिवर्तन कहते है।"

2. जी0 के0 अग्रवाल के अनुसार, "सामाजिक परिवर्तन का क्षेत्र व्यापक है समाज से हमारे सभी व्यवहार किसी न किसी सामाजिक नियम से प्रभावित होते है। इस प्रकार जब कभी भी सामाजिक नियमों, मूल्यों अथवा सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन के तत्व स्पष्ट होने लगते है तब सामाजिक व्यवस्था का रूप भी बदलने लगता है। परिवर्तन की इस दशा को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है।

3. यद्यपि सामाजिक परिवर्तन प्रकृति का नियम है और प्रत्येक समाज में सामाजिक परिवर्तन निरन्तर गति से होता रहता है, परन्तु वास्तविक रूप में सामाजिक परिवर्तन की गति प्रत्येक समाज में समान नही होती। किसी एक समाज में यदि परिवर्तन तीव्र गति से होता है तो यह आवश्यक नही हैं कि दूसरे समाज में भी परिवर्तन उसी गति से हो।

5.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा दीजिए तथा सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

2. सामाजिक परिवर्तन क्या है तथा परिवर्तन के प्रमुख प्रतिमानों की व्याख्या कीजीए।

3. सामाजिक परिवर्तन का अर्थ तथा परिभाषा दीजिए तथा सामाजिक परिवर्तन के प्रमुख प्रकारों की विवेचना कीजीए।

4. सामाजिक नियंत्रण में सामाजिक परिवर्तन की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

5. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

   - ✓ सामाजिक परिवर्तन के प्रकार
   - ✓ मैकाइवर एवं पेज द्वारा दिये गये सामाजिक परिवर्तन के प्रतिमान
   - ✓ रेखीय तथा चक्रीय प्रतिमान

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1– डा0 जी0के0 अग्रवाल, "सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन" 2000

2– डा0 जी0के0 अग्रवाल, "मानव समाज" 2000

3– डा0 रामनाथ शर्मा तथा डा0 राजेन्द्र कुमार शर्मा, "सामाजिक परिवर्तन और समाजिक नियंत्रण" 1996

4– विद्याभूषण तथा सचदेव, "समाजशास्त्र के सिद्वान्त" 2010

NOTES

इकाई– 6

सामाजिक उद्विकास, प्रगति एवं क्रांति

Social Evolution, Progress & Revolution

इकाई की संरचना

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 सामाजिक उद्विकास

- 6.2.1 सामाजिक उद्विकास का अर्थ एवं परिभाषाएं
- 6.2.2 सामाजिक उद्विकास की विषेशताएं

6.3 प्रगति

- 6.3.1 प्रगति की विषेशताएं
- 6.3.2 प्रगति एवं उद्विकास में अन्तर

6.4 क्रांति

6.5 सारांश

6.6 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.8 संदर्भ गंर्थ

6.0 उददेश्य

इस इकाई का उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न स्वरूपों जैसे सामाजिक उद्विकास, प्रगति एवं क्रांति की विस्तृत जानकारी प्रदान करना है। इस इकाई में सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न स्वरूपों एवं इनमें अन्तर को स्पष्ट किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः

1. सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न स्वरूपों उद्विकास, प्रगति एवं क्रांति की अवधारणा को समझ सकेंगे।
2. सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न स्वरूपों उद्विकास, प्रगति एवं क्रांति की अवधारणा में अन्तर को स्पष्टतः समझ सकेंगे।
3. उद्विकास एवं प्रगति की अवधारणा में अन्तर को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. उद्विकास, प्रगति एवं क्रांति की अवधारणा की विषेशताओं को समझ सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक एवं निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। भिन्न–भिन्न समाज में परिवर्तन की गति भिन्न–भिन्न हो सकती है। समाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया विभिन्न स्वरूपों में प्रकट होती है जैसे– उद्विकास, प्रगति, विकास, सामाजिक आन्दोलन एवं क्रांति इत्यादि। उपरोक्त प्रक्रियाओं का सामाजिक परिवर्तन के साथ गहन सम्बन्ध है। कभी–कभी इन प्रक्रियाओं को सामाजिक परिवर्तन के पर्यायवाची के रूप में भी प्रयोग किया गया है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध में इन प्रक्रियाओं को समझना अति आवष्यक है। प्रस्तुत इकाई में हम सामाजिक उद्विकास, प्रगति तथा क्रांति का विस्तारपूर्वक विष्लेषण करेगे।

6.2 सामाजिक उद्विकास

उद्विकास शब्द अंग्रेजी के 'Evolution' का हिन्दी रूपान्तरण है। Evolution' शब्द लैटिन भाषा के 'Evolvere' शब्द से लिया गया है। 'Evolvere' शब्द E+Volvere का युग्म है जिसमें E का अर्थ है 'बाहर की ओर' तथा Volvere का अर्थ है फैलना। इस प्रकार उद्विकास (Evolution) का षब्दिक अर्थ हुआ– बाहर की और फैलना। अतः उद्विकास का अर्थ हुआ आन्तरिक षक्ति, तत्व एवं गुणों का बाहर की और फैलना।

'उद्विकास' शब्द का प्रयोग करने वाले विद्वानों में चार्ल्स डार्विन का नाम उल्लेखनीय है। जिन्होंने उद्विकास शब्द का प्रयोग जीव विज्ञान में किया। डार्विन के अनुसार उद्विकास की प्रक्रिया में जीव की संरचना सरलता से जटिलता की ओर बढ़ती है। यह प्रक्रिया 'प्राकृतिक चयन' के सिद्धांत पर आधारित है। हरर्बट स्पेन्सर ने जैविक परिवर्तन की भाँति ही सामाजिक परिवर्तन को भी कुछ आन्तरिक षक्तियों के कारण संभव माना है। संक्षेप में उद्विकास वह प्रक्रिया है जिसके प्रारम्भ में किसी जीव, वस्तु अथवा व्यवस्था का स्वरुप सरल होता जाता है और जैसे–जैसे यह प्रक्रिया आगे बढ़ती है उसका स्वरूप जटिल होता जाता है। समाजषस्त्रीय परिप्रेक्ष्य में उद्विकास की अवधारणा को स्पष्ट करने हुए मैकाइवर तथा पेज ने कहा है – "उद्विकास एक किस्म का विकास है। लेकिन प्रत्येक विकास उद्विकास नही हो सकाता क्योंकि विकास में एक निष्चित दिषा होती है। जबकि उद्विकास की कोई निष्चित दिषा नहीं होती, वह किसी भी दिषा में हो सकती है। मैकाइवर तथा पेज ने बताया कि उद्विकास केवल आकार में ही नहीं अपितु संरचना में भी विकास है। यदि किसी समाज के आकार में वृद्धि नहीं होती लेकिन उसका आन्तरिक रूप पहले से जटिल हो जाता है तो उसे उद्विकास कहेंगे। विकास में वृद्धि एक निर्षिचित दिषा में होती है अतः उद्विकास की प्रक्रिया को विकास नहीं कहा जा सकता। उद्विकास एक आन्तरिक प्रक्रिया है जो स्वतः प्राकृतिक नियमों से संचालित होती है। वर्ण व्यवस्था का जाति व्यवस्था में

परिवर्तित होना उद्विकास का एक उदाहरण है। क्योंकि वर्ण व्यवस्था की तुलना में जाति व्यवस्था में अधिक जटिलता आयी है।

उद्विकास वह प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक परवर्ती अवस्था का पूर्ववर्ती अवस्था से आवष्यक सम्बंध होता है। इसमें वृद्धि, विकास एवं निरंतरता की तीनों घटनाएं सन्निहित होती है। उद्विकास परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें किसी वस्तु की अन्तर्निहित विषेषताएं अपने आपको धीरे–धीरे प्रकट एवं प्रस्फुटित करती है। इस अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोग प्रसिद्ध वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने सन 1859 में जीवों के विकास को समझने हेतु किया था। सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में इस अवधारणा का प्रयोग स्पेन्सर ने किया था। उन्होने उद्विकास की व्याख्या करते हुए लिखा है कि उद्विकास पदार्थ का एकीकरण तथा गति का अपव्ययय है। इस प्रक्रिया में पदार्थ एक अनिश्चित एवं ससम्बध समानता से निष्चित एवं सुसम्बध विभिन्नता की ओर अग्रसर होता है।

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार– "उद्विकास परिवर्तन की एक दिषा है जिसमें की बदलते हुए पदार्थ की बहुत सी दषाएं प्रकट होती है ओर जिसमें की उस पदार्थ की वास्तविकता का पता चलता है।"

हॉबहाउस के अनुसार– "उद्विकास से तात्पर्य किसी भी प्रकार की वृद्धि से है।"

ऑगबर्न तथा निमकॉफ के अनुसार– "उद्विकास केवल मात्र एक निश्चित दिशा में परिवर्तन है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हमें यह स्पष्ट होता है कि उद्विकास परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसमें किसी वस्तु, व्यवस्था अथवा जीवन में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। उद्विकास की प्रक्रिया में किसी जीव वस्तु अथव व्यवस्था की आन्तरिक विषेषताओं का प्रस्फुटन होता है।

उद्विकासवादियों की मान्यता है कि प्राणी के विकास की भांति समाज, संस्कृति तथा सामाजिक संस्थाओं का भी विकास विभिन्न स्तरों से हुआ है। विकास का यह क्रम आदिकाल से सरलता से जटिलता, समानता से विभिन्नता तथा अनिष्चितता से निष्चितता की ओर चलता रहता है। उद्विकास की अवधारणा का प्रयोग मोर्गन ने विवाह एवं परिवार, टायलर ने धर्म, कोम्ट ने दर्षन तथा स्पेन्सर ने सभ्यता के विकास को समझने में किया है। जैविक उद्विकास की प्रक्रियाओं जैसे– अस्तित्व के लिए संघर्ष, प्रवरण तथा अनुकूलन आदि को सामाजिक उद्विकास की प्रक्रिया के समकक्ष स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। लेकिन ये प्रक्रियायें समाजिक उद्विकास की प्रक्रियाओं के समकक्ष कदापि नहीं है। हरबर्ट स्पेन्सर ने समाज के विकास के संबंध में

यह धारणा प्रकट की है कि वर्तमान के औद्योगिक समाजों का विकास आदिम अथवा असभ्य कहे जाने वाले समाजों से हुआ है। किन्तु विभिन्न सामाजिक संगठनों पर निर्मित आधुनिक समाजों को एक रेखीय विकास का परिणाम नहीं माना जा सकता। सामाजिक उद्विकास की प्रक्रिया को उसकी विषेषताओं के आधार पर और स्पष्टता से समझा जा सकता है।

1. सरलता से जटिलता की ओर– उद्विकास की प्रक्रिया में परिवर्तन सरलता से जटिलता की और होता है। जिस प्रकार आदिम सामाजिक व्यवस्था सरल तथा आधुनिक समाजिक व्यवस्था अपेक्षाकृत जटिल है।
2. विभिन्न अंगों में स्पष्टता– उद्विकास की प्रक्रिया जैसे–जैसे आगे बढ़ती जाती है त्यों–त्यों प्राणी, वस्तु अथवा सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न अंग जैसे समिति, संस्था एवं अन्य संगठन के स्वरूप में स्पष्टता आती जाती है।
3. श्रम विभाजन में विषेषीकरण– उद्विकास की प्रक्रिया में प्राणी या वस्तु के अंगों में स्पष्टता आने के साथ–साथ उन अंगों के कार्य भी निष्चित हो जाते हैं। उसी प्रकार समाज के विभिन्न अंगों जैसे समिति, संस्था व अन्य संगठनों के कार्य भी निष्चित हो जाते हैं तथा उनका विषेषीकरण हो जाता है।
4. अनिष्चितता– उद्विकास की प्रक्रिया की भांति ही सामाजिक उद्विकास की प्रक्रिया में यह कहना अनिष्चित है कि एक समय अन्तराल पर अथवा विकसित सामाजिक व्यवस्था का स्वरुप क्या होगा। दूसरे शब्दों में उद्विकास की प्रक्रिया में परिवर्तन के परिणाम अनिष्चित होते है।
5. निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया– उद्विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इस प्रक्रिया की गति समय व देषकाल के अनुसार भिन्न–भिन्न समाजों में भिन्न भिन्न हो सकती हैं।
6. उद्विकास के निष्चित स्तर– डार्विन की मान्यता है कि उद्विकास की प्रक्रिया जीवन में जन्म, बचपन, युवसस्था, बूढ़ापा तथा अन्ततः मृत्यु विभिन्न स्तरों या सोपानों से होकर गुजरती है। उसी प्रकार समाज भी उद्विकास की प्रक्रिया के अनुरूप विभिन्न स्तरों से होकर गुजरता है। इसी प्रकार समाज भी सर्वप्रथम षिकारी करने की अवस्था, इसके उपरान्त चारागाह की अवस्था और फिर कृर्षि अवस्था से होते हुए अब औद्योगिक अवस्था में आया है।

6.3 प्रगति

उद्विकास की भांति प्रगति भी परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण स्वरूप है। जब कोई परिवर्तन हितकारी या लाभकारी होता है तो उसे प्रगति कहते है। प्रगति में सामूहिक

हित और समाज कल्याण की भावना निहित होती है। प्रगति समाजिक परिवर्तन की एक निष्चित दिषा को दर्षाती है। कुछ प्रारम्भिक विद्वानों ने प्रगति एवं उद्विकास को समान अर्थों में प्रयोग किया है। इकाई के प्रारम्भिक भाग में उद्विकास के अध्ययन के बाद यह विदित हो गया है कि प्रगति और उद्विकास दोनों भिन्न अवधारणायें है। प्रगति की अवधारणा को और स्पष्ट रूप से समझने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई प्रगति की परिभाषाओं का अवलोकन करना होगा।

आगबर्न तथा निमकॉफ के अनुसार – "प्रगति का अर्थ अच्छाई के निमित्त परिवर्तन है और इसलिए प्रगति में मूल्य निर्धारण होता है।"

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार – "जब हम प्रगति की चर्चा करते है तो हम केवल दिषा को सूचित नहीं करते, अपतु उस दिषा को जो हम किसी अन्तिम लक्ष्य, किसी उद्देष्य की ओर ले जाती है जिसे आदर्श रूप में निश्चित किया गया है, न कि कार्यरत षक्तियों के वस्तुपरक विचार से।"

लूम्ले के अनुसार – "प्रगति परिर्वतन है परन्तु यह इच्छित अथवा मान्यता प्राप्त दिषा में परिर्वतन है न कि किसी भी दिषा में।"

हॉरनेल हार्ट के अनुसार– "सामाजिक प्रगति सामाजिक ढाँचे में वे परिवर्तन हैं जो कि मानवीय कार्यों को मुक्त करें, प्रेरणा और सुविधा प्रदान करें तथा उसे संगठित करें।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रगति से तात्पर्य अच्छाई की दिशा में परिवर्तन से है। प्रगति से एक इच्छित दिशा में विकास का बोध होता है और वह विकास हमेशा इच्छित विकास होता है। प्रगति में श्रेष्ठतर की ओर परिवर्तन का विचार निहित होता है। इससे मूल्याकंन किया जाता है। मानकों के संदर्भ के बिना प्रगति की कामना नही की जा सकती। वैज्ञानिक शिक्षा का प्रचार–प्रसार होना प्रगति का उदाहरण है, क्योंकि इसके माध्यम से समाज को एक इच्छित दिशा में ले जाना चाहते है। सामाजिक जीवन में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ अथवा दशाएं है जो प्रगति की प्रक्रिया में सहायक होती है। इन परिस्थितियों में शिक्षा का उच्च स्तर, प्रौद्योगिकीय उन्नति, नवीन अविष्कार, अनुकूल भौगोलिक पर्यावरण, स्वतंत्रता एवं समानता, आदर्श जनसंख्या एवं स्वास्थ्य और उन्नतशील एवं योग्य नेता इत्यादि सम्मिलित हैं। मजूमदार के अनुसार प्रगति में छः तत्वों का होना आवश्यक है–

1. मनुष्य के सम्मान में वृद्धि;
2. प्रत्येक मानव–व्यक्तित्व के लिए आदर;
3. आध्यात्मिक खोज एवं सत्य के अन्वेषण की अधिक स्वतंत्रता;

4. मनुष्य तथा प्रकृति की कृतियों के सौन्दर्यात्मक आन्नद एवं सृजनात्मकता हेतु स्वतंत्रता;
5. एक सामाजिक व्यवस्था जो प्रथम चारों मूल्यों को उन्नत करती है, और;
6. सभी के लिए न्याय एवं समतासहित सुख, स्वतंत्रता एवं जीवन की वृद्धि करती है।

लेकिन यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि जहॉ प्रगति में मूल्यों की अवधारणा निहित होती है, वहॉ मूल्यों का मापदण्ड़ करना कठिन है। मूल्यों का निर्धारण संस्कृति पर निर्भर करता है। भिन्न– भिन्न समाजों के प्रगति के मापदण्ड़ भी भिन्न– भिन्न हो सकते हैं।

प्रगति की विषेशताएं

1. प्रगति एक इच्छित या विशिष्ट दिशा में परिवर्तन है।
2. प्रगति समाज के सदस्यों द्वारा, समाज द्वारा स्वीकृत उद्देश्यों की प्राप्ति का परिणाम है।
3. प्रगति में सामूहिकता की भावना निहित होती है।
4. प्रगति में परिवर्तन की दिशा निश्चित होती है।
5. प्रगति में लाभ की सम्भावना की अधिकता तथा हानि की न्यूनता होती है।

इस प्रकार हम समझ सकते है कि प्रगति की प्रक्रिया परिवर्तनशील है। प्रगति का अर्थ भिन्न– भिन्न समाजों के लिए भिन्न–भिन्न हो सकता है। प्रगति का उद्देश्य किसी न किसी रूप में सामाजिक व्यवस्था के लिए लाभकारी होता है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्रगति स्वस्थ एवं प्रगतिशील समाज का अभिन्न एवं आवश्यक अंग है।

प्रगति एवं उद्विकास में अन्तर

1. उद्विकास एक वैज्ञानिक अवधारणा है, जबकि प्रगति एक नैतिक अवधारणा है।
2. उद्विकास की प्रक्रिया स्वतः प्राकृतिक नियमों के अनुसार चलती है, जबकि प्रगति सचेत प्रयत्नों का परिणाम है।
3. उद्विकास एक मूल्य निरपेक्ष अवधारणा है, जबकि प्रगति मूल्य सापेक्ष अवधारणा है।
4. उद्विकास किसी भी दिशा में परिवर्तन है, जबकि प्रगति अच्छाई के लिए परिवर्तन है।

5. उद्विकास की प्रक्रिया की गति धीमी होती है, जबकि प्रगति की प्रक्रिया की गति धीमी या तीव्र कुछ भी हो सकती है।

6. उद्विकास का परिप्रेक्ष्य विश्वव्यापी होता है, जबकि प्रगति का परिप्रेक्ष्य एक देश और व्यवस्था विशेष होता है।

6.4 क्रांति

क्रांति उद्विकास, प्रगति, सामाजिक आन्दोलन तथा विकास की भांति सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम है। विश्व के इतिहास में क्रांति द्वारा सामाजिक परिवर्तन के अनेकों उदाहरण हैं। पिछली कुछ शताब्दियों में कई महत्वपूर्ण क्रांतियां हुई हैं, जिन्होने न केवल सामाजिक अपितु आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में युगान्तकारी परिवर्तन लाया है। इस संदर्भ में यूरोप की औद्योगिक क्रांति, 1775–1783 की अमेरीकी क्रांति तथा 1789 की फ्रांस की क्रांति विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन क्रांतियों के कारण समस्त विश्व में स्वतंत्रता, समानता तथा प्रजातंत्र की चर्चा होने लगी है। इसके साथ–साथ रूसी तथा चीनी क्रांतियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान समय में सूचना तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आयी क्रांति ने सामाजिक व्यवस्था के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया है। भारत में हुई हरित क्रांति का सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था पर गहरा प्रभाव पडा है। एम्ब्रेस (Abrahas) का मानना है कि विश्व में हुई अधिकांश क्रांतियां मौलिक सामाजिक पुर्ननिर्माण के लिए हुई। हेना अरेंड (Hannah Arendt) ने बताया कि क्रांतियों का मुख्य उद्देश्य परम्परागत समाज से अपने–आपको अलग करना एवं नये समाज का निर्माण करना है। कुछ क्रांतियां इसका अपवाद भी है, जिन्होने समाज को पुरातन समाज की ओर ले जाने का कार्य किया है। ईरान में खुमैनी के नेतृत्व में हुई क्रांति इसका उदाहरण है। इस क्रांति का उद्देश्य बदलते हुए ईरानी समाज पर इस्लाम को पुनः अधिक से अधिक स्थापित करना था।

क्रांति से तात्पर्य तीव्र गति से होने वाले परिवर्तन से है। जहां विकास में क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित परिवर्तन होता है, वहां क्रांति से तीव्र और अव्यवस्थित परिवर्तन होता है। समाज के मूल्यों तथा मान्यताओं एवं इसकी राजनीतिक संस्थाओं, सामाजिक संरचना, नेतृत्व, सरकारी गतिविधियों और नीतियों में तीव्र परिवर्तन क्रांति है। लेनिन ने क्रांति को पीडितों (नई सामाजिक व्यवस्था के निर्माता) के उत्सव के रूप में परिभाषित किया है। ऐन्थनी गिडेन्स (Anthony Giddens) ने क्रांति को परिभाषित करते हुए कहा है कि– "क्रांति को हम हिसंक साधनों के द्वारा राज्य की सत्ता को जन–आन्दोलन के नेताओं द्वारा बंधक बनाने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित कर सकते है, जहां बाद में शक्ति का प्रयोग सामाजिक सुधार लाने के लिए किया जाता है।" ऐन्थनी गिडेन्स की परिभषा में तीन तथ्य ध्यान देनें योग्य है–

स्वप्रगति परीक्षण

1. सामाजिक उद्विकास के बारे में मेकाइबर एवं पेज के विचार लिखें।
2. सामाजिक प्रगति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए हारनेल हार्ट ने क्या कहा है ?
3. सामाजिक प्रगति की कोई पाँच विशेषताएँ बताइए।

1. क्रांति एक राजनीतिक प्रक्रिया है, क्योंकि इसके अंतर्गत सत्ता का हस्तांतरण होता है;
2. क्रांति का माध्यम एक हिंसक आन्दोलन होता है;
3. क्रांति का उद्देश्य मौलिक सामाजिक परिवर्तन होता है।

क्रांति और आन्दोलन में समानता होते हुए भी प्रत्येक आन्दोलन को क्रांति नही कहा जा सकता। गिडेन्स के अनुसार किसी भी सामाजिक आन्दोलन को क्रांति कहे जाने के लिए निम्नलिखित तीन बातों का होना आवश्यक हैं–

1. क्रांति कई घटनाओं की एक कडी नही है, ब्लकि यह एक बडे पैमाने पर विशाल जन–आन्दोलन है। लेकिन यदि कोई जन आन्दोलन चुनाव के माध्यम से सत्ता हस्तांतरण में सफल हो जाता है तो उसे क्रांति नही कहा जायेगा;
2. क्रांति का मुख्य उद्देश्य वृहत् सामाजिक सुधार अथवा परिवर्तन है और;
3. क्रांति एक राजनीतिक परिवर्तन है, जिसका मुख्य आधार हिंसा होता है।

यदि किसी सामाजिक आन्दोलन में उपरोक्त तीनों बातें सम्मलित नही है तो उसे हम मात्र सामाजिक आन्दोलन कहेंगे, क्रांति नही।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि किसी समाज की सामाजिक संरचना अथवा उसके किसी महत्वपूर्ण पक्ष– सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनीतिक आदि, अथवा नेतृत्व में द्रुतगति से होने वाले आकस्मिक एवं वृहत परिवर्तन को क्रांति कहते है। सामाजिक क्रांति द्वारा समाज का मूलभूत ढांचा ही बदल जाता है या बदलाव की स्थिति में आ जाता है। सामाजिक क्रांति को राजनीतिक एवं आकस्मिक, उग्र एवं हिंसक परिवर्तन से जोडा जाता है, किन्तु यह सामाजिक व्यवस्था के किसी भी क्षेत्र में हो सकती है तथा यह एक लम्बी समयावधि में चलती हुई अहिंसक भी हो सकती है।

6.5 सारांश

समाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया विभिन्न स्वरूपों जैसे उद्विकास, प्रगति, विकास, सामाजिक आन्दोलन तथा क्रांति आदि के रूप में निरन्तर चलती रहती है। परिवर्तन की गति इसके विभिन्न स्वरूपों के लिए उत्तरदायी है। परिवर्तन की यह गति ही सामाजिक परिवर्तन को उद्विकास, विकास, प्रगति अथवा क्रांति आदि बना देती है। परिवर्तन के विभिन्न स्वरूपों का तुलनात्मक अध्ययन करके इनके अन्तर को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। उद्विकास की अवधारणा का स्वरूप जैविक है। इसमें समाज सरलता से जटिलता की ओर अग्रसर होता है। उद्विकास की प्रक्रिया में सामाजिक स्तरीकरण न्यूनतम होता है और सजातियता अधिक होती है। इसमें परिवर्तन की दिशा

निश्चित नही होती तथा परिवर्तन की गति धीमी होती है। सामाजिक परिवर्तन का दूसरा प्रमुख स्वरूप प्रगति है। प्रगति समाज के सदस्यों द्वारा, समाज द्वारा स्वीकृत उद्देश्यों की प्राप्ति का परिणाम है। प्रगति में सामूहिक हित और समाज कल्याण की भावना निहित होती है। प्रगति समाजिक परिवर्तन की एक निष्चित दिषा को दर्षाती है। प्रगति का उद्देश्य किसी न किसी रूप में समाजिक व्यवस्था के लिए लाभकारी होता है। उद्विकास तथा प्रगति की भांति क्रांति भी सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम है। क्रांति से तात्पर्य तीव्र गति से होने वाले परिवर्तन से है। जहां विकास में क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित परिवर्तन होता है, वहां क्रांति से तीव्र और अव्यवस्थित परिवर्तन होता है। सामाजिक क्रांति द्वारा समाज का मूलभूत ढांचा ही बदल जाता है या बदलाव की स्थिति में आ जाता है। सामाजिक क्रांति को राजनीतिक एवं आकस्मिक, उग्र एवं हिंसक परिवर्तन से जोडा जाता है, किन्तु यह सामाजिक व्यवस्था के किसी भी क्षेत्र में हो सकती है तथा यह एक लम्बी समयावधि में चलती हुई अहिंसक भी हो सकती है। क्रांति में प्रगति तथा विकास की अवधारणा सन्निहित होती है। इस प्रकार हम देखते है कि सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा बहुत व्यापक है, जो किसी न किसी स्वरूप में निरन्तर चलती रहती है।

6.6 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1. **मैकाइवर एवं पेज** के अनुसार– "उद्विकास परिवर्तन की एक दिषा है जिसमें की बदलते हुए पदार्थ की बहुत सी दषाएं प्रकट होती है ओर जिसमें की उस पदार्थ की वास्तविकता का पता चलता है।"
2. **हॉरनेल हार्ट** के अनुसार– "सामाजिक प्रगति सामाजिक ढाँचे में वे परिवर्तन हैं जो कि मानवीय कार्यों को मुक्त करें, प्रेरणा और सुविधा प्रदान करें तथा उसे संगठित करें।"
3. सामाजिक प्रगति की विशेषताएँ हैं –
   1. प्रगति एक इच्छित या विशिष्ट दिशा में परिवर्तन है।
   2. प्रगति समाज के सदस्यों द्वारा, समाज द्वारा स्वीकृत उद्देश्यों की प्राप्ति का परिणाम है।
   3. प्रगति में सामूहिकता की भावना निहित होती है।
   4. प्रगति में परिवर्तन की दिशा निश्चित होती है।
   5. प्रगति में लाभ की सम्भावना की अधिकता तथा हानि की न्यूनता होती है।

6.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सामाजिक उद्विकास से आप क्या समझते है। व्याख्या कीजिए।

2. सामाजिक उद्विकास के सिद्धांत की विषेषताओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
3. प्रगति से आप क्या समझते है?
4. उद्विकास तथा प्रगति में अन्तर बताइए।
5. क्रांति से आप क्या समझते है?
6. क्रांति तथा सामाजिक आन्दोलन में अन्तर को स्पष्ट कीजिए।

6.8 संदर्भ गंर्थ

- जे0 पी0 सिंह (2004) : **समाजसास्त्र : अवधारणाएँ एवं सिद्धांत**, प्रेंटिस–हाल आफ इण्ड़िया प्रा0 लि0, नई दिल्ली।
- जे0 पी0 सिंह (1999) : **सामाजिक परिवर्तनः स्वरुप एवं सिद्धांत**, प्रेंटिस–हाल आफ इण्ड़िया प्रा0 लि0, नई दिल्ली।
- एस0 एल0 दोषी एवं पी0 सी0 जैन (2009) : **समाजसास्त्र : नई दिशाएँ**, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
- नरेन्द्र कुमार सिंघी एवं वसुधाकर गोस्वामी (2010) : **समाजसास्त्र विवेचन**, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- विद्याभूषण एवं डी0 आर0 सचदेव (2010) : **समाजसास्त्र के सिद्धांत**, किताब महल, नई दिल्ली।
- हरिकृष्ण रावत (2002) : समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
- Abrahas, Philip (1982): **Historical Sociology**, Cornell University Press, Ithaca NY.
- Arendt, Hannah (1963): **On Revolution**, Faber and Faber, London.
- Giddens, Anthony (1998): **Sociology**, Polity Press, Cambridge.
- K.L. Sharma (2007): **India Social Structure and Change**, Rawat Publications, New Delhi.
- M.N. Srinivas (2009): **Social Change in Modern India**, Orient Blackswan Private Limited, New Delhi.
- T.B. Bottomore (1970): **Sociology: A Guide to Problem and Litrature**, S. Chand and Company, New Delhi.

NOTES

इकाई– 7

सामाजिक परिवर्तन के जनसंख्यात्मक कारक

Demographic Factors of Social Change

इकाई की संरचना

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 जनसंख्यात्मक कारक की अवधारणा

7.3 जनसंख्यात्मक कारक के विभिन्न पक्ष

7.3.1 अति जनसंख्या

7.3.2 जन्म दर एवं मृत्यु दर

7.3.3 जनसंख्या की संरचना

7.3.4 आप्रवास तथा उत्प्रवास

7.4 सारांश

7.5 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.7 संदर्भ ग्रंथ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन के जनसंख्यात्मक कारक की अवधारणा को समझना है। इस इकाई में जनसंख्यात्मक कारक के विभिन्न पक्ष का सामाजिक परिवर्तन पर प्रभाव की विस्तृत जानकारी प्रदान की गयी है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः

1. जनसंख्यात्मक कारक की अवधारणा को समझ सकेंगे।
2. जनसंख्यात्मक कारक के विभिन्न पक्षों का सामाजिक परिवर्तन में भूमिका को समझेंगे।
3. जनसंख्या के विभिन्न पक्षों का सामाजिक परिवर्तन पर प्रभाव को समझ सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

समाजिक परिर्वतन एक सार्वभौमिक एवं निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। सामाजिक परिवर्तन के लिए अनेक कारक उत्तरदायी हो सकते हैं। विभिन्न सामाजिक कारकों का अलग–अलग समाज पर प्रभाव भिन्न–भिन्न हो सकता है। विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक परिवर्तन के लिए जनसंख्यात्मक कारक को महत्वपूर्ण रूप से उत्तरदायी माना है। माल्थस का विचार है कि यदि किसी देश की बढती हुई जनसंख्या को नियंत्रित ना किया जाए तो वह खाद्य आपूर्ति की तुलना में अधिक तीव्र गति से बढती है। ऐसी विषम परिस्थिति में अर्थात् जनसंख्या व खाद्य आपूर्ति में संतुलन स्थापित करने के लिए या तो जनता स्वयं सन्तति–निरोध के उपायों से जनसंख्या को नियंत्रित करती है, या कुछ प्राकृतिक अवरोध जैसे– प्लेग, हैजा, चेचक, अकाल, बाढ, भुखमरी इत्यादि समाज में क्रियाशील हो जाते हैं। सोरोकिन जैसे विद्वानों ने जनसंख्यात्मक कारकों में जनसंख्या के आकार एवं घनत्व में वृद्धि अथवा ह्रास को सम्मिलित किया हैं। ऐसे विद्वानों का मानना है कि जनसंख्या के आकार एवं घनत्व ऐसे जनसंख्यात्मक कारक हैं जिन पर समाज की प्रगति निर्भर करती हैं। इसके अतिरिक्त जन्म दर एवं मृत्यु दर, जनसंख्या की संरचना तथा आप्रवास एवं उत्प्रवास जनसंख्यात्मक कारक के महत्वपूर्ण पक्ष हैं जो सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करते हैं।

7.2 जनसंख्यात्मक कारकों की अवधारणा

सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में जनसंख्यात्मक कारकों का अत्यधिक महत्व है। जनसंख्या की विशेषताएँ अनेक रूपों में सामाजिक परिवर्तनों को उत्पन्न करती है। जनांकिकी के अन्तर्गत हम जनसंख्या, पुरुष–स्त्री अनुपात, औसत आयु, स्थानान्तरण आदि का अध्ययन करते है। तकनीकी भाषा में जनांकिकी और जनसंख्या में अन्तर है। जनांकिकी के अन्तर्गत जनंसख्या का अध्ययन किया जाता है। सामान्यतः जनसंख्या का तात्पर्य तो मनुष्यों की गणना से है। इसके अन्तर्गत जन्म–मृत्यु दर, बीमारी, और स्थानान्तरण का अध्ययन होता है, लेकिन जनसंख्या को जब पुरूष–स्त्री, विवाहित–अविवाहित, बालक–वृद्ध आदि दृष्टियों से देखा जाता है तो इसे जनांकिकी कहते है। उदाहरण के लिये, भारत में स्त्री–पुरुष के अनुपात में देखे तो पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या कम है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि यहाँ के लोगों में पुत्र जन्म बहुत बड़ी अभिलाषा है। पुत्र के बिना परिवार का वंशानुक्रम टूट जाता है, बुढ़ापे का सहारा छिन जाता है। ऐसे ही कुछ कारणों से पुरुषों की तुलना में स्त्रियों

की संख्या घट गयी है। जनसंख्या के कुछ ऐसे पहलू हैं जो सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करते है।

जनसंख्या भी सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका रखती है। जितनी अधिक जनसंख्या होगी उतनी ही गरीबी का विकास होगा। गरीबी से संघर्ष बढ़ता है व समाज में तनाव हो जाता है। जनसंख्या के बढ़ने से उत्प्रवास होता है जिससे सांस्कृतिक आदान–प्रदान बढ़ता है। मैकाइवर व पेज के अनुसार, ''उन्नीसवीं शताब्दी में जनसंख्या की अभूतपूर्व वृद्धि के साथ परिवार–नियोजन का विकास हुआ। इस पद्धति का पारिवारिक सम्बन्धों तथा विवाह के प्रति दृष्टिकोण पर भी प्रभाव पड़ा.....। एकाकी परिवार की कमी के साथ विवाह व तलाक की सुविधा, पति–पत्नी के सम्बन्ध व माता–पिता के प्रति सन्तान का सम्बन्ध, परिवार की आर्थिक आत्मनिर्भरता आदि में परिवर्तन हो रहे हैं।'' जब जनसंख्या अधिक होती है तो संघर्ष बढ़ता है, जिसमें योग्य आदमी ही जीवित रह पाते है, इस तरह यहां डार्विन का सिद्धान्त लागू होता है कि जन्म दर घट जाती है और मृत्यु दर बढ़ जाती है तो देश की जनसंख्या घटती चली जाती है जिससे समाज में कार्यशील व्यक्तियों की कमी हो जाती है और उपलब्ध प्राकृतिक साधनों का समुचित प्रयोग नहीं हो पाता जिससे उस समाज की आर्थिक दशा गिरती जाती है। फलस्वरूप परिवार छोटे होते चले जाते जिसका अंतिम परिणाम सामाजिक व पारिवारिक संबंधों में परिवर्तन के रूप में होता है।

गुन्नार मर्डल ने कहा है कि यूरोप में उच्च जन्म दर और मृत्यु की कम दर में बड़ा अन्तर आने के कारण परिवर्तन ने 'जनसांख्यिकीय संक्रमण' का रूप ले लिया है। जापान के मामले में भी परिवर्तन के देर से शुरू होने के कारण, दोनों के बीच एक अंतराल आ गया है। भारत में आर्थिक विकास जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप नहीं हो पाया है। प्रति व्यक्ति आय और रहने के मानकों में सुधार, आबादी पर एक जाँच के साथ ही संभव हो पाऐगा। भारत अपने लोगों को खिलाने की उच्च लागत के कारण से, अभी इस स्थिति में नही है कि वह अपनी अर्थव्यवस्था के सुधार में निवेश करे।

7.3 जनसंख्यात्मक कारक के विभिन्न पक्ष

जनसंख्या के आकार एवं घनत्व, जन्म दर एवं मृत्यु दर, जनसंख्या की संरचना तथा आप्रवास एवं उत्प्रवास इत्यादि जनसंख्यात्मक कारक के महत्वपूर्ण पक्ष हैं जो सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करते हैं। यहाँ हम जनसंख्यात्मक कारक के इन पक्षों की विशेषताओं के द्वारा उत्पन्न सामाजिक परिवर्तनों की विवेचना करेगें, जिससे यह तथ्य

और भी स्पष्ट हो जायेगा कि जनसंख्यात्मक कारक के ये पक्ष सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी हैं।

7.3.1. अति–जनसंख्या

जनसंख्या वृद्धि जिसे हम कई बार जनांकिकीय विस्फोट (Population Explosion) कहते है, भारत ने ही नहीं, चीन के सामने भी सामाजिक व्यवस्था के कई नये प्रश्न खड़े कर दिये है। जब किसी देश में अति–जनसंख्या की स्थिति होती है तो समाज में अनेक प्रकार के परिवर्तन जन्म लेते हैं। अति जनसंख्या का अभिप्राय उस स्थिति से है जब देश में पोषण के लिए खाद्यान्न की कमी हो और जनसंख्या अत्यधिक तीव्र गति से बढ़ रही हो। माल्थस के अनुसार अति–जनसंख्या की स्थिति में देश में भुखमरी, महामारी, निर्धनता, बेकारी आदि का बोलबाला हो जाता है। यह स्वाभाविक ही है कि इन परिस्थितियों से यदि एक ओर जन–स्वास्थ्य का स्तर गिरता है तो दूसरी ओर जनता के रहन–सहन का स्तर भी नीचा होने लगता है। इन सब बातों से वैयक्तिक विघटन, पारिवारिक विघटन और सामाजिक विघटन को अप्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन मिलता है। दूसरे शब्दों में, अति–जनसंख्या की स्थिति में सामाजिक ढाँचे और संगठन में विघटनकारी परिवर्तन होते हैं।

जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होने के कारण सर्वप्रथम खाद्यान्न की कमी का संकट उत्पन्न होता है। जनसंख्या बढ़ने के साथ–साथ खद्यान्न पूर्ति की समस्या गम्भीर होती जाती है। तथा समाज का अस्तित्व खतरे में पड़ने लगता है। खाद्यान्न की कमी का सीधा प्रभाव जन स्वास्थ्य पर पड़ता है। जिसके कारण जन साधारण विशेषकर गरीब जनता पर ज्यादा प्रभाव पड़ता है। बच्चे कुपोषण का शिकार हो जाते है। भारत में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण प्रति वर्ष एक बडी संख्या में बच्चे कुपोषण का शिकार होकर काल का ग्रास बन जाते हैं। परिवार नियोजन के अनेकों उपाय करने पर भी जनसंख्या वृद्धि एक बडी समस्या के रूप में हमारे सामने है। जनसंख्या का एक बडा भाग आधारभूत सुविधाओं के अभाव में नरकीय जीवन जीने के लिए विवश हैं।

खाद्यान्न की पूर्ति के साथ–साथ निर्धनता तथा बेरोजगारी दूसरी बडी समस्यायें हैं जिसके लिए बढ़ती हुई जनसंख्या उततरदायी है। लाखों की संख्या में युवा बेरोजगारी का शिकार हैं। भारत में न केवल अशिक्षित अपितु पढ़े–लिखे युवाओं की भारी भरकम फौज में प्रति वर्ष लाखों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। बेरोजगारी की समस्या यहीं समाप्त नहीं हो जाती। बेरोजगारी के शिकार युआवों के मन में व्यवस्था के प्रति

आक्रोश बढ़ता जा रहा है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए युवा गलत रास्ता अपना लेते हैं। जो समाज के लिए घोर संकट का प्रयाय बनता जा रहा है। बेरोजगारी सामाजिक विघटन में आग में घी का काम कर रही है। युवा दिशाहीन हो रहे है। निराश युवक मादक पदार्थों तथा नशे की लत में आ जाते हैं। इसके अलावा युवकों में लूटमार, चोरी, अपराध आदि की प्रवृत्ति दिनों–दिन बढ़ रहीं है। बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकता की पूर्ति न कर पाने की स्थिति में आत्महत्या, भूण हत्या आदि सामाजिक समस्याओं ने भी विकराल रूप ले लिया है। विभिन्न सरकारी और गैर सरकारी संगठनों द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों, योजनाओं एवं जागरुकता अभियानों का भी जनसंख्या वृद्धि पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड रहा हैं।

7.3.2. जन्मदर एवं मृत्युदर

जन्म दर एवं मृत्यु दर का प्रभाव विभिन्न रूपों में समाज पर प्रभाव पड़ता है। यदि देश की जन्म–दर घट जाती है और मृत्यु–दर बढ़ जाती है तो उसकी जनंसख्या घटती जायेगी जिससे समाज में कार्यशील व्यक्तियों की कमी होगी और उस देश में उपलब्ध समस्त प्राकृतिक साधनों का भरपूर प्रयोग नहीं हो सकेगा। इससे भी देश की आर्थिक दशा गिरती जायगी, परिवारों का आकार घटता जायेगा और इसके फलस्वरूप सामाजिक व पारिवारिक सम्बन्धों में अनेक परिवर्तन होगे। और यदि किसी देश की जन्म–दर बढ़ जाती है और मृत्यु–दर घट जाती है तो उसकी जनंसख्या बढती जायेगी, जिससे समाज में भुखमरी, महामारी, निर्धनता, बेकारी आदि समस्याओं में तीव्र गति से वद्धि होगी।

7.3.3. जनसंख्या की सरंचना

जनसंख्या के घटने–बढ़ने से उसकी सरंचना में परिवर्तन हो जाता है और यह परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन का कारण बन जाता है। साधरणतः जनसंख्या की संरचना में व्यक्तियों की आयु–सरंचना, बच्चों व युवकों में अनुपात, स्त्रियों और पुरूषों का अनुपात आदि को सम्मिलित किया जाता है। इस सभी बातों का सामाजिक जीवन पर प्रभाव पड़ता है। यदि किसी समाज में वृद्धों और बच्चों की संख्या अधिक है तो स्वभावतः उस देश में आर्थिक उत्पादन उचित ढंग से नहीं हो सकेगा, क्योंकि युवा व्यक्ति ही उत्पादन का कार्य अधिक अच्छी तरह से कर सकते है। इसके विपरीत, वृद्धो की संख्या अधिक होने से आविष्कार अधिक हो सकेंगे, क्योंकि वृद्धों के अनुभवों का लाभ प्राप्त हो सकेगा। यदि समाज में स्त्रियों की संख्या पुरुषों के अनुपात में अधिक है तो उस

समाज में बहुपत्नी–प्रथा का प्रचलन होगा। इसके विपरीत, यदि–पुरुषों की संख्या अधिक है तो बहुपति–प्रथा और वधू–मूल्य प्रथा का प्रचलन होगा। ये सभी बातें समाज के सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है।

जनसंख्या एवं उसकी संरचना में परिवर्तन का सामाजिक व्यवस्था पर गहन प्रभाव पड़ता है। किसी भी देश की भौगोलिक, आर्थिक, सामजिक तथा राजनीतिक दशा का वहॉ की जनसंख्या एवं उसकी संरचना पर महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। भारत में स्वतंत्रता पूर्व शिक्षा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं की निम्न स्थिति के कारण जन्म दर एवं मृत्यु दर दोनों अधिक थी। स्वतंत्रता पश्चात् सरकार द्वारा चलायी गयी विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों का जन्मदर एवं मृत्यू दर दोनों पर गहरा प्रभाव पड़ा, और जन्मदर में वृद्धि तथा मृत्यु दर में कमी आने लगी। जिससे भारत में जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई। जन्म दर एवं मृत्यु दर में अन्तर का समाज के विभिन्न स्वरूपों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि किसी देश की जन्म दर की अपेक्षा मृत्यु दर अधिक है तो उसकी जनसंख्या घटती जायेगी। जिससे उस समाज में कार्यशील व्यक्तियों की कमी हो जायेगी। कर्यशील व्यक्तियों की कमी के कारण उस देश में उपलब्ध समस्त प्रकृतिक संसाधनों का उपयोग नहीं हो सकेगा। जिससे देश की आर्थिक दशा निम्नतर होती जायेगी। जिसका सीधा प्रभाव समाजिक व्यवस्था पर पड़ेगा और जीवन स्तर घटता जायेगा। परिवार का आकार भी घटेगा। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था पर कुप्रभाव पड़ेगा।

जनसंख्या बढ़ने के साथ–साथ उसकी संरचना में भी परिवर्तन होता रहता है। जनसंख्यात्मक संरचना मे यह परिवर्तन विभिन्न समाजों में भिन्न–भिन्न हो सकता है। यह परिवर्तन समय और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। जनसंख्यात्मक संरचना से तात्पर्य आयु–संरचना स्त्री पुरुष का अनुपात अर्थात लिंगानुपात, बच्चे–युवा एवं बूढों की संख्या में अनुपात से है। भारत के सन्दर्भ में लिंगानुपात चिन्ता का विषय बना हुआ है विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों के प्रभाव के बाद भी लिंगानुपात में सकारात्मक परिणाम नहीं मिल रहे हैं। इसके लिये शिक्षा एवं जागरुकता की कमी के साथ–साथ हमारी धार्मिक मान्यतायें भी समान रूप से उत्तरदायी है। स्त्री एवं पुरुषों की संख्या में अन्तर से कई समाजिक समस्याओं ने विकराल रुप ले लिया है। पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या मे कमी के कारण दहेज प्रथा, वधू–मूल्य आदि सामस्याओं का विकास हुआ है। दहेज प्रथा के बढ़ते प्रभाव ने कन्या भ्रूण हत्या को प्रोत्साहन दिया है, जो विभिन्न प्रयासों के बाद भी कम नहीं हो पा रहा है। दहेज की व्यवस्था करने के प्रयास में भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, और अत्याधिक धन कमाने की होड़

सी लग गयी है। जिससे सामाजिक विघटन की प्रक्रिया में तेजी आयी है पुरुषों की तुलना में स्त्रीयों की संख्या में कमी के कारण बहुत से युवा अविवाहित रह जा रहे हैं। जिससे उन्हें सामाजिक व्यवस्था में अपने आपाको व्यवस्थित करने में कठिनाई होती है तथा कई सामाजिक कठिनाइयों का सामना करने के लिए विवश होना पडता है। अविवाहित युवकों में सामाजिक व्यवस्था के प्रति आक्रोश बढता है तथा वे कई विघनकारी आदतों के शिकार हो जाते हैं। विवाह न होने के कारण नये परिवारों का निर्माण नहीं हो पता तथा परिवार जो कि समाज की महत्वपूर्ण इकाई है, की कमी के कारण सामाजिक व्यवस्था पर इसका दुष्प्रभाव पड़ता है।

जनसंख्या की वृद्धि को यदि रोक दिया जाये या नियंत्रित कर दिया जाये तो इसके परिणाम जीवन स्तर में उन्नति, स्त्रियों के स्वास्थ्य में सुधार, बच्चों का श्रेष्ठतर पालन–पोषण और अन्ततः स्वास्थ्य समाज का निर्माण के रूप में सामने होगा। जिन देशों में जनसंख्या की वृद्धि होती रहती है तथा प्राकृतिक संसाधन सीमित होते है वहॉ साम्राज्यवाद एवं सैनिकवाद की प्रवृत्ति विकसित होने की सम्भावना बढ़ जाती है। जनसंख्या की वृद्धि जीवन–स्तर के लिए भयावह बन जाती है। जनसंख्या संरचना में परिवर्तन का विवाह तलाक, पति–पत्नी के सम्बंधों, माता पिता एवं बच्चों के सम्बन्धों, बच्चों के पालन पोषण के तरीकों तथा परिवार की समाजिक आर्थिक दशाओं, आदि पर गहन प्रभाव पड़ता है।

7.3.4. अप्रवास और उत्प्रवास का प्रभाव

आप्रवास का अर्थ है बाहर या दूसरे देशों से लोगों का आना और उत्प्रवास का अर्थ है देश के लोगों का अन्य देशों को जाना। दोनों ही स्थितियों में समाज में अनेक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन जन्म लेते है। आप्रवास के सन्दर्भ में भारतवर्ष का उदाहरण दिया जा सकता है। विभाजन के बाद लाखों की संख्या में शरणार्थी पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान (आज के बंग्लादेश) से बे–घरबार होकर भारतवर्ष में आकर बस गये। उनके आने से देश के सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इसी प्रकार उत्प्रवास भी सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी देशों से जब अतिरिक्त लोगों को अमरीका में जाकर बसने के लिए भेज दिया गया तभी इन देशों में अति–जनसंख्या की समस्या कुछ कम हुई और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

स्वप्रगति परीक्षण

1. तकनीकी भाषा में जनांकिकी और जनसंख्या में क्या अन्तर है ?
2. जन्मदर एवं मृत्युदर में अन्तर बताएँ।
3. अप्रवास एवं उत्प्रर्वास का प्रभाव स्पष्ट करें।

निष्कर्षतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अत्यधिक जनसंख्या के कारण बेराजगारी, गरीबी, आवास की कमी, अशिक्षा, खराब स्वास्थ्य एवं कस्बों व शहरों में ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन के कारण भीड़–भाड़ का निरन्तर बढ़ना आदि समस्याऐं बढ़ी है। माल्थस का सिद्धान्त भारतीय स्थिति में लागू नहीं होता क्योंकि स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार के कारण मृत्यु दर काफी काफी कम हो गयी हैं। यद्यपि, जन्म दर में बहुत कम परिवर्तन आया है। अतः किसी भी देश के सामाजिक परिवर्तन को दिशा देने के लिये जनांकिकीय नियोजन आवश्यक है, क्योंकि जनांकिकीय कारक सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक है। जिसके द्वारा सामाजिक परिवर्तन को नियोजित परिवर्तन के रूप में बदला जा सकता है। जिससे किसी भी देश की सामाजिक उन्नति में सहायता प्राप्त की जा सकती है।

7.4 सारांश

जनसंख्या में परिवर्तन का सामाजिक परिवर्तन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या के घटने–बढ़ने का देश की आर्थिक स्थिति पर विशेष प्रभाव पड़ता है। जिन देशों में प्राकृतिक स्रोत तो कम होते हैं परन्तु जनसंख्या अधिक होती है वहाँ निर्धनता और भुखमरी का बोलबाला रहता है। जहाँ अनुकूल व आदर्श जनसंख्या होती है वहाँ के लोगों का जीवन स्तर ऊँचा होता है। इसके साथ ही जन्म व मृत्यु दर भी परिवर्तन लाता है। अगर मृत्यु दर अधिक है तो जनसंख्या कम होती जाती है तथा अधिक बच्चों के जन्म को प्राथमिकता देने वाली प्रथाएँ विकसित होने लगती हैं। अगर जन्म दर अधिक है और मृत्यु दर कम है तो जनाधिक्य की समस्या पैदा हो जाती है जिनसे निर्धनता, बेरोजगारी, भुखमरी आदि में वृद्धि हो जाती है। जनसंख्या में गतिशीलता (आप्रवास तथा उत्प्रवास), जनसंख्या में औसत आयु तथा लिंग अनुपात कुछ अन्य जनसंख्यात्मक कारक हैं जोकि सामाजिक परिवर्तन लाने में सहायक हैं। जनसंख्या के विकास के साथ–साथ सामाजिक मान्यताओं, प्रथाओं और रीति–रिवाजों में भी परिवर्तन आता है। जनसंख्या एवं उसकी संरचना में परिवर्तन का सामाजिक व्यवस्था पर गहन प्रभाव पड़ता है। किसी भी देश की भौगोलिक, आर्थिक, सामजिक तथा राजनीतिक दशा का वहॉ की जनसंख्या एवं उसकी संरचना पर महत्वपूर्ण प्रभाव होता है। भारत में स्वतंत्रता से पूर्व शिक्षा एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं की निम्न स्थिति के कारण जन्म दर एवं मृत्यु दर दोनों अधिक थी। स्वतंत्रता पश्चात् सरकार द्वारा चलाये गये विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों का जन्म दर एवं मृत्यु दर दोनों पर गहरा प्रभाव पड़ा। और जन्म दर में वृद्धि तथा मृत्यु दर में कमी आने लगी, जिससे भारत की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुई। जन्म दर एवं मृत्यु दर में अन्तर का समाज के विभिन्न स्वरूपों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि किसी देश की जन्म दर की अपेक्षा मृत्यु दर अधिक है तो उसकी

जनसंख्या घटती जायेगी। जिससे उस समाज में कार्यशील व्यक्तियों की कमी हो जायेगी। कर्यशील व्यक्तियों की कमी के कारण उस देश में उपलब्ध समस्त प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग नहीं हो सकेगा। जिससे देश की आर्थिक दशा निम्नतर होती जायेगी। जिसका सीधा प्रभाव समाजिक व्यवस्था पर पड़ेगा और जीवन स्तर घटता जायेगा। परिवार का आकार भी घटेगा। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था पर कुप्रभाव पड़ेगा। अतः सामाजशास्त्र के विद्यार्थी के रूप में हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि परिवर्तन के लिए उत्तरदायी जनसंख्यात्मक कारकों का गहनता से अध्ययन करना चाहिए। जिससे जनसंख्या परिवर्तन के सामाजिक व्यवस्था पर प्रभाव को समझ सके तथा इससे उत्पन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान प्रस्तुत कर एक स्वस्थ समाज के निर्माण में अपना योगदान दे सके।

7.5 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1. तकनीकी भाषा में जनांकिकी और जनसंख्या में अन्तर है। जनांकिकी के अन्तर्गत जनंसख्या का अध्ययन किया जाता है। सामान्यतः जनसंख्या का तात्पर्य तो मनुष्यों की गणना से है। इसके अन्तर्गत जन्म–मृत्यु दर, बीमारी, और स्थानान्तरण का अध्ययन होता है, लेकिन जनसंख्या को जब पुरूष–स्त्री, विवाहित–अविवाहित, बालक–वृद्ध आदि दृष्टियों से देखा जाता है तो इसे जनांकिकी कहते है।

2. जन्म दर एवं मृत्यु दर का प्रभाव विभिन्न रूपों में समाज पर प्रभाव पड़ता है। यदि देश की जन्म–दर घट जाती है और मृत्यु–दर बढ़ जाती है तो उसकी जनंसख्या घटती जायेगी जिससे समाज में कार्यशील व्यक्तियों की कमी होगी और उस देश में उपलब्ध समस्त प्राकृतिक साधनों का भरपूर प्रयोग नहीं हो सकेगा। इससे भी देश की आर्थिक दशा गिरती जायगी, परिवारों का आकार घटता जायेगा और इसके फलस्वरूप सामाजिक व पारिवारिक सम्बन्धों में अनेक परिवर्तन होगे। और यदि किसी देश की जन्म–दर बढ़ जाती है और मृत्यु–दर घट जाती है तो उसकी जनंसख्या बढती जायेगी, जिससे समाज में भुखमरी, महामारी, निर्धनता, बेकारी आदि समस्याओं में तीव्र गति से वद्धि होगी।

3. आप्रवास का अर्थ है बाहर या दूसरे देशों से लोगों का आना और उत्प्रवास का अर्थ है देश के लोगों का अन्य देशों को जाना। दोनों ही स्थितियों में समाज में अनेक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन जन्म लेते है। आप्रवास के सन्दर्भ में भारतवर्ष का उदाहरण दिया जा सकता है। विभाजन के बाद लाखों की संख्या में शरणार्थी पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान (आज के बंग्लादेश) से बे–घरबार होकर भारतवर्ष में आकर बस गये। उनके आने से देश के सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं।

इसी प्रकार उत्प्रवास भी सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है। उदाहरणार्थ, पश्चिमी देशों से जब अतिरिक्त लोगों को अमरीका में जाकर बसने के लिए भेज दिया गया तभी इन देशों में अति–जनसंख्या की समस्या कुछ कम हुई और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन के जनसंख्यात्मक कारक से क्या अभिप्राय है?
2. जनसंख्यात्मक कारक के प्रमुख पक्षों का उल्लेख कीजिए।
3. जनसंख्या का आकार एवं घनत्व में वृद्धि या ह्रास किस प्रकार सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करता है।
4. जन्मदर एवं मृत्यु दर की सामाजिक परिवर्तन में भूमिका की विवेचना कीजिए।

7.7 संदर्भ ग्रंथ

- जे0 पी0 सिंह (2004) : **समाजसास्त्र : अवधारणाएँ एवं सिद्धांत**, प्रेंटिस–हाल आफ इण्ड़िया प्रा0 लि0, नई दिल्ली।
- जे0 पी0 सिंह (1999) : **सामाजिक परिवर्तनः स्वरुप एवं सिद्धांत**, प्रेंटिस–हाल आफ इण्ड़िया प्रा0 लि0, नई दिल्ली।
- एस0 एल0 दोषी एवं पी0 सी0 जैन (2009) : **समाजसास्त्र : नई दिशाएँ**, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
- नरेन्द्र कुमार सिंघी एवं वसुधाकर गोस्वामी (2010) : **समाजसास्त्र विवेचन**, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- विद्याभूषण एवं डी0 आर0 सचदेव (2010) : **समाजसास्त्र के सिद्धांत**, किताब महल, नई दिल्ली।
- हरिकृष्ण रावत (2002) : समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
- K.L. Sharma (2007): **India Social Structure and Change**, Rawat Publications, New Delhi.
- T.B. Bottomore (1970): **Sociology: A Guide to Problem and Litrature**, S. Chand and Company, New Delhi.
- M.N. Srinivas (2009): **Social Change in Modern India**, Orient Blackswan Private Limited, New Delhi.

इकाई– 8

समाजिक परिवर्तन के प्रौद्योगिकीय कारक
Technological factors of Social change

इकाई की संरचना

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 उत्पादन–प्रौद्योगिकी में परिवर्तन
8.3 संचार– प्रौद्योगिकी में परिवर्तन
8.4 यातायात–प्रौद्योगिकी में परिवर्तन
8.5 पारिवारिक जीवन पर प्रभाव
8.6 आर्थिक जीवन पर प्रभाव
8.7 सामाजिक जीवन पर प्रभाव
8.8 राज्य पर प्रभाव
8.9 धार्मिक जीवन पर प्रभाव
8.10 सारांश
8.11 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर
8.12 अभ्यासार्थ प्रश्न
8.13 संदर्भ गंर्थ

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन के प्रौद्योगिकीय कारक तथा समाज में उनके प्रभाव को समझना है। विज्ञान के विकास के साथ–साथ किन प्रतिदिन नई–नई प्रौद्योगिकी का अविष्कार हो रहा है। इस इकाई द्वारा मानव जीवन से जुडे विभिन्न आयामों में हुए प्रौद्योगिकी परिवर्तन पर प्रकाश डाला गया है तथा इन परिवर्तनों का सामाजिक जीवन पर प्रभाव का विश्लेषण किया गया हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

1. समाजिक परिवर्तन के प्रौद्योगिकीय कारकों को समझ सकेंगे।

2. मानव जीवन से जुडे प्रमुख आयामों में हुए प्रौद्योगिकी परिवर्तनों को समझ सकेंगे।

3. प्रौद्योगिकीय कारकों के सामाजिक जीवन पर प्रभाव की जानकारी प्राप्त करेंगे।

8.1 प्रस्तावना

प्रौद्योगिकी सामाजिक परिवर्तन का एक सषक्त कारक है। प्रौद्योगिकी समाज को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है, क्योंकि प्रौद्योगिकी में कोई भी परिवर्तन किसी संस्था अथवा समूह में परिवर्तन का कारण बनता है। ऊर्जा के नए स्रोतों की खोज के फलस्वरूप यंत्र प्रौद्योगिकी के आगमन के इतने महत्वूपर्ण परिणाम हुए कि इसे बहुधा क्रांति का नाम दिया गया है। आदिमकाल से आज तक कई प्रौद्योगिकीय क्रान्तियाँ हुई हैं। क्रान्तियों के इस क्रम में भाप के इंजन तथा कोयले का महत्वपूर्ण योगदान रहा। कोयले ने बड़े–बड़े भीमकाय कल–कारखाने चलाये। इसके बाद बिजली आयी और आज हम सूचना के युग में खड़े हैं। इन प्रौद्योगिकी क्रान्तियों ने सामाजिक परिवर्तन को निरन्तर नई दिशा प्रदान की है। प्रौद्योगिकी जनित क्रान्ति ने सामाजिक क्रान्ति को जन्म दिया। सामाजिक क्रान्ति का बहुत अच्छा दृष्टान्त थर्सटीन वेबलीन का विलास अर्थात् फुरसत का सिद्धान्त है।

ऑगर्बन का कथन है, ''प्रौद्योगिकी समाज को हमारे पर्यावरण में परिवर्तन द्वारा जिसके प्रति हमें अनुकूलित होना पड़ता है, बदलती है। यह परिवर्तन प्रायः भौतिक आयामों में आता है तथा हम इन परिवर्तनों के साथ जो अनुकूलन करते है, उससे प्रथाओं एवं सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन हो जाता है।''

मैकाइवर एवं पेज ने लिखा है कि जब किसी भी नयी मषीन का आविष्कार होता है तो वह अपने साथ सामाजिक जीवन में एक नये परिवर्तन को लाती है।

बॉटोमोर ने कहा है ''भारत वर्ष में अनेक प्रक्रियाएँ एक साथ घटित हो रही हैं। औद्योगिकीय विकास की योजनाबद्ध कार्यषीलता तथा इसके साथ साथ कृषि संबंधी अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण योजना भी लागू है। इसके अतिरिक्त अनेक अवांछित और अनपेक्षित परिवर्तन दिखाई देते हैं, जो प्रत्यक्ष रूप में औद्योगीकरण तथा नवीनीकरण से उत्पन्न होते हैं। इन विशाल परिवर्तनों का समाजशास्त्रियों द्वारा विष्लेषण करना तो दूर रहा, अभी तक उनका वर्णन भी नहीं किया गया।''

ममफोर्ड के अनुसार ''हमारे युग का नवीनतम तथा व्यापक तत्व पूँजीवाद नहीं अपितु यंत्रीकरण है, जिसका परिणाम पूँजीवाद है। हमें यह विदित है कि इस यन्त्रीकरण ने हमारी जीवन विधि को तथा विचार–पद्धति को परवर्तित कर दिया है।''

8.2 उत्पादन–प्रौद्योगिकी में परिवर्तन

प्रौद्योगिकी की उन्नति के सम्मुख हमारी मनोवृत्तियाँ, विष्वास एवं रीति–रिवाज शिथिल हो गये हैं। श्रमिकों की चेतना, सामाजिक वर्गों की दैवी व्यवस्था, रीति–रिवाज, तथा जन्म की प्रतिष्ठा सभी प्रौद्योगिकी के षिकार हुए हैं। औद्योगिक युग में स्त्रियों की प्रस्थिति का उदाहरण लिया जा सकता है। औद्योगिकतावाद ने उत्पादन की घरेलू प्रणाली को नष्ट कर स्त्रियों को घर से कर्यषाला एवं कार्यालय में पहुँचा कर उनकी आय को विभेदित कर दिया है। इसने स्त्रियों को नवीन सामाजिक जीवन प्रदान किया है। आधुनिक प्रौद्योगिक के परिणामस्वरूप वस्तुओं के उत्पादन को सस्ता बना दिया है, अपितु वस्तुओं के वितरण को भी उच्च ढंग से संगठित, कुषल एवं व्यापक बना दिया है। उद्योगों ने श्रमिकों को संगठित कर दिया है तथा उत्पादन एवं वितरण की जटिल व्यवस्था को जन्म दिया है। उद्योग में उन्नत उत्पादन–क्षमता ने जनसंख्या के अधिकांष भाग को सेवा–कार्यो से मुक्त कर दिया है। अभियन्ताओं, लेखाकारों, कच्चे पदार्थो के क्रेताओं एवं निर्मित वस्तुओं के विक्रेताओं, जो वास्तविक रूप में उत्पादन कार्य नहीं करते, की सख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। उत्पादन एवं व्यापार की विधि में परिवर्तन के कारण राजनीतिक नियमन की नई समस्याओं का जन्म हुआ। कानून के कार्यो का विस्तार हुआ। कानून–निर्माताओं कानून को क्रियान्वित करने वाले नौकरषाहों तथा कानून की व्याख्या करने वाले वकीलों की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। उद्योग, कृषि एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में विज्ञान के प्रयोग से अनेक नवीन सेवागत कार्यों का जन्म हुआ। औद्योगिक श्रमिकों की सामाजिक प्रस्थिति में ह्रास हुआ, जबकि सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के सामाजिक मान में वृद्धि हुई। यदि हम अपने चारों ओर देखे तो हमें प्रौद्योगिकीय आविष्कारों के फलस्वरूप समाज में हो रहे विषाल परिवर्तनों का आभास हो जाएगा। बारूद के आविष्कार से युद्ध की प्रविधि ही बदल गई हैं। हमारे युग का सर्वाधिक विशिष्ट अन्वेषण अणु–षक्ति है, जिसने हमारे जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। युद्ध के अभिकर्त्ता के रूप में इसने हीरोषिमा एवं नागासाकी में भीषण नर–संहार किया। शांति के अभिकर्ता के रूप में वह अन्ततः समृद्धि का अभूतपूर्व युग ला सकता है। यत्रंचालित वाहनों ने सामाजिक सम्बन्धों के क्षेत्र को व्यापक बना दिया है तथा पड़ोस के सामुदायिक स्वरूप को कम कर दिया है। जीवन–स्तर में वृद्धि,

वर्ग–सरंचना एवं वर्ग–मानको में परिवर्तन, मध्यम वर्ग का उत्थान, स्थानीय लोक–रीतियों की महत्वहीनता, पड़ोस का विघटन, प्राचीन पारिवारिक व्यवस्था की ध्वस्तता, ग्राम्य ढ़ंगों पर शहरी जीवन–क्रम की बढ़ती हुई प्रबलता, स्त्रियों की दषां में उन्नति, नवीन विचारधाराओं एवं आन्दोलनों, तथा साम्यवाद एवं समाजवाद का जन्म, औद्योगिक समूहों विषेषतः श्रमिक संघो की चुनौती तथा शोभाचार का प्रसार उत्पादन–प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के परिणाम है। मनुष्यों की विचाराधाएँ अधिक अनुभववादी हो गई है। वे गुण की तुलना में परिणाम के प्रति तथा मूल्यांकन की अपेक्षा मापन के प्रति अधिक निष्ठावान् हैं। उनकी मनोवृत्ति यांत्रिक हो गयी है तथा चिन्तन प्रधान जीवन का अभाव है।

कृषि प्रविधियों में परिवर्तनों ने ग्राम्य समुदाय को प्रभावित किया है। नवीन कृषि उपकरणों एवं रासायनिक उर्वरकों के प्रयोगों से कृषि उत्पादक में वृद्धि हुई है। जिससे ग्रामीण लोगों का जीवन–स्तर उन्नत हो गया है। अब कृषि के लिए अपेक्षाकृत कम लोगों की आवष्यकता होती है। परिणामतः अनेक कृषि श्रमिकों ने नगरों की ओर काम की तलाष में प्रवास किया है।

8.3 संचार– प्रौद्योगिकी में परिवर्तन

न केवल उत्पादन–प्रौद्योगिकी में परिवर्तनों ने अपितु संचार–साधनों में परिवर्तनों ने भी सामाजिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। आधुनिक संचार–प्रविधियों में परिवर्तनों का सामाजिक जीवन पर प्रभाव उत्पादन–प्रौद्योगिकी में परिवर्तनों के प्रभाव के समान है परन्तु संचार–साधनों में परिवर्तनों का अतिरिक्त प्रभाव भी पड़ता है, क्योंकि जिस प्रयोग में वे लाए जाते हैं, उनका स्वयं सामाजिक महत्व होता है। सभी संचार–विधियों का मूल कार्य समय एवं दूरी पर विजय प्राप्त करना हैं। संचार की प्रविधियाँ उन संगठनों, जिनका मनुष्य विकास कर सकता है, के क्षेत्र को तथा पर्याप्त सीमा तक उनके स्वरूप को सीमित कर देती हैं। संचरण हमारे सामाजिक जीवन को निर्धारित करने वाला एक महत्वपूर्ण तत्व है। इसकी प्रविधियाँ निष्चित रूप से संगठित जीवन के प्रकारों को सीमित करती हैं। संचरण की प्राथमिक प्रविधियाँ वाणी एवं संकेत हैं, क्योंकि संचरण के अन्य सभी ढंग इन पर आधारित हैं। लेखन वाणी का लिखित स्वरूप है; रेडियों संचरण दूरी मिटाते हुए वाणी का संचार है। सांकेतिक एवं भाषायी अन्तर विभिन्न समूहों एवं समाजों के लोगों के बीच सद्भावना एंव सम्पर्क की वृद्धि करने में विषिष्ट बाधक हैं। गत कुछ शताब्दियों में संचार की अनुषंगी प्रविधियों के क्षेत्र

में महत्वपूर्ण विकास हुए हैं। प्रौद्योगिकीय परिवर्तन ने इन विचारों को प्रोत्साहित किया है। भावचित्रों द्वारा लेखन, जो ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से लेखन–प्रतीकीकरण का प्राथमिक रूप था, की अपेक्षा वर्णमाला द्वारा लेखन श्रेष्ठतर है। लेखन की नमनीय एवं सरल प्रणाली राजनीतिक संगठन के आनुषंगिक रूपों के जन्म को सुगम बना देती है। जब व्यक्ति संचार की प्राथमिक प्रविधियों पर पूर्णतया आश्रित होते हैं तो स्थायी, जटिल एवं उच्च रूप से एकीकृत संगठनों की उत्पत्ति कठिन होती है। वर्णमालात्मक लेखन सांस्कृतिक तत्वों के अन्वेषण एवं विसरण को सुलभ बना देता है।

मुद्रणालय के आविष्कार ने सस्ती पाठ्य–सामग्री के उत्पादन को सुगम बना दिया है। विज्ञान की उन्नति को मुद्रणालय के विकास ने प्रोत्साहित किया है। वैज्ञानिक खोजों के मुद्रण ने ज्ञान के संचय को सम्भव बनाया। इस प्रकार, भावी अन्वेषक ज्ञान के इस मुद्रित भडांर का अपनी इच्छानुसार प्रयोग कर सकता है। मुद्रित शब्द अन्वेषणों एवं खोजों को किसी समाज के सदस्यों एवं समाजों के बीच द्रुत गति से विसरित कर देता है। इससे ज्ञान, जो केवल कुछेक लोगों की सम्पत्ति बनकर रह जाता, अनेक लोगों में व्याप्त हो जाता है। जिस द्रुत गति से आधुनिक युग में सांस्कृतिक परिवर्तन हो रहे हैं, उनका श्रेय संचरण के रूप में मुद्रित शब्द के बढ़ते हुए प्रयोग को दिया जा सकता है। मुद्रणालय ने मनोरजंन, षिक्षा, राजनीति एवं व्यापार को प्रभावित किया है। इसने ग्रामवासी को शहरी जीवन का ज्ञान कराया है तथा उसमें नगरीय वस्तुओं की इच्छा उत्पन्न की है अथवा उसे नगर में प्रवास करा दिया है।

इस प्रकार हम समझ सकते है कि रेडियों, दूरभाष एवं तार के आविष्कार ने व्यापार मनोरंजन एवं जनमत को प्रभावित किया है तथा संगठन के नए ढंगों के विकास को आगे बढ़ाया है। आगबर्न ने संस्कृति की एकरूपता एवं इसके विसरण, मनोरंजन एवं आमोद–प्रमोद, यातायात, षिक्षा, सूचना–प्रसारण धर्म, उद्योग, व्यापार, व्यावसाय शासन–प्रणाली, राजनीति एवं अन्य आविष्कारों पर रेडियों के 150 तात्कालिक एवं अन्य दूरगामी सामाजिक प्रभावों को सूचीबद्ध किया है।

8.4 यातायात–प्रौद्योगिकी में परिवर्तन

यातायात के साधनों में परिवर्तन ने हमारे सामाजिक सम्बन्धों को विविध प्रकार से प्रभावित किया है। यातायात के साधनों में परिवर्तन अथवा उन्नति दूरी पर भौतिक विजय है। यातायात के साधन एवं ढंग इस बात का निर्धारण करते हैं कि मनुष्य कितनी सुगमता से आ–जा सकते हैं तथा कितनी सुगमता से दूसरे स्थानों अथवा

समाजों के लोगों से विचारों अथवा वस्तुओं के आदान–प्रदान हेतु संपर्क स्थापित कर सकते हैं। आधुनिक सामाजिक जीवन में यातायात का महत्व स्पष्ट है। आधुनिक मनुष्य पहियों पर इतना अधिक आश्रित है कि यदि स्थानीय यातायात न होता तो वह उपनगरों में रहकर नगर में कार्य नहीं कर सकता था, यदि यंत्रचलित वाहन न होते तो वह स्टेषन पर रेलगाड़ी पकड़ने के लिए कुछ ही मिनट पूर्व घर को नहीं छोड़ सकता था। यदि रेलगाड़ियाँ अथवा जहाज न होते, जो संसार के विभिन्न भागों को व्यापारिक रूप में संयुक्त करते हैं, तो वह विभिन्न संस्कृतियों को जानने व समझने से अछुता रह जाता। यदि यातायात के पहिए एक दिन के लिए भी रूक जाएँ तो आधुनिक समाज का जीवन–विश्रृंखलित हो जाएगा।

यातायात सामाजिक सम्बन्धों के स्थानिक स्वरूप को निर्धारित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक हैं। जैसे–जैसे यातायात के साधनों में परिवर्तन हुआ है, वैसे–वैसे ही समूह के सदस्यों के स्थानिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन आया है। यातायात के द्रुतगामी साधनों की सुविधा से अन्तःद्वीपीय व्यापार एवं देशों की आन्योन्याश्रियता में वृद्धि हुई है। विभिन्न देशों के लोगों के परस्पर मिलने से अधिकांश भ्रांतियाँ दूर हो गई है तथा घृणा एवं ईर्ष्या का स्थान सहानुभूति एवं सहयोग ने ले लिया है। इससे सार्वभौमिक भ्रातृत्व की भावना का विस्तार हुआ है। वायुयानों एवं पानी के जहाजों के आविष्कार ने वस्तुओं के आयात–निर्यात को और भी अधिक तीव्र बना दिया है। नगरों का विकास तथ इसकी सभी समस्याएं यातायात के साधनों के विकास का एक अन्य महत्वपूर्ण परिणाम है। आजकल जनसंख्या अति गतिशील है जिसमें यातायात के आधुनिक द्रुत साधनों ने योगदान दिया है। यातायात के नये ढंगों ने सांस्कृतिक तत्वों के विसरण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। वायुयान, रेलवे, मोटर गाड़ियाँ, यंत्रचालित वाहनों ने रेडियों एवं मुद्रणालय सहित सांस्कृतिक पृथकत्व को कम करके सांस्कृतिक एकरूपता के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। गत कुछ शताब्दियों, विशेषतः गत एक सौ वर्षो के यातायात सम्बन्धी विकास ने प्रदेशों, राष्ट्रों एवं समग्र रूप से संसार के लोगों के आर्थिक एकीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, यद्यपि उनके बीच सामाजिक एकीकरण का अभी विकास होना शेष है।

इस प्रकार, प्रौद्योगिकीय परिवर्तनों ने सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शो को प्रभावित किया हैं। लोगों में सामूहिकता का भावना का ह्रास हुआ है। उनमें व्यक्तिवाद की जड़ें गहरी होती जा रही हैं। इन परिवर्तनों ने सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक निर्मूलता को गहनतम बना दिया है। व्यक्तिवाद ने परम्परावाद का स्थान ले लिया है। नौकरशाही की सत्ता

एवं उसकी संख्या में वृद्धि हुई है। मानवी सम्बन्ध अवैयक्तिक अथवा आनुषंगिक बन गए हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि परिवर्तन पहले प्रविधियों की एक प्रणाली में उत्पन्न होकर बाद में दूसरी प्रणालियों में आयें हैं : जब कभी प्रविधियों की प्रणाली के किसी तत्व में परिवर्तन हुआ है तो उससे सम्पूर्ण प्रणाली में उथल–पुथल हुई जिसमें इसके सभी तत्वों में परिवर्तन आए।

प्रमुख सामाजिक संस्थाओं पर प्रौद्योगिक के प्रभावों को निम्न प्रकार से संक्षेपित किया जा सकता है।

8.5 पारिवारिक जीवन पर प्रभाव

प्रौद्योगिकी पारिवारिक जीवन में अनेक उल्लेखनीय परिवर्तनों को जन्म देती है। मशीनों के आविष्कार के फलस्वरूप बड़े–बड़े उद्योग–धन्धें पनप जाते हैं। इसमें काम करने के लिए अनेक लोगों की आवश्यकता होती है। अतः लोग गाँव से आकर शहर में बसने लगते हैं। परन्तु मकानों की समस्या के कारण वे अपने संयुक्त परिवारों को नगरो में बनाये नहीं रख पाते; इससे संयुक्त परिवार का विघटन होता है। प्रौद्योगिकीय विकास स्त्रियों को भी नौकरी का अवसर प्रदान करता है। इससे स्त्रियों की आर्थिक स्थिति सुधरती है, लेकिन परिवार का सामान्य संगठन बिगड़ता है। पति–पत्नी में घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं पनप पाता तथा बच्चों का पालन–पोषण भी उचित ढंग से नहीं होता। इतना ही नहीं, प्रौद्योगिकी विकास परिवार के कार्यों को भी कम करता है। आज परिवार के अनेक कार्य बाहरी समिति और संस्थाओं ने ले लिये हैं। साथ ही, प्रौद्योगिकी युवक–युवतियों को साथ–साथ काम करने, शिक्षा प्राप्त करने व मिलने–जुलने का अवसर प्रदान करती है। जिससे प्रेम–विवाह, अन्र्जातीय विवाह, विलम्ब–विवाह और विवाह–विच्छेद आदि को प्रोत्साहन मिलता है। आधुनिक प्रौद्योगिकी ने पारिवारिक संगठन एवं सम्बन्धों को अनेक प्रकार से प्रभावित किया। प्रमुख प्रभाव निम्नलिखित हैं–

(i) प्रौद्योगिकी ने संयुक्त परिवार प्रणाली के विघटन में योगदान दिया है।

(ii) कार्यशालाओं एवं कार्यालयों में स्त्रियों द्वारा नौकरी में भागीदारी ने पति–पत्नी के सम्बन्धों के स्वरूप को बदल दिया है तथा अन्य अनेक प्रकार से पारिवारिक संरचना एवं कार्यो को प्रभावित किया है।

(iii) स्त्री और पुरुष दोनों के नौकरी करने से बच्चों के सामाजिकरण पर कुप्रभाव पडा है।

(iv) प्रौद्योगिकी ने स्त्रियों को आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। 'स्त्री मुक्ति आन्दोलन' प्रौद्योगिकी को परिणाम है।

(v) प्रेम–विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, विलम्ब से विवाह प्रौद्योगिकी के अन्य प्रभाव है।

(vi) संतति–नियंत्रण के साधनों के आविष्कार ने परिवार के आकार को कम कर दिया है।

8.6 आर्थिक जीवन पर प्रभाव

प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप, जैसा कि कहा जा चुका है, औद्योगिक विकास सम्भव होता है। इससे अनेक प्रकार के परिवर्तन स्वतः ही घटित होते हैं। जैसे औद्योगिकरण का एक सामान्य परिणाम पूँजीवाद का विकास है। उसी प्रकार, प्रौद्योगिकीय विकास के कारण उत्पादन बड़े पैमाने पर होने लगता है। और जब उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है तो श्रम–विभाजन की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि एक या कुछ व्यक्तियों द्वारा प्रत्येक प्रकार का कार्य नहीं हो सकता। एक व्यक्ति जब काफी दिनों तक एक प्रक्रियों के अन्तर्गत एक विशेष प्रकार का कार्य करता रहता है, तब वह उसमें विशेषीकरण प्राप्त कर लेता है। प्रौद्योगिकीय उन्नति हमारे जीवन–स्तर को भी ऊँचा करती है, परन्तु साथ ही अनेक प्रकार की औद्योगिक दुर्घटनाएँ, बीमारी और झगडें भी इसी की उपज हैं। ये प्रभाव निम्न–लिखित हैं–

(i) उद्योग घरेलू नहीं रह गए हैं। अब कार्यशालाओं, एजेन्सियों, भंडारों, बैंको आदि जैसे आर्थिक संगठनों का विकास हुआ है।

(ii) इसने पूँजीवाद एवं इसकी सब बुराइयों को जन्म दिया है।

(iii) इसने जीवन–स्तर में वृद्धि की है।

(iv) श्रम–विभाजन एवं विशेषीकरण प्रौद्योगिकी की उपज हैं।

(v) इसने आर्थिक मंदी, बेकारी, औद्योगिकी संघर्षो, दुर्घटनाओं एवं रोगों को जन्म दिया है।

(vi) इसने श्रमिक संघ आन्दोलन को जन्म दिया है।

8.7 सामाजिक जीवन पर प्रभाव

प्रौद्योगिकी से एक बड़ा परिवर्तन यह होता है कि उद्योग–धन्धों में प्रगति होती है। औद्योगिकरण के परिणामस्वरूप बड़े–बड़े नगरों का विकास होता है। और समुदाय की जनसंख्या जैसे–जैसे बढ़ती जाती है वैसे–वैसे व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाये रखना कठिन होता है। इसका एक स्वाभाविक परिणाम सामुदायिक जीवन का ह्रास होता है। इसी प्रकार बड़े–बड़े नगरों के विकास के फलस्वरूप अनेक प्रकार के अपराध, व्याभिचार और संघर्ष आदि स्वतः बढ़ते रहते हैं। उद्योग–धन्धों में रोजगार के अवसरों में प्रगति होने से नगरों में काम करने के लिए अनेक लोग दूर–दूर से आकर नगरों में रहने लगते हैं। नये परिवेश की कठिनाइयों, कम आमदनी तथा मकानों इत्यादि की समस्यों के कारण नगरों में रहने वाले अनेक लोगों के पत्नी–बच्चों को गाँव में ही रहना पड़ता है। जो अनैतिक सम्बंधों और वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक बुराइयों को बढाने में सहायक होता है। प्रौद्योगिकीय विकास का एक और सामान्य प्रभाव यह होता है कि व्यक्तिवादी आदर्श उत्तरोत्तर गहन होते जाते हैं। क्योंकि प्रौद्योगिकीय समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा धन तथा वैयक्तिक गुणों के आधार पर होती है। इतना ही नहीं, मनोरंजन का व्यापारीकरण और अनेक मानसिक चिन्ताएँ और रोग भी प्रौद्योगिकीय विकास के स्वाभाविक परिणाम है। कुछ प्रभाव निम्न लिखित हैं–

(i) प्रौद्योगिकीय विकास से सामुदायिक जीवन का ह्रास हुआ है।

(ii) इससे व्यक्तिवादिता की भावना में वृद्धि की है।

(iii) प्रौद्योगिकीय विकास ने नगरों में मकानों एवं गन्दी बस्तियों की समस्या को जन्म दिया है।

(iv) मनोरंजन का व्यापारीकरण हो गया है।

(v) प्रौद्योगिकीय विकास ने जन्म से लेकर मृत्यु तक सामाजिक स्तरीकरण के आधार को बदल दिया है।

(vi) जाति–व्यवस्था के बंधनों को शिथिल कर दिया है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. आधुनिक प्रौद्योगिकी ने पारिवारिक संगठन एवं सम्बंधों को कैसे प्रभावित किया है ?
2. आधुनिक प्रौद्योगिकी ने पारिवारिक संगठन एवं सम्बंधें को और किस तरह प्रभावित किया है ?
3. आधुनिक प्रौद्योगिकी ने राज्य पर कैसा प्रभाव डाला है ?

(vii) इसने सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन किया है। मनुष्य यंत्र बन गया है, सामाजिक सम्पर्क आनुषंगिक हो गए हैं। सम्बन्धों की घनिष्ठा समाप्त हो गई हैं। मनुष्य का सम्मान उसके धन से कि उसके गुणों से किया जाता है।

(viii) इसने मानसिक चिंताओं एवं रोगों में वृद्धि की है। आधुनिक व्यक्ति मानसिक तनाव, भावनात्मक अस्थिरता एवं आर्थिक असुरक्षा से पीड़ित है।

8.8 राज्य पर प्रभाव

प्रौद्योगिकी विकास ने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से राज्य को भी प्रभावित किया है। प्रौद्योगिकी विकास से आर्थिक विकास को नई दिशां मिली है। जिससे राज्य को होने वाली आय में अप्रत्यासित वृद्धि की है। राज्य द्वारा जिसका प्रयोग सामाजिक कल्याण की योजनाओं के लिए किया जाता है। प्रौद्योगिकी के कारण हुएं आर्थिक विकास ने विभिन्न आर्थिक संगठनों एवं संस्थाओं को जन्म दिया है, जो राजनीतिक गतिविधियों हेतु राजनीतिक संगठनों को धन उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। इसके बदले में लाभ पहुचाने वाली नीतियों के निर्माण के लिए राज्य को बाध्य करती है। जिसका प्रभाव राज्य की गरीब जनता पर पडता है। इसके अतिरिक्त प्रौद्योगिकी राज्य को निम्नलिखित प्रकार से प्रभावित करती हैः–

(i) अनेक कार्य परिवार से राज्य को हस्तांतरित हो गए हैं समाज कल्याण की अवधारणा प्रौद्योगिकी की उपज हैं। राज्य के कार्यक्षेत्र में भी वृद्धि हुई है।

(ii) राज्य पर दबाव–समूहों का प्रभाव बढ़ गया है।

(iii) स्थानीय शासन के कार्य केन्द्रीय सरकार के पास आ गए हैं।

(iv) राष्ट्रवाद के अवरोधक चूर–चूर हो गए हैं तथा विश्व राज्य का विचार बल पकड़ रहा है।

(v) प्रजातंत्र शासन का सामान्य रूप बन गया है।

8.9 धार्मिक जीवन पर प्रभाव

वैज्ञानिक ज्ञान की वृद्धि होने से अंधविश्वास समाप्त हो रहे हैं। अब धार्मिक सहनशीलता अधिक मात्रा में पाई जाती है। विभिन्न धर्मों के अनुयायियों ने अपनी

रूढ़िवादिता को समाप्त करके दूसरे धर्मों के लोगों के साथ उठना–बैठना आरम्भ कर दिया है। धर्म अब अधिक वैज्ञानिक एवं लौकिकीकृत बन गया हैं। उपर्युक्त सभी प्रभाव भारतीय जीवन में भी देखे जा सकते हैं। प्रौद्योगिकी कारक धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन को भी पर्याप्त रूप में परिवर्तित करता है। वास्तव में प्रौद्योगिकीय प्रगति का तात्पर्य यह है कि मनुष्य के ज्ञान और विज्ञान का स्तर उसी अनुपात में ऊँचा उठ गया है। जहाँ ज्ञान और विज्ञान है, वहाँ धर्म की प्रभुता, धर्म सम्बन्धी विश्वास और कुसंस्कार स्वतः कम होते जाते हैं। साथ ही, प्रौद्योगिकीय उन्नति से नगरों का विकास होता है। नगरों में विभिन्न धर्मो के मानने वाले साथ–साथ मिलते हैं, उठते–बैठते तथा काम करते हैं। इससे दूसरे धर्मों के प्रति लोगों में सहनशीलता पनपती है और धार्मिक संकीर्णताएँ दूर होती जाती है। इसी प्रकार सांस्कृतिक जीवन में भी प्रौद्योगिकी अनेक परिवर्तनों को जन्म देती है। नृत्य, संगीत, साहित्य आदि सभी के स्वरूप बदल जाते हैं।

8.10 सारांश

प्रौद्योगिकी सामाजिक परिवर्तन का एक सषक्त कारक है। प्रौद्योगिकी समाज को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है। प्रौद्योगिकी में कोई भी परिवर्तन प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से किसी संस्था अथवा समूह में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी होता है। ऊर्जा के नए स्रोतों की खोज के फलस्वरूप यंत्र प्रौद्योगिकी के आगमन के इतने महत्वूपर्ण परिणाम हुए कि इसे बहुधा क्रांति का नाम दिया गया है। प्रौद्योगिकी के विकास ने मानव जीवन से जूडे विभिन्न पहलूओं जैसे उत्पादन की पद्धतियाँ, यातायात के साधन तथा सूचना एवं संचार के साधनों में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया हैं। जिसने सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इस रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रौद्योगिकीय कारक सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण कारक है।

8.11 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1. आधुनिक प्रौद्योगिकी ने पारिवारिक संगठन एवं सम्बन्धों को अनेक प्रकार से प्रभावित किया। प्रमुख प्रभाव निम्नलिखित हैं–

   (i) प्रौद्योगिकी ने संयुक्त परिवार प्रणाली के विघटन में योगदान दिया है।

(ii) कार्यशालाओं एवं कार्यालयों में स्त्रियों द्वारा नौकरी में भागीदारी ने पति–पत्नी के सम्बन्धों के स्वरूप को बदल दिया है तथा अन्य अनेक प्रकार से पारिवारिक संरचना एवं कार्यो को प्रभावित किया है।

(iii) स्त्री और पुरुष दोनों के नौकरी करने से बच्चों के सामाजिकरण पर कुप्रभाव पडा है।

(iv) प्रौद्योगिकी ने स्त्रियों को आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। 'स्त्री मुक्ति आन्दोलन' प्रौद्योगिकी को परिणाम है।

(v) प्रेम–विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, विलम्ब से विवाह प्रौद्योगिकी के अन्य प्रभाव है।

(vi) संतति–नियंत्रण के साधनों के आविष्कार ने परिवार के आकार को कम कर दिया है।

2. प्रौद्योगिकीय उन्नति हमारे जीवन–स्तर को भी ऊँचा करती है, परन्तु साथ ही अनेक प्रकार की औद्योगिक दुर्घटनाएँ, बीमारी और झगडें भी इसी की उपज हैं। ये प्रभाव निम्न–लिखित हैं–

(i) उद्योग घरेलू नहीं रह गए हैं। अब कार्यशालाओं, एजेन्सियों, भंडारों, बैंको आदि जैसे आर्थिक संगठनों का विकास हुआ है।

(ii) इसने पूँजीवाद एवं इसकी सब बुराइयों को जन्म दिया है।

(iii) इसने जीवन–स्तर में वृद्धि की है।

(iv) श्रम–विभाजन एवं विशेषीकरण प्रौद्योगिकी की उपज हैं।

(v) इसने आर्थिक मंदी, बेकारी, औद्योगिकी संघर्षो, दुर्घटनाओं एवं रोगों को जन्म दिया है।

(vi) इसने श्रमिक संघ आन्दोलन को जन्म दिया है।

3. प्रौद्योगिकी राज्य को निम्नलिखित प्रकार से प्रभावित करती हैः–

(i) अनेक कार्य परिवार से राज्य को हस्तांतरित हो गए हैं समाज कल्याण की अवधारणा प्रौद्योगिकी की उपज हैं। राज्य के कार्यक्षेत्र में भी वृद्धि हुई है।

(ii) राज्य पर दबाव–समूहों का प्रभाव बढ़ गया है।

(iii) स्थानीय शासन के कार्य केन्द्रीय सरकार के पास आ गए हैं।

(iv) राष्ट्रवाद के अवरोधक चूर–चूर हो गए हैं तथा विश्व राज्य का विचार बल पकड़ रहा है।

(v) प्रजातंत्र शासन का सामान्य रूप बन गया है।

8.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन के प्रौद्योगिकीय कारक से क्या अभिप्राय है?
2. प्रौद्योगिकीय कारकों की सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में व्याख्या कीजिए।
3. उत्पादन–प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के सामाजिक परिवर्तन में योगदान की विवेचना कीजिए।
4. संचार– प्रौद्योगिकी में परिवर्तन के सामाजिक प्रभावों का उल्लेख कीजिए।
5. सामाजिक परिवर्तन में यातायात–प्रौद्योगिकी की भूमिका की विवेचना कीजिए।

8.13 संदर्भ गंर्थ

- जे0 पी0 सिंह (2004) : **समाजसास्त्र : अवधारणाएँ एवं सिद्धांत**, प्रेंटिस–हाल आफ इण्ड़िया प्रा0 लि0, नई दिल्ली।
- जे0 पी0 सिंह (1999) : **सामाजिक परिवर्तनः स्वरुप एवं सिद्धांत**, प्रेंटिस–हाल आफ इण्ड़िया प्रा0 लि0, नई दिल्ली।
- एस0 एल0 दोषी एवं पी0 सी0 जैन (2009) : **समाजसास्त्र : नई दिशाएँ**, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।

- नरेन्द्र कुमार सिंघी एवं वसुधाकर गोस्वामी (2010) : **समाजसास्त्र विवेचन**, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- विद्याभूषण एवं डी0 आर0 सचदेव (2010) : **समाजसास्त्र के सिद्धांत**, किताब महल, नई दिल्ली।
- हरिकृष्ण रावत (2002) : समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
- K.L. Sharma (2007): **India Social Structure and Change**, Rawat Publications, New Delhi.
- T.B. Bottomore (1970): **Sociology: A Guide to Problem and Litrature**, S. Chand and Company, New Delhi.
- M.N. Srinivas (2009): **Social Change in Modern India**, Orient Blackswan Private Limited, New Delhi.

NOTES

इकाई– 9

परिवर्तन के आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारक

Economic & Cultural factors of Social Change

इकाई की संरचना

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक कारक

9.3 सामाजिक परिवर्तन एवं सांस्कृतिक कारक

9.4 सारांश

9.5 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.7 संदर्भ ग्रन्थ

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारकों तथा सामाजिक परिवर्तन में उनके महत्व को समझना हैं। इस इकाई में सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारकों का विस्तृत वर्णन किया गया हैं। तथा समाज के विभिन्न पक्षों पर इनके प्रभावों का गहनता से विश्लेषण किया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः–

1. सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारक की अवधारणा को समझ सकेंगे।
2. सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारक की अवधारणा को समझ सकेंगे।
3. आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारकों का समाज के विभिन्न पक्षों पर प्रभावों की जानकारी प्राप्त करेंगे।
4. आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारकों की सामाजिक परिवर्तन में भूमिका को समझेंगे।

9.1 प्रस्तावना

आर्थिक कारक सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारक है। मार्क्स के अनुसार अर्थव्यवस्था अपने आप में एक स्वतंत्र कारक है। मनुष्य अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति हेतु हमेशा प्रकृति के दोहन के नये–नये तरीकों का प्रयोग करता आया है। इससे प्रौद्योगिकी का विकास होता है। जिसके फलस्वरूप उत्पादन के साधनों में परिवर्तन होता रहता है। क्योंकि उत्पादन के साधन समाज की आधारभूत संरचना है। इसलिए जब इसमें परिवर्तन आता है तो उत्पादन के सम्बन्धों तथा उत्पादन की शक्तियों में भी परिवर्तन होता है। मार्क्स का मानना है कि आधारभूत संरचना में परिवर्तन आता है तो इससे अधिसंरचना अथवा आश्रित संरचना में भी परिवर्तन आता है। समाज के ऐतिहासिक विकास में एक ऐसा समय आता है, जब उत्पादन के सम्बन्ध तथा उत्पादन के साधन विकास का मार्ग अवरूद्ध करने लगते हैं। जिसके फलस्वरूप समाज मे वर्ग संघर्ष उत्पन्न होता है और मानव समाज एक स्तर से दूसरे ऐतिहासिक स्तर में प्रवेश करता है। मार्क्स का मानना है कि आर्थिक व्यवस्था ही सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला है।

9.2 सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक कारक

आर्थिक कारक सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आर्थिक कारक मानव जीवन के प्रत्येक पहलु को प्रभावित करता है। सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध में मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं पर आर्थिक कारक के प्रभाव निम्नलिखित हैं:–

9.2.1 सामाजिक संस्थाओं पर आर्थिक कारकों का प्रभाव

आर्थिक कारक का सामाजिक संस्थाओं पर गहरा प्रभाव पडता है। भारत में परिवार, जाति व्यवस्था, जाति पंचायत, विवाह इत्यादि सामाजिक संस्थाओं पर आर्थिक विकास का अत्यधिक प्रभाव पड रहा हैं। आर्थिक विकास के फलस्वरूप उद्योग धन्धों, यातायात और संचार के साधनों, नौकरी के अवसरों तथा नगरों का विकास तीव्र गति से हुआ हैं। जिसके फलस्वरूप संयुक्त परिवार टूट रहे है। जिसका स्थान एकाकी परिवार ले रहे है। आर्थिक विकास से पूर्व अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार के द्वारा ही हो जाया करती थी। लेकिन अब इन आवश्यकताओं की पूर्ति विभिन्न आर्थिक संसाधनों द्वारा की जा रही है। उद्योगीकरण तथा नगरों के विकास ने युवक एवं युवतियों को

एक साथ काम करने के अवसर उपलब्ध कराए हैं। जिससे स्त्रियॉ भी घरों से निलकर पुरूषों के साथ नौकरी कर रही है। स्त्रियों में भी आत्मनिर्भरता बढ़ रही है। जिसके परिणामस्वरूप विलम्ब विवाह, प्रेम विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन दिन प्रतिदिन बढ रहा है। अब तो एक कदम आगे बढ़कर ''लिव इन रिलेशनशिप'' अर्थात बिना विवाह के युवक एवं युवतियाँ एक साथ रह रहे हैं। बड़े शहरों में यह प्रचलन तेजी से पनप रहा है।

आर्थिक कारकों के कारण जाति व्यवस्था एवं वर्ग व्यवस्था में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। उद्योगीकरण, नगरीकरण तथा संचार के साधनों में उन्नति तथा धन का अत्यधिक महत्व आदि ऐसे आर्थिक कारक हैं जिनके कारण जाति का परम्परागत स्वरूप बदल रहा हैं। उद्योगीकरण तथा नगरीकरण ने रोजगार के अवसरों में तीव्र वृद्धि की है तथा विभिन्न जातियों, समुदायों तथा धर्मों आदि के लोग को एक साथ काम करने का अवसर प्रदान किया है। जिससे जातिगत बन्धनों जैसे– छुआछुत, भेदभाव, उॅच नीच की भावना में कमी आ रही है। आर्थिक विकास के फलस्वरूप विकसित औद्योगिक एवं नगरीय समाजों में जाति व्यवस्था के स्थान पर वर्ग व्यवस्था का प्रचलन दिन–प्रतिदिन बढ़ रहा है।

आर्थिक विकास के चलते शहरीकरण या नगरीकरण की प्रक्रियाओं का विकास हुआ है। गाँव के लोग नगरों के ओर पलायन कर रहे हैं। जिसका प्रभाव गाँव की सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था पर भी पड रहा है। इसके साथ–साथ ग्रामीण परम्पराओं, मान्यताओं तथा मूल्यों का ह्रास हो रहा है। सामूहिकता की भावना क्षीण होती जा रही है। तथा व्यक्तिवादिता की भावना तेजी से विकसित हो रही है। महॅगाई के बढने तथा मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति अथवा व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए परिवारों का आकार छोटा होता जा रहा है। आर्थिक कारकों के कारण जाति पंचायतों का प्रभाव भी कम हुआ है। इस प्रकार हम देखते है कि आर्थिक कारकों अथवा परिस्थितियों का सामाजिक संस्थाओं पर गहरा प्रभाव पडा है।

9.2.2 धार्मिक जीवन पर आर्थिक कारकों का प्रभाव

आर्थिक कारकों अथवा परिस्थितियों ने धार्मिक आस्थाओं, विश्वास एवं मूल्यों को गहनता से प्रभावित किया है। आर्थिक विकास के कारण बदलती हुई परिस्थितियों के कारण धार्मिक आस्थाओं विश्वास एवं मूल्यों का स्थान धन ने ले लिया है। विभिन्न कल–कारखानों एवं कार्यालयों में विभिन्न धर्मों के लोग एक साथ काम कर रहे हैं। एक

साथ रह रहे हैं। और विभिन्न होटलों अथवा भोजनालयों में एक साथ भोजन करते हैं। भौतिकद के बढते महत्व के कारण धार्मिक अनुष्ठानों, त्यौहारों एवं आयोजनों में व्यक्ति की सहभागिता कम हुई है। व्यापार एवं वाणिज्य में विभिन्न धर्मों के लागों को एक–दूसरे पर निर्भर रहना पडता है। जिससे एक दूसरे के धर्म को समझने का अवसर मिलता है। तथा धार्मिक सहिष्णुता बढती है। धन के बढते प्रभाव के कारण प्राकृतिक शक्तियों में श्रद्वा तथा उनका भय दोनो कम हो गये हैं। लोग स्वर्ग और नरक की व्याख्या भी धार्मिक आधार के स्थान पर आर्थिक स्तर से करते है। जिसके पास धन है, वह स्वर्गीय आन्नद प्राप्त कर रहे हैं। और जो धन के अभाव में हैं, वह नरक भोग रहे हैं। पारलौकिक जीवन में लोगों का विश्वास कम हो रहा है। इस प्रकार लौकिक सुख की प्राप्ति व्यक्ति का लक्ष्य रह गया है। जहाँ परम्परागत एवं ग्रामीण समाज में धार्मिक आस्थाओं, विश्वास एवं मूल्यों की प्रधानता है। वही आर्थिक विकास के फलस्वरूप विकसित औद्योगिक एवं नगरीय समाजों में उनका स्थान भौतिक सुख सुविधाओं ने ले लिया है। आर्थिक विकास के साथ साथ भौतिकतावादी प्रव्त्ति सुदृढ होती जा रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्थिक कारकों ने धार्मिक व्यवस्था को शिथिल कर भौतिक सुख–सुविधाओं को बढावा दिया है।

9.2.3. राजनीतिक व्यवस्था पर आर्थिक कारकों का प्रभाव

आर्थिक विकास ने जिन आर्थिक संस्थाओं एवं शक्तियों को जन्म दिया है, वे इतने महत्वपूर्ण एवं प्रभावी हैं कि वे राजनीतिक व्यवस्था को गहनता से प्रभावित कर रही हैं। राजनीतिक गतिविधियों को चलाने के लिए धन की आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति जनता से एकत्रित किए गये चन्दे तथा आर्थिक संगठनों एवं पूँजीपतियों द्वारा उपलब्ध कराये गये धन से होती है। आर्थिक संगठनों एवं पूँजीपतियों का अपना स्वार्थ होता है। जिसका प्रयोग वे राजनीतिक इकाइयों को प्रभावित कर अपने लाभ की नीतियाँ बनवाने के लिए दबाव देते हैं। चार्ल्स बीयर्ड का कथन है कि संविधान एक आर्थिक मसविदा है। यह देखने में आया है कि जिस देश में बडे–बडे पूँजीपति होते हैं, वहाँ उनका राज्य पर अत्यधिक प्रभाव होता है। उदहाणार्थ– भारत में अम्बानी, टाटा, बिरला आदि। मार्क्स वर्ग संघर्ष को राजनीतिक संघर्ष बताता है तथा राज्य की उत्पत्ति को आर्थिक कारक मानता है। मार्क्स कहता है कि उत्पादन के प्राकृतिक अथवा भौतिक साधनों पर स्वामित्व पाने के लिए, दो वर्गों के सघर्ष को समाप्त करके राज्य की शक्ति का विकास हुआ है। उनका मानना है कि आर्थिक कारक समाप्त होते ही राज्य स्वयं समाप्त हो जाएगा। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि आर्थिक ढाँचा ही समाज का वास्तविक आधार है।

अन्य सभी सामाजिक संरचनाएँ इस पर आधारित है। आर्थिक संगठनों के प्रभाव से जितनी भी राजनीजिक नीतियाँ एवं कार्यक्रम बनाये जाते हैं उनका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष लाभ आर्थिक संगठनों को ही मिलता है। और देश की जनसंख्या का एक बडा भाग, जिन्हें इन नीतियों एवं कार्यक्रमों की अत्यधिक आवश्यकता है, उससे वंचित रह जाता है। राजनीति में धन का प्रभाव दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। सत्ता हथियाने के लालच में सांसदो की खरीद फरोक्त इसका जीवन्त उदहारण है। राजनीति में धनाढ्य लागों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। न केवल राष्ट्रीय स्तर पर अपितु ग्राम पंचायतों के चुनावों में भी धन के बल पर राजनीतिक परिस्तिथियों को अपने पक्ष में किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्थिक कारक किस प्रकार राजनीतिक व्यवस्था को गहनता से प्रभावित कर रहे हैं।

9.2.4. जनसंख्यात्मक पहलुओं पर आर्थिक कारकों का प्रभाव

आर्थिक कारक जनसंख्यात्मक पहलुओं को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जनसंख्या के शारीरिक व मानसिक लक्षणों का आर्थिक कारकों एवं परिस्तिथियों से गहरा सम्बन्ध है। सामान्यतः धनी वर्ग के लोगों का स्वास्थ्य निर्धन वर्ग के व्यक्तियों से बेहतर होता है। उन्नत आर्थिक स्तर विभिन्न आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होता है। जो जनसंख्यात्मक ढाँचे को प्रभावित करता है। आर्थिक परिस्तिथियाँ जन्म दर एवं मृत्यु दर दोनों को प्रभावित करती है। निम्न आर्थिक वर्ग के लोग जनसंख्या वृद्धि में अपेक्षाकृत अधिक योगदान देते है। जिसका जनसंख्या वृद्धि पर सीधा प्रभाव पडता है, जो विभिन्न सामाजिक समस्याओं को जन्म देता है।

9.2.5. संस्कृति पर आर्थिक कारकों का प्रभाव

संस्कृति मानव जीवन का अभिन्न अंग है। किसी भी समाज की संस्कृति के स्वरूप निर्धारण में वहाँ की आर्थिक परिस्तिथियाँ एवं कारक महत्वपूर्ण रूप में उत्तरदायी होते हैं। संस्कृति से जुडे विभिन्न पहलुओं जैसे– खान–पान, रहन–सहन, शिष्टाचार के तौर तरीके, सोचने विचारने का ढ़ग, आदत एवं व्यवहार वहाँ की आर्थिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसी अवधारणा के आधार पर वेबलन एक वर्ग को दूसरे वर्ग से अलग करता है। आर्थिक परिस्थितियाँ ही सामाजिक स्तर का निर्धारण करती है। सामाजिक व्यवस्था से जुडे विभिन्न कार्यक्रमों, आयोजनों तथा त्यौहारों को मनाने के तौर–तरीके आदि भी आर्थिक स्थिति पर निर्भर करते हैं। समाज में प्रचलित दहेज एवं वधू–मुल्य

जैसी प्रथाएँ आर्थिक महत्वकांक्षा का ही परिणाम है। संस्कृति का कोई भी पक्ष चाहे वह भौतिक हो अथवा अभौतिक, ऐसा नहीं है जो आर्थिक कारकों से प्रभावित न होता हो।

9.2.6. सामाजिक विघटन एवं आर्थिक कारक

आर्थिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न विभिन्न संस्थाएँ, शक्तियाँ एवं प्रक्रियाएँ समाज में विघटन के लिए महत्वपूर्ण रूप से उत्तरदायी है। जैसै– नगरीकरण एवं उद्योगीकरण की प्रक्रियाओं ने कई सामाजिक समस्याओं जैसे– मलिन बस्तियों का विकास, निवास स्थान की कमी, अपराध, वर्ग संघर्ष, आदि को जन्म दिया है। बढ़ती हुई आर्थिक महत्वकांक्षा के कारण व्यक्तिगत लाभ को बढावा मिला है। तथा सामूहिकता की भावना का ह्रास हुआ है। भारतीय समाज की विशेषता एवं पहचान परम्परागत संयुक्त परिवार, विश्वास एवं मूल्यों का विघटन हो रहा है। आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति न कर पाने की दशा में व्यक्ति के मानसिक रोग एवं चिन्ता मे वृद्धि हुई है। आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु माता–पिता दोनों के कार्यरत होने से बच्चों के समाजीकरण पर कुप्रभाव पडा है। बच्चों की उचित देख–रेख न होने के कारण बाल अपराध की घटनाओं की आवृत्ति में वृद्धि हुई है। इसी प्रकार भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, वेश्यावृत्ति, जालसाजी, चौरी, डकैती, अपहरण आदि भी आर्थिक कारणों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुडे हुए हैं।

9.3 सामाजिक परिवर्तन एवं सांस्कृतिक कारक

सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न कारकों जैसे आर्थिक, प्रौद्योगीकीय, जनसंख्यात्मक, मनोवैज्ञानिक, जैविक, भौतिक अथवा भौगौलिक आदि के साथ–साथ सांस्कृतिक कारक भी परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। परिवर्तन के सांस्कृतिक कारक को समझने के लिए सर्वप्रथम हमें संस्कृति की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझना होगा। संस्कृति शब्द का प्रयोग विभिन्न समाज विज्ञान में अलग–अलग अर्थों में किया गया है। समाजषस्त्रीय परिप्रेक्ष्य में संस्कृति के अर्थ को समझने की आवष्यकता है। जिसे हम विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं का विष्लेषण करके समझ सकते हैं।

मैकाइवर एवं पेज (Machiver and Page) के अनुसार– "संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन और आनन्द में पाये जाने वाले तत्व, रहन–सहन और विचार के ढ़ग से हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति हैं।"

टायलर (Tylor) के अनुसार– "संस्कृति वह जटिल सम्पूर्ण व्यवस्था है जिसमें समस्त ज्ञान, विष्वास, कला, नैतिकता के सिद्धांत, विधि–विधान, प्रथाएँ एवं अन्य समस्त योजनाएँ सम्मिलित हैं जिन्हें व्यक्ति समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।"

मैलिनोव्स्की (Malinowski) के अनुसार– "संस्कृति प्राप्त आवष्यकताओं की एक व्यवस्था और उद्देष्यात्मक क्रियाओं की संगठित व्यवस्था है।"

बीरस्टीड (Biersstedt) के अनुसार– "संस्कृति वह सम्पूर्ण जटिलता है जिसमें वे सभी वस्तुएँ सम्मिलित है जिन पर हम विचार करते हैं, कार्य करते हैं और समाज का सदस्य होने के नाते अपने पास रखते हैं।"

रैडफील्ड **(Redfield)** के अनुसार – "संस्कृति ऐसे परम्परागत विचारों के संगठित समूह को कहते हैं जो कला एवं कलाकृतियों में प्रतिबिम्बित होते हैं तथा जो परम्परा द्वारा चलते रहते हैं। और किसी मानव समुह की विषेषता को चित्रित करते हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृति का अभिप्राय मानव जाति के रहन–सहन, आचार–विचार, भावनाएँ, विष्वास एवं विभिन्न प्रकार की उपलब्धियों के समग्र रूप से हैं। संस्कृति मानव जीवन से जुड़े हुए विभिन्न पहलूओं को सीखने की एक प्रक्रिया है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है।

संस्कृति के दो विषिष्ट पहलू है जो आपस में परस्पर घनिष्ठता से सम्बन्धित होते हैं। ऑगर्बन ने इन्हें भौतिक व अभौतिक संस्कृति के नाम से सम्बोधित किया है। भौतिक संस्कृति के अर्न्तगत समाज की भौतिक उपलब्धियों को रखा जा सकता है। ये मूर्त होती है, इन्हें हम स्पर्ष कर सकते हैं एवं देख सकते हैं। ये मनुष्यों द्वारा निर्मित होती हैं, जैसे– वायुयान, घडी, वस्त्र, भवन, यातायात के साधन, इत्यादि। मनुष्य ने अपनी आवष्यकताओं की पूर्ति हेतु अनेक औजारों, उत्पादनों तथा प्रौद्योगिकी का आविष्कार किया है। ये सभी उपलब्धियाँ भौतिक संस्कृति की श्रेणी में आती है। अभौतिक संस्कृति से तात्पर्य प्रथाओं, लोक–रीतियों, धर्म, समाजिक मूल्यों, कला, साहित्य, विष्वास, दार्षनिक विचारधाराओं तथा आदर्ष विज्ञान इत्यादि से हैं। अभौतिक संस्कृति अमूर्त तथा व्यक्तिनिष्ठ होती है। इसे हम न तो देख सकते हैं और न ही स्पर्ष कर सकते हैं। अभौतिक संस्कृति की अपेक्षा भौतिक संस्कृति में परिवर्तन अधिक तीव्र गति से होते हैं।

संस्कृति के विभिन्न तत्व अथवा आयाम सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को गहनता से प्रभावित करते हैं। संस्कृति के विभिन्न तत्वों जैसे विष्वास, संस्थाएँ, मूल्य, प्रथाएँ तथा

समाजिक सम्बन्ध आदि के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होता हैं। संस्कृति के विभिन्न पक्ष जहाँ एक और हमें व्यवहार करना सिखते हैं अथवा समाजीकरण कर हमें समाज से अनुकूलन करने योग्य बनाते हैं वहीं दूसरी और हमारे व्यवहारों तथा सामाजिक क्रियाओं आदि पर नियत्रण भी रखते हैं। जैसे हमें कैसा व्यवहार करना चाहिए, हमारा रहन सहन कैसा होना चाहिए इत्यादि। सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में सांस्कृतिक कारको की भूमिका को हम कुछ प्रमुख आधारों जैसे परिवार, विवाह, धर्म तथा विज्ञान इत्यादि के आधार पर विस्तृत से चर्चा करेंगे।

9.3.1. सामाजिक संस्थाएँ एवं सामाजिक परिवर्तन

परिवार एवं विवाह संस्कृति के महत्वपूर्ण तत्व हैं। जो सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। विवाह समाज की एक प्रमुख संस्था है, जो स्त्री–पुरुष के सम्बंधों को नियंत्रित करने के साथ–साथ वैधता प्रदान करती हैं। विवाह के नियम ही इस बात का निर्धारण करते है कि समाज में स्त्री–पुरुष के सम्बंध और उनका स्वरूप कैसा होगा। विवाह परिवार के निर्माण में सहयोग करता है। परिवार बच्चों का समाजीकरण कर उन्हें सामाजिकता प्रदान करता है। यदि इन महत्वपूर्ण संस्थाओं के नियम बदलते हैं तो इनका सीधा प्रभाव सामाजिक सम्बंधों पर होगा तथा विवाह एवं परिवार का स्वरूप, संरचना तथा इनकी भूमिका को भी प्रभावित करेगा।

9.3.2. आर्थिक परिस्थितियाँ एवं सामाजिक परिवर्तन

संस्कृति का आर्थिक पक्ष भी सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण कारक है। मार्क्स संस्कृति के अर्थिक पक्ष को सामाजिक परिवर्तन का मूलभूत आधार मानता है। वह सामाजिक संरचना को दो भागों में बांटकर देखते हैं– अधारभूत संरचना तथा अधिसंरचना अथवा आश्रित संरचना। समस्त उत्पादन प्रणाली को उन्होंने आधारभूत संरचना माना है और समाज के अन्य अंगों जैसे– धर्म परिवार, राज्य, आदर्ष, दर्षन इत्यादि को आश्रित संरचना कहा है। मार्क्स की मान्यता है कि उत्पादन प्रणाली ही समस्त सामाजिक व्यवस्था की आधारषिला है। अतः यदि आर्थिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन आता है तो उससे समाज की अधिसंरचना में भी परिवर्तन आता है। उत्पादन के साधनों के आधार पर मार्क्स समाज को दो वर्गो में बांटकर देखते हैं तथा यह प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं कि सामाजिक परिवर्तन वर्ग संघर्ष द्वारा ही संभव होता है। इसी अर्थ में उन्होंने अपने साम्यवादी घोषणापत्र में लिखा है "अभी तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास रहा है"। मार्क्स का मानना है कि जब तक समाज में वर्ग विभाजन है, समाज में षोषण की प्रक्रिया चलती रहेगी। क्योंकि

यह विभाजन षोषण पर आधारित है। उसी तरह जब तक समाज में षोषण है संघर्ष की प्रक्रिया चलती रहेगी। इसी वर्ग संघर्ष की प्रक्रिया से समाज में परिवर्तन होता है।

9.3.3. धर्म एवं सामाजिक परिवर्तन

कुछ विचारकों ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन से न केवल समाज एवं संस्कृति में परिवर्तन होता है अपितु आर्थिक व्यवस्था में भी परिवर्तन होता है। इन विचारकों में मैक्स वैबर का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अपनी पुस्तक **The Protestant Ethics and the Spirit of Capitalism (1959)** में यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि पाष्चात्य देषों में पूँजीवादी अर्थ व्यवस्था के विकास में प्रोटेस्टेंट आचार संहिता की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मैक्स वेबर ने विष्व के छः बडे धर्मों हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम, कन्फूषियस तथा यहूदी का विस्तृत अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि समाजिक धटनाओं, सामाजिक संगठन एवं आर्थिक व्यवस्था के निर्धारण में धर्म की भूमिका सबसे अधिक रही है। भारत के संदर्भ में पूँजीवाद के विकसित न होने में धर्म का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। क्योंकि हिन्दू धर्म की प्रवृति मानवतावादी रही है जो परम्पराओं पर आधारित है। लेकिन पाष्चात्य सभ्यता के सम्पर्क में आने तथा प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने धार्मिक मान्यताओं को षिथिल कर दिया है। जिसके फलस्वरुप भारत में भी पूँजीवाद का विकास होता दिख रहा है। धार्मिक मूल्य एवं मान्यताएं अन्य प्रकार से भी सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देती हैं। भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के मध्य सम्पर्क तथा संघर्ष दोनों ही समाजिक परिवर्तन लाने में सहायक होते हैं। यदि हम भारतीय इतिहास को देखें तो पता चलता है कि विदेषी आक्रमणकारियों एवं षासकों के धर्मों का समाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके साथ–साथ विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों जैसे बौद्ध, जैन, सिक्ख आदि के उदय होने से न केवल भारतीय समाज को अपितु विष्व के समाजों को गहनता से प्रभावित किया है।

9.3.4. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक परिवर्तन

भौतिक संस्कृति में जो भी परिवर्तन आया है उसके लिए विज्ञान की उन्नति प्रमुखता से उत्तरदायी है। क्योंकि विज्ञान भी संस्कृति का महत्वपूर्ण तत्व है। इसलिए हम कह सकते है कि संस्कृति के विकास ने मानव जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन लाया है। विज्ञान के विकास ने मानव को तार्किक और अन्वेषी बना दिया है, जिससे हमारे धार्मिक विश्वासों, विचारों एवं जीवन के उद्देश्यों में परिवर्तन आया हैं और इस परिवर्तन ने सम्पूर्ण सामाजिक संरचना, मूल्यों एवं प्रतिमानों आदि को प्रभावित किया है। ज्ञान और विज्ञान की प्रगति ने सामाजिक परिवर्तनों को गति प्रदान की है। परिवर्तन के सांस्कृतिक कारक के संदर्भ में मैक्स वेबर का यह विचार उल्लेखनीय है कि विज्ञान के

स्वप्रगति परीक्षण

1. जनसंख्यात्मक पहलुओं पर आर्थिक कारकों के प्रभाव विषय पर एक टिप्पणी लिखें।
2. मेकाइबर एवं पेज ने संस्कृति के बारे में क्या कहा है ?
3. सामाजिक संस्थाओं एवं सामाजिक परिवर्तन पर एक लघु टिप्पणी लिखें।

NOTES

विकास ने प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में मूलभूत परिवर्तन लाया है। जिसके माध्यम से सामाजिक, आर्थिक एवं नौकरशाही की व्यवस्था में गहन परिवर्तन आया है।

9.3.4. सांस्कृतिक–प्रसार एवं पर–संस्कृतिग्रहण तथा सामाजिक परिवर्तन

परिवर्तन के सांस्कृतिक कारकों के संदर्भ में मानवशास्त्रियों की यह मान्यता है कि सांस्कृतिक–प्रसार एवं पर–संस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया से समाज में परिवर्तन आता है। इस संदर्भ में एम0 एन0 श्रीनिवास की पश्चिमीकरण की अवधारणा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारत में अंग्रेजी शासन के कारण हमारे वैचारिक दृष्टिकोण, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था, खान–पान, रहन–सहन, जाति व्यवस्था, शिक्षण पद्धति तथा भाषा इत्यादि में अत्याधिक परिवर्तन आए हैं। मानवशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में इन प्रक्रियाओं को हम सांस्कृतिक–प्रसार एवं संस्कृति संक्रमण की प्रक्रिया मानते हैं। यातायात, संचार के माध्यमों एवं शिक्षा के विकास से विश्व स्तर पर संस्कृति संक्रमण की प्रक्रिया तीव्र हुई है। प्रौद्योगिकी के विकास ने सामाजिक परिवर्तन के सांस्कृतिक कारकों के लिए एक उत्प्रेरक अभिकर्ता के रूप में कार्य किया है। यूरोप में बोर्दियो और द्रिदा जैसे विचारकों ने भाषा को सामाजिक परिवर्तन का सशक्त कारक माना है। ऐन्थनी गिडेन्स सांसकृतिक कारकों को एक बृहत् रूप में देखते हैं। इन कारकों में नेतृत्व भी एक महत्वपूर्ण कारक है। विश्व इतिहास में व्यक्तिगत रूप से विभिन्न धार्मिक, राजनीतिक और सैन्य नेताओं ने सामाजिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है।

9.4 सारांश

समाजिक परिर्वन एक सार्वभौमिक एवं निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारक मानव जीवन के प्रत्येक पहलु जैसे सामाजिक संस्थाओं, मूल्यों, प्रतिमानों, धार्मिक विचारों एवं मान्यताओं तथा राजनीतिक व्यवस्था इत्यादि को गहनता से प्रभावित करते हैं। सांस्कृतिक–प्रसार एवं पर–संस्कृतिग्रहण की प्रक्रिया जैसे पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण आदि ने भारतीय परम्परागत संस्थाओं, मूल्यों, प्रतिमानों, धार्मिक विचारों एवं मान्यताओं इत्यादि को शिथिल कर दिया हैं। आर्थिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न विभिन्न संस्थाएँ, शक्तियाँ एवं प्रक्रियाएँ समाज में विघटन के लिए महत्वपूर्ण रूप से उत्तरदायी है। जैसै– नगरीकरण एवं औद्यौगिकरण की प्रक्रियाओं ने कई सामाजिक समस्याओं जैसे– मलिन बस्तियों का विकास, निवास स्थान की कमी, अपराध, वर्ग संघर्ष, आदि को जन्म दिया है। अतः हम समाजशास्त्रियों अथवा समाज के विद्यार्थियों के रूप में सामाजिक परिवर्तन, इसके स्रोतों एवं कारकों का गहन अध्ययन कर समझने की आवश्यकता है। जिससे हम परिवर्तन से उत्पन्न समाजिक समस्याओं को समझ कर उनका समुचित समाधान प्रस्तुत कर सकें।

9.5 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1. आर्थिक कारक जनसंख्यात्मक पहलुओं को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जनसंख्या के शारीरिक व मानसिक लक्षणों का आर्थिक कारकों एवं परिस्तिथियों से गहरा सम्बन्ध है। सामान्यतः धनी वर्ग के लोगों का स्वास्थ्य निर्धन वर्ग के व्यक्तियों से बेहतर होता है। उन्नत आर्थिक स्तर विभिन्न आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होता है। जो जनसंख्यात्मक ढाँचे को प्रभावित करता है। आर्थिक परिस्तिथियाँ जन्म दर एवं मृत्यु दर दोनों को प्रभावित करती है। निम्न आर्थिक वर्ग के लोग जनसंख्या वृद्धि में अपेक्षाकृत अधिक योगदान देते है। जिसका जनसंख्या वृद्धि पर सीधा प्रभाव पडता है, जो विभिन्न सामाजिक समस्याओं को जन्म देता है।

2. **मैकाइवर एवं पेज (Machiver and Page)** के अनुसार– "संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन और आनन्द में पाये जाने वाले तत्व, रहन–सहन और विचार के ढ़ग से हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति हैं।"

3. परिवार एवं विवाह संस्कृति के महत्वपूर्ण तत्व हैं। जो सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। विवाह समाज की एक प्रमुख संस्था है, जो स्त्री–पुरुष के सम्बंधों को नियंत्रित करने के साथ–साथ वैधता प्रदान करती हैं। विवाह के नियम ही इस बात का निर्धारण करते है कि समाज में स्त्री–पुरुष के सम्बंध और उनका स्वरूप कैसा होगा। विवाह परिवार के निर्माण में सहयोग करता है। परिवार बच्चों का समाजीकरण कर उन्हें सामाजिकता प्रदान करता है। यदि इन महत्वपूर्ण संस्थाओं के नियम बदलते हैं तो इनका सीधा प्रभाव सामाजिक सम्बंधों पर होगा तथा विवाह एवं परिवार का स्वरूप, संरचना तथा इनकी भूमिका को भी प्रभावित करेगा।

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक कारक से क्या अभिप्राय है? व्याख्या कीजिए।
2. सांस्कृतिक कारकों की सामाजिक परिवर्तन में भूमिका का उल्लेख कीजिए।
3. सामाजिक परिवर्तन के आर्थिक कारक क्या है। व्याख्या कीजिए।
4. आर्थिक कारकों का सामाजिक संस्थओं पर प्रभाव की समीक्षा कीजिए।
5. आर्थिक कारकों का राजनीतिक व्यवस्था पर पडने वाले प्रभाव का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिएः–

6.1 आधारभूत संरचना तथा अधिसंरचना

6.2 आर्थिक विकास एवं सामाजिक विघटन

6.3 आर्थिक विकास एवं सामाजिक संस्थाएँ

6.4 धर्म एवं सामाजिक परिवर्तन

9.7 संदर्भ गंर्थ

- जे0 पी0 सिंह (2004) : **समाजसास्त्र : अवधारणाएँ एवं सिद्धांत**, प्रेंटिस–हाल आफ इण्ड़िया प्रा0 लि0, नई दिल्ली।
- जे0 पी0 सिंह (1999) : **सामाजिक परिवर्तनः स्वरूप एवं सिद्धांत**, प्रेंटिस–हाल आफ इण्ड़िया प्रा0 लि0, नई दिल्ली।
- एस0 एल0 दोषी एवं पी0 सी0 जैन (2009) : **समाजसास्त्र : नई दिशाएँ**, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
- नरेन्द्र कुमार सिंघी एवं वसुधाकर गोस्वामी (2010) : **समाजसास्त्र विवेचन**, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।
- विद्याभूषण एवं डी0 आर0 सचदेव (2010) : **समाजसास्त्र के सिद्धांत**, किताब महल, नई दिल्ली।
- हरिकृष्ण रावत (2002) : समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
- K.L. Sharma (2007): **India Social Structure and Change**, Rawat Publications, New Delhi.
- T.B. Bottomore (1970): **Sociology: A Guide to Problem and Litrature**, S. Chand and Company, New Delhi.
- M.N. Srinivas (2009): **Social Change in Modern India**, Orient Blackswan Private Limited, New Delhi.

इकाई – 10

पश्चिमीकरण

(Westernization)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 पश्चिमीकरण

10.2.1 पश्चिमीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

10.2.2 पश्चिमीकरण की विशेषताएं

10.3 पश्चिमीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन

10.4 ग्रामीण जीवन पर पश्चिमीकरण का प्रभाव

10.5 पश्चिमीकरण– एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण

10.6 सारांश

10.7 पारिभाषिक शब्दावली

10.8 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

10.9 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

10.12 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके द्वारा संभव होगा–

- पश्चिमीकरण की अवधारणा को समझना,
- पश्चिमीकरण के अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट करना,

- पश्चिमीकरण के आधार ज्ञान की सामाजिकता को स्पष्ट करना,
- समाज में पश्चिमीकरण की विशेषताओं को बताना,
- समाज में पश्चिमीकरण को समाजशास्त्रियों के विचारों से समझना,
- पश्चिमीकरण द्धारा सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक परिवर्तनों को बताना,
- पश्चिमीकरण के जरिए शिक्षा व स्त्रियों में नई तकनीकि व जागरूकता–सशक्तिकरण को समझना,
- साहित्य एवं ललित कला क्षेत्र में पश्विमीकरण की सार्थकता को समझना,
- पश्चिमीकरण द्धारा ग्रामीण समाज पर इसके प्रभाव की व्याख्या करना व आलोचनात्मक मूल्याकनात्मक करना आदि,

10.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के खण्ड का उद्देश्य पश्चिमीकरण की अवधारणा को भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में समझना है। जिसमें पश्चिमीकरण की अवधारणा का अर्थ एवं परिभाषा तथा विशेषताओं आदि का उल्लेख किया गया है। जिसमे विभिन्न विद्धानों के नजरिये को बताया गया है। जिसमें बताया गया है कि श्रीनिवास ने कहा कि जब हम किसी सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन के स्रोत्र को ज्ञात करना चाहते है तो परिवर्तन के स्रोत्र आन्तरिक व वाह्य अर्थात समाज में दोनो होते है। जिसमें पश्चिमीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन के वाह्य कारक के रूप में स्पष्ट करने में सहायक है। वाह्य कारक के रूप में श्रीनिवास आधुनिक समाज में पश्चिमी संस्कृति तथा ब्रिटिश शासन व्यवस्था को सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख स्रोत्र मानते है। पश्चिमीकरण की अवधारणा उन परिवर्तनों को परिचित कराती है जो कि पश्चिमी समाज के अर्थात ग्रेट ब्रिटेन के सम्पर्क के परिणामस्वरूप सामाजिक–सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में हुये है। भारत में उन्नीसवीं व बीसवीं शताब्दीं में जो परिवर्तन अंग्रेजी शासनकाल के दौरान हुये है, श्रीनिवास उनकी चर्चा पश्चिमीकरण के लिए करते है। पश्चिमीकरण के साथ ही भारतीय समाज में इसके द्धारा होने वाले सामाजिक परिवर्तनों की चर्चा की है, कि किस प्रकार समाज में पश्चिम संस्कृति व तकनीकि का प्रभाव पडा। इसके बाद प्रस्तुत इकाई में ग्रामीण समाजों में इसके प्रभाव की चर्चा की है। जिससे आप भारतीय समाज में होने वाले सामाजिक परिवर्तनों व इसके प्रभाव को भली भांति परिचित हो सके। आइए अब हम आगे इसकी विस्तृत व्याख्या करके पश्चिमीकरण को समझने का प्रयास करते है।

10.2 पश्चिमीकरण

10.2.1 पश्चिमीकरण का अर्थ एवं परिभाषा–

श्रीनिवास (1991) सर्वप्रथम हम पश्चिमीकरण का अर्थ व परिभाषा को जानने का प्रयास करते है। पश्चिमीकरण की अवधारणा का प्रयोग **डॉ0 एम0एन0श्रीनिवास** ने भारतीय समाज में परिवर्तन की अवधारणाओं का प्रयोग करने हेतू किया है। पश्चिमीकरण की अवधारणा उन परिवर्तनों को परिचित कराती है जो कि पश्चिमी समाज के अर्थात ग्रेट ब्रिटेन के सम्पर्क के परिणामस्वरूप हुये है। भारत में उन्नीसवीं व बीसवीं शताब्दीं में जो परिवर्तन अंग्रेजी शासनकाल के दौरान हुये है, श्रीनिवास उनकी चर्चा पश्चिमीकरण के लिए करते है। पश्चिमीकरण की अवधारणा के अन्तर्गत भारत में होने वाले वे सभी सांस्कृतिक परिवर्तन और संस्थात्मक नवीनतायें आ जाती है, जो इस देश में पश्चिमी देशों के साथ राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संपर्क के कारण आयी है। पश्चिमीकरण को विभिन्न विद्धानों ने निम्नानुसार परिभाषित किया है–

लिचं के अनुसार, "पश्चिमीकरण में पश्चिमी पोशाक, खान–पान, तौर–तरीके, शिक्षा, विधियों और खेल मूल्यों आदि को सम्मिलित किया जाता है।"

श्रीनिवास के अनुसार, "पश्चिमीकरण शब्द का प्रयोग भारतीय समाज व संस्कृति में उन परिवर्तनों के लिए किया है जो एक सौ पचास वर्षो से अधिक समय के अंग्रेजी राज के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए है, और यह शब्द प्रौधौगिकी, संस्थाओं, वैचारिक मूल्यों आदि विभिन्न स्तरों पर होने वाले परिवर्तनों का समावेश करता है।"

प्रो0 योगेन्द्र सिंह (1988) ने लिखा है कि , "मानवतावाद तथा बुद्धिवाद पर जोर पश्चिमीकरण का एक अंग है जिसने भारत में संस्थागत या सामाजिक सुधारों का सिलसिला प्रारम्भ कर दिया है। वैज्ञानिक, औधौगिक एवं शिक्षण संस्थाओं की स्थापना, राष्ट्रीयता का उदय, देश में नवीन राजनीतिक संस्कृति और नेतृत्व सबके सब पश्चिमीकरण के उपोत्पाद है।"

अतः उपयुर्क्तनुसार परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पश्चिमीकरण ने भारत में मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाने तथा तार्किक दृष्टिकोण से विचार करने के लिए लोगो को प्रेरित किया है। पश्चिमीकरण का तात्पर्य केवल पाश्चात्य रीति–रीवाजों को अपनाना मात्र ही नही है। यह एक जटिल एवं सर्वव्यापक अवधारणा है, जिसमें अनेक मूल्यों तथा विशेषताओं का समावेश होता है। इसके अन्तर्गत विज्ञान तकनीकि प्रयोग सिद्ध पद्धति आदि आते है। पश्चिमीकरण ने लौकिक और समतावादी से विचार करने में सहायता प्रदान की है। इसप्रकार, पश्चिमीकरण के अन्तर्गत भारत में होने वाले वे सभी

सांस्कृतिक परिवर्तन और संस्थात्मक नवीनतायें आ जाती है, जो इस देश में पश्चिमी देशों के साथ राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संपर्क के कारण आयी है। अतः आप यहा पश्चिमीकरण के अर्थ व परिभाषा को भलीभांति जान गये होगें।

10.2.2 पश्चिमीकरण की विशेषताएं–

विभिन्न विद्धानों द्धारा परिभाषित पश्चिमीकरण की निम्न विशेषतायें समाज में पाई जाती है, जो कि निम्न है–

- नैतिक रूप से तटस्थ
- एक व्यापक अवधारणा
- एक वैज्ञानिक अवधारणा
- अनेक प्रारूप
- जटिल तथा बहुस्तरीय प्रकिया
- चेतन और अचेतन प्रकिया
- मूल्यों का समावेश

उपर्युक्त का उल्लेख निम्न प्रकार से है,

- **पश्चिमीकरण नैतिक रूप से तटस्थ अवधारणा है,** क्योकि यह तो केवल परिवर्तन को बतलाती है। अर्थात यह धारणा यह नही बताती कि पश्चिम के प्रभाव के कारण भारत में होने वाले परिवर्तन अच्छे है या बुरे।
- पश्चिमीकरण एक **व्यापक अवधारणा** है जिसमें भौतिक व अभौतिक संस्कृति से संबधिन्त सभी परिवर्तन आ जाते है, जो कि विभिन्न रूपों में समाज में घटित होते है, जैसे– प्रौघौगिकी, धर्म, परिवार व जाति आदि में होने वाले परिवर्तन।
- पश्चिमीकरण कि अवधारणा एक **वैज्ञानिक अवधारणा** है जिसमें परिवर्तनों का अध्ययन तार्किक रूपो से किया जाता है और उन परिवर्तनों का अध्ययन व विश्लेषण किया जाता है। जिनकी व्याख्या श्रीनिवास ने अपने अध्ययनों में की है। जो कि अनेक प्रारूपों मे दिखाई देती है।
- पश्चिमीकरण एक **जटिल प्रकिया** है जिसका प्रभाव सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि स्तरों पर देखा जा सकता है। जो कि विभिन्न क्षेत्रों में

कम या ज्यादा रूपों में दिखाई देता है, जैसे कि कुछ लोगों ने पश्चिम खान को अपनाया जबकि कुछ ने आदर्श मूल्यों को। अर्थात भारत में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया सभी क्षेत्रों में समान रूप से नही पायी जाती है। जिस संदर्भ में श्रीनिवास कहते है कि पश्चिमीकरण की प्रक्रिया मे मैंसूर के ब्राह्मणों आगे दिखाई देते है। पश्चिमीकरण का प्रभाव भारतीय समाज में **चेतन व अचेतन** रूपों अर्थात दोनों में ही देखा जा सकता है। अतः पश्चिमीकरण एक जटिल प्रक्रिया तथा चेतन व अचेतन दोनों है।

- पश्चिमीकरण में अनेक ऐसे **मूल्यों का समावेश** होता है जिनकी प्रकृति भारत के परम्परागत मूल्यों से भिन्न है, जैसे– समानता, स्वतन्त्रता, व्यक्तिवादिता, भौतिक सुविधा, तार्किकता व मानवतावाद ऐसे मूल्य है जिन्हे पश्चिम संस्कृति में अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है। अतः पराम्रागत मूल्यों की जगह पश्चिमी मूल्यों को अपनाना ही पश्चिमीकरण की प्रक्रिया है। अतः आप यहा उपयुर्क्त वर्णित विशेषताओं से स्पष्ट हो गये होंगे कि पश्चिमीकरण की प्रक्रिया जटिल है और वह आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से अलग है, क्योंकि पश्चिमीकरण का संबध पश्चिमी संस्कृति के मूल्यों को ग्रहण करने की प्रक्रिया से है, जबकि आधुनिकीकरण का मुख्य संबध प्रौद्यौगिकी, नगरीयता तथा गतिशीलता में वृद्धि होने से है। पश्चिमीकरण चेतन व अचेतन दोनो रूप से होता है, जबकि आधुनिकीकरण चेतन के माध्यम से होता है। पश्चिमीकरण का आर्दश केवल पश्चिमी देश होता है, जबकि आधुनिकीकरण का आधार संसार का कोई भी विकसित देश हो सकता है। अतः पश्चिमीकरण में अनेक नये मूल्यों का समावेश होता है।

इसप्रकार, आप यहा पश्चिमीकरण की विशेषताओं जैसे– नैतिक रूप से तटस्थ, एक व्यापक एवं वैज्ञानिक अवधारणा, प्रारूप, जटिल तथा बहुस्तरीय प्रक्रिया, चेतन और अचेतन प्रक्रिया, मूल्यों का समावेश आदि का उल्लेख करना सीख गये होगें।

बोध प्रश्न–1

i) एक व्यवस्थित अवधारणा के रूप में पश्चिमीकरण की विवेचना में मुख्य योगदान किया–

अ) राबर्ट रेडफील्ड ने ब) डेनियल लर्नर ने

स) योगेन्द्र सिंह ने द) एम0एन0 श्रीनिवास ने

ii) "Modernization of Indian Tradition" पुस्तक का लेखक कौन है।

अ) एस0 सी0 दुबे ब) योगेन्द्र सिंह

NOTES

स) दुर्खीम द) उपरोक्त में से कोई नही।

iii) निम्नांकित में से किसका सम्बन्ध पश्चिमीकरण से है–

अ) समताकारी व्यवस्था ब) तार्किक विचारधारा

स) मानवतावादी मूल्यों द) उपरोक्त सभी से

iv) एम0एन0 श्रीनिवास के अनुसार भारत में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का प्रभाव आरम्भ हुआ–

अ) प्रथम विश्वयुद्ध के बाद, ब) ब्रिटिश शासन के दौरान

स) द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद द) स्वतन्त्रता के पश्चात।

v) "Social Change in Modern India" पुस्तक के लेखक कौन है।

अ) एस0 सी0 दुबे ब) योगेन्द्र सिंह

स) दुर्खीम द) एम0 एन0 श्रीनिवास।

vi) पश्चिमीकरण की अवधारणा किसने दी ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

vii) पश्चिमीकरण की तीन विशेषतायें लिखिए ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.3 पश्चिमीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन

पश्चिमीकरण की प्रक्रिया द्वारा समाज में अनेक परिवर्तन हुयें। विभिन्न विद्वानों ने पश्चिमीकरण को परिभाषित किया है और उससे होने वाले समाज में परिवर्तनों का उल्लेख किया है जैसे– भारत में अंग्रजों के लगभग 190 वर्षो के शासन के कारण भारतीय समाज एवं संस्कृति में अनेक परिवर्तन हुये, जो खान–पान, रहन–सहन, प्रथाओं, सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक क्षेत्रों आदि में दिखाई देते है। जो कि निम्न है–

- **खान–पान एवं रहन–सहन में परिवर्तन**
- **समाजिक जीवन एवं संस्थाओं में परिवर्तन**
- **स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन**
- **धार्मिक जीवन में परिवर्तन**
- **राजनीतिक जीवन में परिवर्तन**
- **साहित्य एवं ललित कला क्षेत्र में परिवर्तन**
- **शिक्षा व आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तन आदि।**

उपर्युक्त का उल्लेख निम्न प्रकार से है–

- पश्चिमीकरण के कारण **भारतीय समाज के खान–पान एवं रहन–सहन** में परिवर्तन देखा जा सकता है। भारतीय समाज में परम्परात्मक व्यवस्था के अर्न्तगत ब्राह्मण एवं उच्च वर्ग के व्यक्ति शाकाहारी थे। वे अधिकांशत लहसून व प्याज का भी प्रयोग नही करते थे। वे भोजन करने से पूर्व स्नान किया करते थे। लेकिन अंग्रेजों के प्रभाव के कारण वे खाने में लहसून व प्याज का भी प्रयोग करने लगे। और अधिकांशत व्यक्ति शाकाहारी भोजन के साथ मांसाहारी को भी सीख गये। और अब खाने से पूर्व स्नान को भी आवश्यक नही समझा जाता है। साथ ही कपडों के पहनावे में भी परिवर्तन हुये, जैसे– धोती कुर्तो के स्थान पर पेंट शर्ट व टाई का प्रयोग व स्त्रिया भी पेट–शर्ट व जींस आदि पहनने लगी है तथा नये नये सौंदर्य प्रसाधनों का भी प्रयोग होने लगा है।

- पश्चिमीकरण के कारण **भारतीय समाज में सामाजिक जीवन व संस्थाओं में परिवर्तन** होने लगे है। जिसे जाति प्रथा, संयुक्त परिवार व विवाह आदि संस्थाओं में परिवर्तन आया है। **जाति–प्रथा** का भेदभाव पहले समाज में ज्यादा पाया जाता था जबकि अब पश्चिमी समाजों के प्रभाव के कारण औधौगिकीकरण

व नगरीकरण समाज में ज्यादा पाया जाता है, जिससे विभिन्न जाति के लोग साथ–साथ काम करने लगे है। अधिकांशत निम्न जाति के लोग शिक्षा प्राप्त करके उच्च वर्ग में परिवर्तित होने लगे है और खाने पिने में भी साथ–साथ रहते है। जिसके परिणामस्वरूप समाज में शिथिलता परिवर्तित हुई है। साथ ही **विवाह** पहले अपनी ही जाति में होते थे। लेकिन पश्चिम के प्रभाव के कारण विभिन्न जातियों में आपस में शादी विवाह होने लगे है। बहुपति व बहुपत्नी प्रथा व बाल विवाह समाप्त समाज में हुये है। **परिवारों** की संरचना में भी परिवर्तन अनेक कारणों द्धारा आया है। संयुक्त परिवार नाभिक परिवारों में परिवर्तित हो रहे है। साथ ही परिवारो के अधिकार दायित्वों में परिवर्तन आया है।

- पश्चिमीकरण के कारण **स्त्रियों की परम्परागत स्थिति** में परिवर्तन हुआ है। पश्चिम के प्रभाव के कारण वर्तमान में महिलायें को शिक्षा दी जाने लगी है। जिसके परिणामस्वरूप उनका मानसिक विकास हुआ। वे पश्चिम के साहित्य से जागृत हुई है। उनकी स्थितियों में सती प्रथा, बाल विवाह का अन्त हुआ व विधवा विवाह प्रारम्भ हुये। वर्तमान में महिलाये पुरूषों के समान सभी क्षेत्रों– सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक आदि में सामने आयी है। जिससे उनका सशक्तिकरण भी साथ–साथ हो रहा है।

- **धार्मिक जीवन में परिवर्तन के अर्न्तगत** भारत में पहले धार्मिक परम्पराओं के अनुसार सामाजिक घटनाओ की व्याख्या अन्धविश्वासों के अनुसार की जाती थी और समाज में कर्मकाण्ड, पाखंड व ढोंग आदि का प्रचलन था। जिसमें सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेघ व देवदासी प्रथा आदि थे। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव और ईसाई धर्म के प्रचार आदि कारण धार्मिक बुराईयों की समाप्ति के लिए प्रयत्न किये गये। जिस संदर्भ में धार्मिक और सुधार आन्दोलन भी हुये। जिसके परिणामस्वरूप समाज में धार्मिक बुराईयों का अन्त हुआ और सामाजिक सुधार हुआ।

- **राजनीतिक जीवन में परिवर्तन** के अन्तर्गत भारतीय समाज मे पहले रियासतें तथा राजे–रजवाडें और छोटे–छोटे भू क्षेत्रों पर सामन्तों का शासन था। प्रत्येक गॉव में एक ग्राम पंचायत थी, जो गॉव में शासन संबन्धी कार्य करती थी। शासन संबधी कार्यो में धार्मिक प्रथाओं का बोलबाला था। लेकिन भारत में जैसे ही अंग्रेजी राज्य स्थापित हुआ वैसे ही संपूर्ण भारत को राजनीतिक आधार पर संगठित किया गया। देश में एकसमान व्यवस्था लागू की गयी। साथ ही नवीन

साधनों का विकास किया गया। अंग्रजों ने ही सारे भारत को आधुनिक प्रजातन्त्र और संसदीय प्रणाली व नौकरशाही से परिचित कराया है। जिसके परिणामस्वरूप समाज में आधुनिक राजनीतिक जीवन प्रारम्भ हुआ और नई प्रौद्यौगिकी का भी राजनीतिक प्रशासन चलाने में प्रयोग हुआ। पंचायती राज व अन्य सामुदायिक कार्यक्रम समाज में चलाये गये।

- **साहित्य एवं ललित कला क्षेत्र** में परिवर्तन के अन्तर्गत भारतीय समाज में पश्चिमीकरण साहित्य का प्रभाव पडा है। अंग्रजी साहित्य समृद्ध साहित्य है। अंग्रेजी भाषा के द्वारा भारतीय विद्वान विश्व के अन्य साहित्यकारों के बारें में जानकारी प्राप्त करने में समर्थ हुए है। जिसके परिणामस्वरूप समाज में नई सोच पैदा हुई। साथ ही नया गद्य साहित्य, कहानिया और लेखो का प्रचलन बढा। स्थापत्य कला और चित्रकला में भी पश्चिमी छाप स्पष्ट दिखाई देने लगी। स्थापत्य कला में कोलकत्ता का विक्टोरिया मेमोरियल पाश्चात्य स्थापत्य कला का एक जीता जागता उत्कृष्ट उदाहरण है। पश्चिम स्थापत्य कला और चित्रकला का असर भारतीय इमारतों पर, मकानों पर व तस्वीरों में साथ ही आज के नृत्यों में स्पष्ट दिखाई देता है।

- **शिक्षा व आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तन** भारतीय समाज में देखे जा सकते है। परम्परागत भारत में शिक्षा की गुरूकुल प्रणाली प्रचलित थी। शिक्षा सभी को उपलब्ध नही थी वरन् एक विशेष समुदाय तक ही सीमित थी। व्यवसाय जाति आधारित था। लेकिन जब अंग्रेज भारत में आये तो पश्चिम संस्कृति का प्रभाव पडा। अंग्रेजी संस्थायें स्थापित हुई। जिसके परिणामस्वरूप समाज में तार्किक निर्णय प्रारम्भ हुये तथा वैज्ञानिक अध्ययनों पर जोर दिया गया। मोबाईल व इन्टरनेट का समाज में प्रचलन बढने लगा तथा नैनोटेक्नोलोजी का भी समाज में प्रयोग होने लगा। समाज में इन प्रभावों से नये आधुनिक परिवर्तन होने लगे और आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तन होने लगा। कृषि साधनो में नये प्रयोग हुये, नये बीज प्रचलित हुये, पशु शक्ति का स्थान मशीनों ने ले लिया। जिसके फलस्वरूप समाज में आर्थिक उत्पादन बढने लगा। जिसका पश्चिमी प्रभाव वर्तमान में स्पष्ट दिखाई देता है। *गुप्ता एवं षर्मा (2006: समाजषास्त्र)*

अतः आप यहा पश्चिमीकरण की प्रक्रिया द्वारा समाज में होने वाले अनेक परिवर्तन जैसे– खान–पान एवं रहन–सहन में परिवर्तन, समाजिक जीवन एवं संस्थाओं में

परिवर्तन, स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन, साहित्य एवं ललित कला क्षेत्र में परिवर्तन तथा शिक्षा व आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तन आदि को समझ गये होगें।

चित्र नं0–1 : पश्चिमीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन

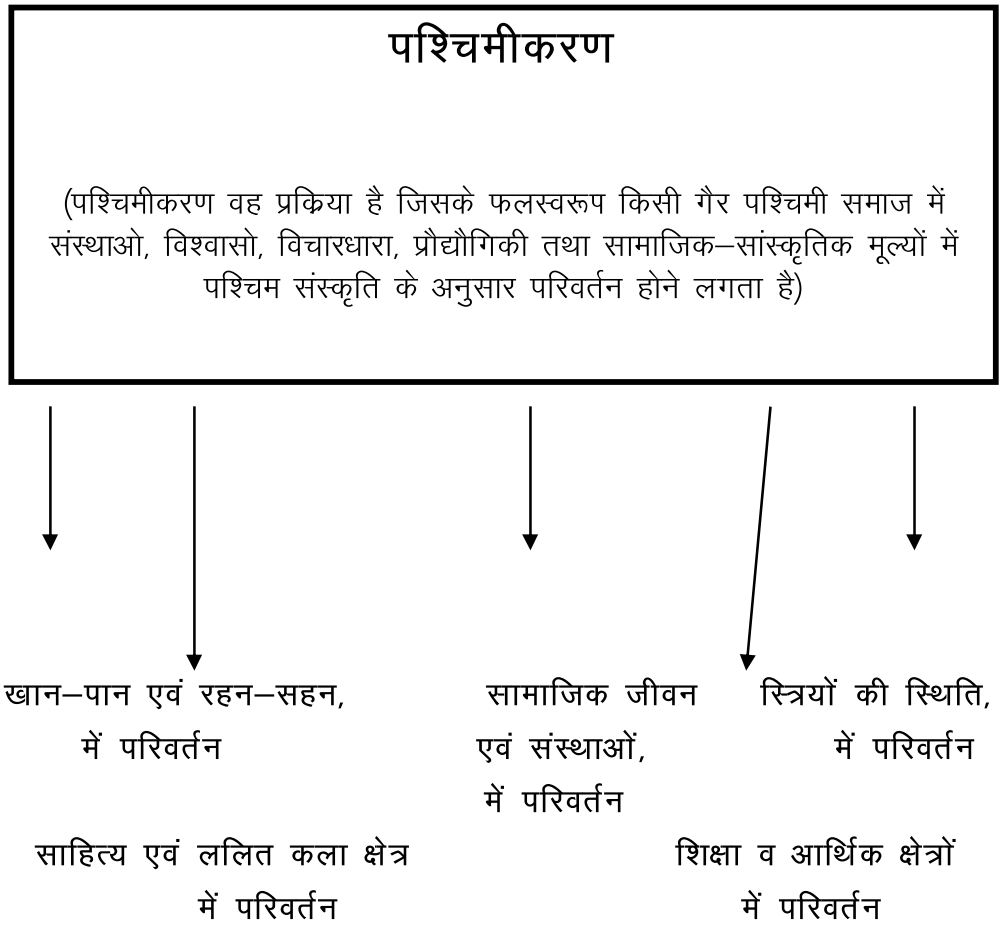

पश्चिमीकरण की प्रक्रिया द्वारा भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों को तीर के निशान द्वारा अंकित किया गया है।

उपरोक्त चित्र नं0–1 में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया द्वारा भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों के क्षेत्रों को दर्शाया गया है। जिससे आप परिवर्तन के क्षेत्रों को आसानी से समझकर इन क्षेत्रों की व्याख्या पश्चिमीकरण के संदर्भ में कर सके।

10.4 ग्रामीण जीवन पर पश्चिमीकरण का प्रभाव

विभिन्न विद्वानों द्वारा ग्रामीण जीवन पर गांव के विचारों में पश्चिमीकरण के प्रभाव के अन्तर्गत, गांव में निवास करने वाली उच्च जातियों के बहुत–से व्यक्तियों ने यह

अनुभव कर लिया था कि अंग्रेजी राज्य की स्थापना के फलस्वरूप उनकी परम्परागत स्थिति में कुछ परिवर्तन अवश्य होगा। इस स्थिति में गांव की उच्च जातियों के जमींदारों ने ही सर्वप्रथम अंग्रेजों के सम्पर्क में आना आरम्भ किया जिससे वे अपनी परम्परागत स्थिति को बनाये रखने में सफल हो सके।

एकवर्ड शिल्स के अनुसार, भारतीय समाज में जो उच्च वर्ग जातियों में सुशिक्षित था वही पश्चिमी संस्कृति के संपर्क में आए और उसका प्रसार धीरे–धीरे अन्य समुदायों की ओर हुआ। भारत में सर्वप्रथम ब्राह्मण ही अंग्रेजों के सम्पर्क में आये परन्तु उन्हें जो सर्वाच्च स्थिति एवं सामाजिक सम्मान ब्रिटिश शासन से पहले के परम्परागत भारतीय समाज में प्राप्त था, वह यहां नहीं मिल सका। इसके बाद भी परिवर्तित स्थिति में उन्हीं लोगों को उच्च स्थान मिलना सम्भव था जो अंग्रेजों के अधिक निकट थे। इसलिए अधिकांश समय तक मद्रासी और बंगाली ब्राह्मण ही अंग्रेजों की सेवा में सबसे आगे रहे। यह कथन नगरीय जीवन के अतिरिक्त ग्रामीण जीवन के बारे में भी उतना ही सच है। वास्तव में, ग्रामों की उच्च जातियों के सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने ही सर्वप्रथम पश्चिमी संस्कृति को ग्रहण किया और उन्हीं के माध्यम से अन्य ग्रामीणों ने भी पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित जीवन–शैली को अपनाना आरम्भ कर दिया। अर्थात ब्रिटिश काल में ब्राह्मण अंग्रेजों का अनुकरण कर रहे थे और अन्य ग्रामीण समूह ब्राह्मणों एवं अंग्रेजों दोनों का अनुकरण करके अपनी जीवन–शैली को समाज के अनुरूप एक नई दिशा देकर बदल रहे थे।

प्रो0 दुबे की मान्यता है कि पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय ग्रामीण समुदाय में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किये हैं। आज गांव के व्यक्ति की स्थानीय सामाजिक स्थिति उसकी जाति और परिवार की प्रतिष्ठा पर आधारित न होकर उसकी व्यक्तिगत योग्यता के आधार पर निर्धारित होती है। गांव में भी व्यक्तिवादिता एवं द्वैतीयक सम्बन्धों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया के प्रभाव से जाति पंचायतों का विघटन हुआ और इन पंचायतों का कार्य पश्चिमी न्याय व्यवस्था ने ले लिया। ग्रामीण लोगो में शिक्षा का प्रसार हुआ। ग्रामीण लोगो क कार्य करने के परिवर्तनों एवं जीवन शैली में परिवर्तन का एक नया दौर शुरू हुआ।

प्रो0 देसाई (1971) ने ग्रामीण जीवन पर पड़ने वाले पश्चिमीकरण के प्रभाव को स्पष्ट करते हुए कहा है कि पश्चिमीकरण के कारण भारतीय ग्रामीण सामाजिक संगठन में परिवारात्मकता का प्रभाव कम हो गया है। गांव में सामुदायिकता की भावना का लोप होता जा रहा है तथा वे शक्तियां शिथिल पड़ती जा रही हैं। जो गांव के निवासियों को एकता कि सूत्र में में बंधे रखती थीं। अर्थात ग्रामीण सामाजिक संबधो में पारिवारिक स्तर से परिवर्तन का दौर शुरू हुआ। लेकिन साथ ही साथ वे अपनी पुरानी जीवन शैली को भी अपनाये हुये थे। जिसमें द्वन्द्वात्मक विचार चल रहे थे। **प्रो0**

श्रीनिवास का यहां तक विचार है कि भारत में अनेक ऐसे भी ग्रामीण समुदाय देखे जा सकते हैं जिनमें पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का प्रभाव कुछ नगरों की तुलना में अधिक दिखायी देता है।

भारत में ब्रिटिश शासन से पहले तक भारत के अधिकांश क्षेत्रों में भूमि सम्पूर्ण गांव के अधिकार में समझी जाती थी तथा लगान का निर्धारण भी सम्पूर्ण गांव को एक इकाई मानकर होता था। यह लगान सम्पूर्ण ग्रामीण समुदाय द्वारा सरपंच या पंचायतों के माध्यम से राज्य अथवा किसी मध्यस्थ को कृषि उत्पादन के अनुपात में दिया जाता था। अंग्रेजों द्वारा स्थापित नई भूमि–व्यवस्था में लगान के भुगतान के लिए गांव एक इकाई नहीं रह गया बल्कि लगान का निर्धारण वैयक्तिक रूप से होने लगा। यह लगान चाहे जमींदार को दिया जाता हो अथवा प्रत्यक्ष रूप से सरकार को, इसके कृषकों के हानि–लाभ से अथवा कृषि उत्पादन से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। स्वाभाविक रूप से इस स्थिति ने ग्रामीण जीवन में व्यक्तिवादिता तथा संचय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया। पश्चिमीकरण के परिणामस्वरूप ग्रामीण कृषि का व्यापारीकरण होना आरम्भ हो गया। परिवहन के साधनों में वृद्धि होने तथा मुद्रा का उपयोग बढ़ने के कारण किसानों के लिए नये बाजारों की सुविधाएं उपलब्ध हो गयीं। फलस्वरूप वे अपनी उपज को दूरस्थ मण्डियों में बेचकर अधिकाधिक लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे। अनेक गांवों में व्यापारिक फसलों जैसे,– कपास जूट, गन्ना तथा तिलहन के उत्पादन में ही रूचि ली जाने लगी। इस प्रकार उत्पादन का उद्देश्य उपभोग न रहकर अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना हो गया। अंग्रेजी सरकार ने भी कुछ ऐसी नीतियां अपनायीं जिनके फलस्वरूप अधिकांश क्षेत्रों में ब्रिटिश उद्योगों की आवश्यकता को पूरा करने वाली फसलों को उगाया जाने लगा। डॉ0 देसाई ने लिखा है कि भारत में कृषि के व्यापारीकरण की सहायता से स्वयं ब्रिटेन में मशीनों से बनी जिन सस्ती चीजों का उत्पादन हुआ, उन्हीं के पुनः भारत में आने से यहां की सन्तुलित ग्रामीण अर्थव्यवस्था नष्ट होने लगी। इसका भारत के ग्रामीण कुटीर उद्योगों पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। परम्परागत भारतीय गांव जो आर्थिक और प्रशासनिक आधार पर आत्मनिर्भर थे, उनमें आर्थिक स्वार्थों, प्रतियोगिता एवं संघर्षों पर आधारित नये जीवन प्रतिमान विकसित होने लगे। *अग्रवाल, जी0के0 (2012: समाजशास्त्र)*

अतः भारत में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप ग्रामीण समानताएं काफी सीमा तक बढ़ गईं लेकिन यह भी सच है कि इस प्रक्रिया के प्रभाव से अनेक क्षेत्रों में ग्रामीण असमानताओं में भी वृद्धि हुई है। सर्वप्रथम, आज ग्रामीण समाज में अभिजात वर्ग और सामान्य ग्रामीणों के बीच का अन्तर पहले की अपेक्षा और अधिक बढ़ गया है। गांवों में व्यक्तिवादिता तथा कृषि की नवीन प्रविधियों के कारण बड़े भू–स्वामियों ने सभी अधिकारों और सुविधाओं पर एकाधिकार कर लिया, जबकि सामान्य ग्रामीण

विकास कार्यक्रमों के विभिन्न लाभों को प्राप्त करने से वंचित रह गये। दूसरे, पश्चिमीकरण के प्रभाव से स्थानीय गतिशीलता बढ़ी और इसके बाद नगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों में जाति तथा धर्म के आधारों के पर भी नये–नये समूहों का निर्माण होने लगा। इन समूहों ने धीरे–धीरे नये गुटों का रूप लेकर ग्रामीण संघर्षों में पहले की अपेक्षा और अधिक वृद्धि कर दी। डॉ0 श्रीनिवास ने ग्रामीण असमानताओं में होने वाली वृद्धि को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि एक गांव में लोगों का एक समूह अपनी वेश–भूषा, खान–पान, व्यवहारों, खेल–कूद और दिन–प्रतिदिन के उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं की दृष्टि से पश्चिमीकृत हो गया, जबकि उसी गांव में अनेक दूसरे समूह अपनी परम्परागत जीवन–शैली के कारण उनसे बिल्कुल पृथक् प्रतीत होने लगे। इसका तात्पर्य है कि पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने सामाजिक और सांस्कृतिक आधार पर भी ग्रामों में अनेक असमानताओं में वृद्धि की है। यह पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का ही प्रभाव है कि गांव में आज जो युवक आधुनिक शिक्षा ग्रहण करके वापस लौटते हैं, वे स्वयं को अन्य ग्रामीण से भिन्न समझने लगते हैं। इस स्थिति ने अनेक नयी समस्याओं को जन्म देकर ग्रामीण जीवन में विघटनकारी तत्व उत्पन्न किये हैं। लेकिन फिर भी पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का प्रभाव ग्रामीण जीवन पर काफी सीमा तक सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक व आर्थिक संस्थाओं पर पडा है। जिससे आप यहा समझ गये होगे कि ग्रामीण समुदाय को एक नई दिशा व दशा पश्चिमीकरण द्वारा प्रदान हुई।

10.5 पश्चिमीकरण– एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण

उपर्युक्त विवरण के परिणामस्वरूप विभिन्न विद्धानों ने पश्चिमीकरण को अपने अनुसार विचारित एवं परिभाषित किया है। लेकिन अनेक समाजशास्त्रियों व मानवशास्त्रियों ने इसकी अनेक आधारो पर आलोचना भी की है। जिसमें **लर्नर** कहते है कि पश्चिमीकरण अनुपयुक्त एवं संकुचित अवधारणा है, क्योंकि रूसी साम्यवाद भी एक शक्तिशाली आधुनिकीकरण करने वाला प्रारूप है। **श्रीनिवास का पश्चिमीकरण** से तात्पर्य भारत पर बिट्रिश प्रभाव से है, लेकिन यह बहुत संकुचित प्रारूप है, क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत पर रूसी और अमरीकी प्रारूपों का प्रभाव भी स्पष्ट पडा है। **प्रो0 योगेंन्द्र सिंह कहते है** कि भारत में नवीन अभिजात वर्ग के बहुत से लोगो के लिए और साथ ही एशिया के भी नये राज्यों में पश्चिमीकरण एक निदानात्मक अर्थ लिए हुये है, क्योंकि यह पश्चिम के द्वारा इन देशों के पूर्ववर्ती औपनिवेशिक शासन से संबन्धित रहा है। इसलिए यह आधुनिकीकरण के बजाय अधिक मूल्य भारयुक्त प्रतीत होता है। अतः आधुनिकीकरण हमें अधिक उत्तम प्रतीत होता है। **प्रो0 योगेंन्द्र सिंह के अनुसार,** संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण ऐसी अवधारणाएं है जिनमें सैद्धान्तिक दृष्टि से निश्चितता का अभाव है, लेकिन सत्यता पर जोर देने वाली अवधारणाओ के रूप में

उनमें काफी उपयुक्तता और व्यवहार्यता है। ये अवधारणाएं आनुभाविक अवलोकनों पर आधारित है और सांस्कृतिक परिवर्तनों के कई पक्षों के संबध में अन्तदृष्टि प्रदान करती है। ये अवधारणाएं सांस्कृतिक परिवर्तन का ही विश्लेषण कर पाती है, लेकिन सामाजिक संरचना का नही। इसी संदर्भ में **श्रीनिवास कहते है** कि संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण के माध्यम से आधुनिक भारत में होने वाले सामाजिक परिवर्तन का वर्णन सांस्कृतिक दृष्टि से ही किया जा सकता है, न कि संरचनात्मक दृष्टि से। स्वयं **बी0कुप्पुस्वामी कहते** कि संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण कि अवधारणाएं हमें उन्नसवीं शताब्दी के बाद वाले पचास वर्षों और बीसवी शताब्दी के प्रथम दो दशकों में सतही परिवर्तन प्रक्रियाओं को समझने में मदद करती है। भारतीय समाज में चल रही परिवर्तन प्रक्रियाओं का विश्लेषण करने में सहायता प्रदान करने की दृष्टि से इन अवधारणाओं की उपयुक्त्ता काफी सीमित है। लेकिन विद्वानों द्वारा कुछ आलोचनों के बाद भी आप उपर्युक्त व्याख्या के द्धारा जान गये कि पश्चिम द्वारा भारतीय समाज में आये परिवर्तनों को समझने में यह पश्चिमीकरण की अवधारणा काफी हद तक सहायक सिद्ध भी हुई है। क्योंकि स्वतंत्रता के बाद, भारत में लौकतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना, धर्मनिरपेक्षता, औद्यौगिकीकरण, नगरीकरण, शिक्षा का प्रसार, समताकारी मूल्यों में वृद्धि, तथा सामाजिक आर्थिक नियोजन आदि वे प्रमुख दशायें है जिनके आधार पर पश्चिमीकरण के प्रभाव को स्पष्ट किया जा सकता है।

बोध प्रश्न–2

i) श्रीनिवास के अनुसार पश्चिमीकरण को पारिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ii) पश्चिमीकरण को लिंच के अनुसार परिभाषित कीजिए।

.....

.....

स्वप्रगति परीक्षण

1. श्रीनिवास के पश्चिमीकरण के सम्बन्ध में क्या विचार व्यक्त किया है ?
2. पश्चिमीकरण की विद्वानों ने क्या विशेषताएँ बताइ हैं?
3. पश्चिमीकरण के कारण क्या सामाजिक परिवर्तन हुए हैं ?

.....

.....

.....

iii) पश्चिमीकरण द्वारा भारतीय समाज में होने वाले परिवर्तनों के प्रमुख क्षेत्रों को बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

iv) पश्चिमीकरण द्वारा भारतीय समाज में होने वाले स्त्रियों के क्षेत्रों में कुछ परिवर्तनों को बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

v) पश्चिमीकरण द्वारा ग्रामीण समाज में होने वाले परिवर्तनो को बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.6 सारांश

इस इकाई को पढने के बाद आप यह जान चुके है कि भारतीय समाज में पश्चिमीकरण की अवधारणा का प्रयोग **डॉ0 एम0एन0श्रीनिवास ने** किया है। श्रीनिवास ने बताया कि पश्चिमीकरण की अवधारणा उन परिवर्तनों से परिचित कराती है जो कि पश्चिमी समाज के अर्थात ग्रेट ब्रिटेन के सम्पर्क के परिणामस्वरूप हुये है **तथा प्रो0 योगेन्द्र सिहं कहते है कि,** "मानवतावाद तथा बुद्धिवाद पर जोर

पश्चिमीकरण का एक अंग है। इसप्रकार, पश्चिमीकरण की अवधारणा के अन्तर्गत भारत में होने वाले वे सभी सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन और संस्थात्मक नवीनतायें आ जाती है, जो इस देश में पश्चिमी देशों के साथ राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संपर्क के कारण आयी है। जिसमें पश्चिमीकरण ने भारत में मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाने तथा तार्किक दृष्टिकोण से विचार करने के लिए लोगो को प्रेरित किया है। साथ ही **पश्चिमीकरण का अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट करने के उपरान्त इसकी विशेषताओं** जैसे– नैतिक रूप से तटस्थ, एक व्यापक एवं वैज्ञानिक अवधारणा, प्रारूप, जटिल तथा बहुस्तरीय प्रक्रिया, चेतन और अचेतन प्रक्रिया, मूल्यों का समावेश आदि का समाज में उल्लेख करके बतायी गयी है। इसके तत्पश्चात प्रस्तुत इकाई में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया द्वारा समाज में होने वाले अनेक **परिवर्तन का उल्लेख** किया गया है जिसमें भारत में अंग्रजों के लगभग 190 वर्षो के शासन के कारण भारतीय समाज एवं संस्कृति में अनेक परिवर्तन हुये, जो खान–पान, रहन–सहन, प्रथाओं, सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक क्षेत्रों, साहित्य, ललित कला एवं शिक्षा आदि क्षेत्रों में दिखाई देते है। जिसके परिणामस्वरूप भारतीय समाज को एक नई दिशा मिली है। साथ ही आगे यह बताया गया कि पश्चिमीकरण की प्रक्रिया द्वारा **ग्रामीण समाज में होने वाले परिवर्तनों को समझाया** गया है। जिसमें **प्रो0 दुबे ने बताया कि** आज गांव के व्यक्ति की स्थानीय सामाजिक स्थिति उसकी जाति और परिवार की प्रतिष्ठा पर आधारित न होकर उसकी व्यक्तिगत योग्यता के आधार पर निर्धारित होती है तथा **प्रो0 देसाई** ने कहा है कि पश्चिमीकरण के कारण भारतीय ग्रामीण सामाजिक संगठन में परिवारात्मकता का प्रभाव कम हो गया है। गांव में सामुदायिकता की भावना का लोप होता जा रहा है तथा वे शक्तियां शिथिल पड़ती जा रही हैं। जो गांव के निवासियों को एकता के सूत्र में में बांधे रखती थीं। पश्चिमीकरण के परिणामस्वरूप ग्रामीण कृषि का व्यापारीकरण होना आरम्भ हो गया। इसके बाद प्रस्तुत इकाई में इसकी आलोचनाओं का समाज में जिक्र किया गया है। इकाई में स्पष्ट किया गया कि अनेक समाजशास्त्रियों व मानवशास्त्रियों ने इसकी अनेक आधारो पर आलोचना भी की है। जिसमें **लर्नर** कहते है कि पश्चिमीकरण अनुपयुक्त एवं संकुचित अवधारणा है, क्योंकि रूसी साम्यवाद भी एक शक्तिशाली आधुनिकीकरण करने वाला प्रारूप है। स्वयं **बी0कुप्पुस्वामी कहते** कि संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण कि अवधारणाएं हमें उन्नसवीं शताब्दी के बाद वाले पचास वर्षों और बीसवी शताब्दी के प्रथम दो दशकों में सतही परिवर्तन प्रक्रियाओं को समझने में मदद करती है। भारतीय समाज में चल रही परिवर्तन प्रक्रियाओं का विश्लेषण करने में सहायता प्रदान करने की दृष्टि से इन अवधारणाओं की उपयुक्त्ता काफी सीमित है। लेकिन विद्वानों द्वारा कुछ आलोचनों के बाद भी आप जान गये कि पश्चिम द्वारा भारतीय समाज में आये परिवर्तनों को समझने में यह पश्चिमीकरण की अवधारणा

काफी हद तक सहायक सिद्ध भी हुई है। क्योंकि स्वतंत्रता के बाद, भारत में लौकतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना, धर्मनिरपेक्षता, औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, शिक्षा का प्रसार, समताकारी मूल्यों में वृद्धि, तथा सामाजिक–आर्थिक नियोजन आदि वे प्रमुख दशायें है जिनके आधार पर पश्चिमीकरण के प्रभाव को स्पष्ट किया जा सकता है।

10.7 पारिभाषिक शब्दावली

पश्चिमीकरण– पश्चिमीकरण शब्द का प्रयोग भारतीय समाज व संस्कृति में उन परिवर्तनों के लिए किया है जो एक सौ पचास वर्षो से अधिक समय के अंग्रेजी राज के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए है, और यह शब्द प्रौधौगिकी, संस्थाओं, वैचारिक मूल्यों आदि विभिन्न स्तरों पर होने वाले परिवर्तनों का समावेश करता है। पश्चिमीकरण ने भारत में मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाने तथा तार्किक दृष्टिकोण से विचार करने के लिए लोगो को प्रेरित किया है। पश्चिमीकरण के अन्तर्गत भारत में होने वाले वे सभी सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन और संस्थात्मक नवीनतायें आ जाती है, जो इस देश में पश्चिमी देशों के साथ राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संपर्क के कारण विभिन्न क्षेत्रों में आयी है। समाज में पश्चिमीकरण की अवधारणा का प्रयोग **डॉ0 एम0एन0श्रीनिवास ने** किया है। अर्थात पश्चिमीकरण वह प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप किसी गैर पश्चिमी समाज में संस्थाओ, विश्वासो, विचारधारा, प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों में पश्चिम संस्कृति के अनुसार परिवर्तन होने लगता है।

आधुनिकीकरण – आधुनिकीकरण राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा ऐतिहासिक व समकालीन अविकसित समाज अपने आपको विकसित करने में संलग्न रहते है। अर्थात समाज में परिवर्तन जब इस तरह होने लगता है कि सामाजिक संरचना, सामाजिक मूल्यों तथा व्यवहार के तरीकों में तार्किकता, समानता, गतिशीलता और सहभागिता के तत्व बढ़ने लगते हैं, तब ऐसे परिवर्तन को आधुनिकीकरण कहा जाता है।

नगरवाद– नगरीय जीवन के साथ व्यक्तियों के समायोजन की प्रक्रिया को नगरवाद या नगरीयता कहते है। यह जीवन की एक विशिष्ट शैली है।

परम्परा– परम्परा अर्थात ट्रॅडिशन शब्द की उत्पत्ति ट्रॅडेर शब्द से हुई है। जिसका अर्थ है संचरण या हस्तान्तरण। परम्परा परिपाटियों का एक पुंज है, जो कुछ व्यवहार संबधी मानदंडो और मूल्यों जो इस आधार पर अपनाये जाने पर बल देती है कि इनका वास्तविक या काल्पनिक भूत के साथ तारतम्य है। जो कि भारतीय ग्रामीण समाज में अधिकाशंत देखने को मिलती है।

प्रौद्योगिक विकास– प्रौद्यौगिक विकास की प्रकिया ब्रिट्रिश शासन काल के दौरान ही आरम्भ हुई। स्वतन्त्रता के बाद आर्थिक नियोजन के द्वारा इसमे बहुत अधिक वृद्धि हुई। आज भारत मे सूती कपडो, रासायनिक खादो, सीमेण्ट, जूट आदि मशीनों के बडे–बडे कारखाने स्थापित हो चुके है। अणु शक्ति के क्षेत्र में भी भारत एक आत्मर्निभर देश बन चुका है। प्रौद्योगिक विकास के साथ विभिन्न प्रकार के व्यवसायो मे भी वुद्धि हुई है।

परिवर्तन– किसी भी वस्तु में दो समयान्तराल के दौरान आने वाली भिन्नता ही परिवर्तन है।

तार्किकता– समाज में सामाजिक घटनाओं की व्याख्या तार्किक निर्णय अर्थात वैज्ञानिक आधारों पर की जाती है वही तार्किकता कहलाती है। अर्थात तार्किक निर्णयों के आधार की गयी व्याख्या ही तार्किकता कहलाती है।

10.8 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

i) द) एम0एन0 श्रीनिवास

ii) ब) योगेन्द्र सिंह

iii) द) उपरोक्त सभी से

iv) ब) ब्रिटिश शासन के दौरान

v) द) एम0 एन0 श्रीनिवास

vi) श्रीनिवास

vii) अ) नैतिक रूप से तटस्थ

ब) एक वैज्ञानिक अवधारणा

स) चेतन और अचेतन प्रकिया

बोध प्रश्न–2

i) **श्रीनिवास के अनुसार,** "पश्चिमीकरण शब्द का प्रयोग भारतीय समाज व संस्कृति में उन परिवर्तनों के लिए किया है जो एक सौ पचास वर्षो से अधिक समय के अंग्रेजी राज के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए है, और यह शब्द प्रौधौगिकी,

संस्थाओं, वैचारिक मूल्यों आदि विभिन्न स्तरों पर होने वाले परिवर्तनों का समावेश करता है।"

ii) **लिचं के अनुसार**, "पश्चिमीकरण में पश्चिमी पोशाक, खान–पान, तौर–तरीके, शिक्षा, विधियों और खेल मूल्यों आदि को सम्मिलित किया जाता है।"

iii) पश्चिमीकरण की प्रक्रिया द्वारा समाज में अनेक परिवर्तन हुयें। विभिन्न विद्धानों ने पश्चिमीकरण को परिभाषित किया है और उससे होने वाले समाज में परिवर्तनों का उल्लेख किया है जैसे– भारत में अंग्रजों के जो खान–पान, रहन–सहन, प्रथाओं, सामाजिक जीवन एवं संस्थाओं में परिवर्तन, स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन, धार्मिक जीवन में परिवर्तन, राजनीतिक जीवन में परिवर्तन ,साहित्य एवं ललित कला क्षेत्र में परिवर्तन, शिक्षा व आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तन आदि।

iv) पश्चिमीकरण के कारण **स्त्रियों की परम्परागत स्थिति** में परिवर्तन हुआ है। पश्चिम के प्रभाव के कारण वर्तमान में महिलायें शिक्षित हुई है। जिसके परिणामस्वरूप उनका सामाजिक–मानसिक विकास हुआ। वे पश्चिम के साहित्य से जागृत हुई है। उनकी स्थितियों में सती प्रथा, बाल विवाह का अन्त हुआ व विधवा पुर्नविवाह प्रारम्भ हुये। वर्तमान में महिलाये पुरूषों के समान सभी क्षेत्रों– सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक आदि में सामने आयी है। वें पुरूषों के साथ नौकरी कर रही है, जिससे उनका सशक्तिकरण भी साथ–साथ हो रहा है।

v) पश्चिमीकरण के कारण भारतीय ग्रामीण समाज में आज गांव के व्यक्ति की स्थानीय सामाजिक स्थिति उसकी जाति और परिवार की प्रतिष्ठा पर आधारित न होकर उसकी व्यक्तिगत योग्यता के आधार पर निर्धारित होती है। गांव में भी व्यक्तिवादिता एवं द्वैतीयक सम्बन्धों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया के प्रभाव से जाति पंचायतों का विघटन हुआ और इन पंचायतों का कार्य पश्चिमी न्याय व्यवस्था ने ले लिया। गांव में सामुदायिकता की भावना का लोप होता जा रहा है तथा वे शक्तियां शिथिल पड़ती जा रही हैं। साथ ही भारत में कृषि का व्यापारीकरण हुआ है। परम्परागत भारतीय गांव जो आर्थिक और प्रशासनिक आधार पर आत्मनिर्भर थे, उनमें आर्थिक स्वार्थों, प्रतियोगिता एवं संघर्षों पर आधारित नये जीवन प्रतिमान आदि विकसित होने लगे।

10.9 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

पश्चिमीकरण की अवधारणा का प्रयोग **डॉ0 एम0एन0श्रीनिवास** ने भारतीय समाज में परिवर्तन की अवधारणाओं का प्रयोग करने हेतू किया है। पश्चिमीकरण की अवधारणा

उन परिवर्तनों को परिचित कराती है जो कि पश्चिमी समाज के अर्थात ग्रेट ब्रिटेन के सम्पर्क के परिणामस्वरूप हुये है। भारत में उन्नीसवीं व बीसवीं शताब्दीं में जो परिवर्तन अंग्रेजी शासनकाल के दौरान हुये है, श्रीनिवास उनकी चर्चा पश्चिमीकरण के लिए करते है। पश्चिमीकरण की अवधारणा के अन्तर्गत भारत में होने वाले वे सभी सांस्कृतिक परिवर्तन और संस्थात्मक नवीनतायें आ जाती है, जो इस देश में पश्चिमी देशों के साथ राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संपर्क के कारण आयी है।

विभिन्न विद्वानों द्वारा परिभाषित पश्चिमीकरण की निम्न विशेषतायें समाज में पाई जाती है, जो कि निम्न है–

- नैतिक रूप से तटस्थ
- एक व्यापक अवधारणा
- एक वैज्ञानिक अवधारणा
- अनेक प्रारूप
- जटिल तथा बहुस्तरीय प्रकिया
- चेतन और अचेतन प्रकिया
- मूल्यों का समावेश

पश्चिमीकरण की प्रकिया द्वारा समाज में अनेक परिवर्तन हुयें। विभिन्न विद्वानों ने पश्चिमीकरण को परिभाषित किया है और उससे होने वाले समाज में परिवर्तनों का उल्लेख किया है जैसे– भारत में अंग्रजों के लगभग 190 वर्षो के शासन के कारण भारतीय समाज एवं संस्कृति में अनेक परिवर्तन हुये, जो खान–पान, रहन–सहन, प्रथाओं, सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक क्षेत्रों आदि में दिखाई देते है। जो कि निम्न है–

- खान–पान एवं रहन–सहन में परिवर्तन
- समाजिक जीवन एवं संस्थाओं में परिवर्तन
- स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन
- धार्मिक जीवन में परिवर्तन
- राजनीतिक जीवन में परिवर्तन
- साहित्य एवं ललित कला क्षेत्र में परिवर्तन

शिक्षा व आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तन आदि।

10.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- Kuppuswami, B., (1972) *Social Change in India*, Vikas publication, New Delhi
- Desai,A.R., (1972) *Rural sociology in India,* Popular prakashan pvt, Delhi
- Desai,A.R., (1971) *Explanation and Management of change,*Tata MeGraw Hill
- Pub., Bombay
- Eisenstadt,S.N., (1967) *Modernization: Growth and Diversity*, Harper T.Books,
- Newyork
- Bottomore, T.B., (1969) *Sociology: A guide to problem and literature,*
- Allen and unvin, London
- श्रीनिवास,एम0एन0 (1991) आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
- मजूमदार, डी0एन0 और मदान, टी0एन0, (1986) एन इंट्रोडक्शन टू सोशल एन्थरोपॉलाजी,
- नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- रावत, हरि कृष्ण, (2002) समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन, जयपुर
- अग्रवाल, जी0के0 (2012) समाजशास्त्र, एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन, आगरा
- सिंह, योगेन्द्र, (1988) मार्डनाइजेशन आफ इंडियन ट्रेडिशन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर
- आहुजा, राम (2000) भारतीय समाज, रावत पब्लिकेशन, दिल्ली
- गुप्ता एवं षर्मा, (2006) *समाजशास्त्र*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

10.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- Giddens, Anthony, (1993) *Sociology,* polity press, Cambridge
- Mitchell, G Duncan, (1979) *A New Dictionary of Sociology,* Routledge &
- Kegan Paul, London
- सिहं जे0 पी0, (2008) समाजषास्त्र–अवधारणाएं एवं सिद्धान्त, पीएचआई लर्निग नई दिल्ली

- सच्चिदानन्द, (1964) कल्चर चेंज इन ट्राईबल, बुकलैंड लि0, कलकत्ता
- हारालाम्बोस एम0, (1998), सोषियोलोजी : थीम्स एण्ड प्रर्सपेक्टिव, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,
- नई दिल्ली
- टर्नर, जे0 एच0, (1916) स्ट्रक्चर आफ सोषियोलोजिकल थ्योरी, रावत पब्लिकेषन, जयपुर

10.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. पश्चिमीकरण को परिभाषित कीजिए एवं भारतीय समाज पर पश्चिमीकरण के प्रभावों का विश्लेषण कीजिए।

2. पश्चिमीकरण से आप क्या समझते हैं? भारतीय समाज में पश्चिमीकरण से होने वाले परिवर्तनों की चर्चा कीजिए।

3. पश्चिमीकरण के अर्थ को समझाइए तथा भारत के ग्रामीण जीवन पर पश्चिमीकरण के प्रभावों की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।

4. पश्चिमीकरण के प्रमुख तत्व क्या है, पश्चिमीकरण तथा सामाजिक परिवर्तन के संबध को स्पष्ट कीजिए।

5. भारत में किस देश को पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का माडॅल माना जाता है, व्याख्या कीजिए।

NOTES

इकाई – 11

आधुनिकीकरण
(Modernization)

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 आधुनिकीकरण

11.2.1 आधुनिकीकरण की परिभाषा एवं अर्थ

11.2.2 आधुनिकीकरण की विशेषतायें अथवा आधार

11.2.3 भारत में आधुनिकीकरण समाजशास्त्रियों की दृष्टि से

11.3 आधुनिकीकरण बनाम परम्परा

11.4 परम्परा तथा आधुनिकीकरण में सम्बन्ध

11.5 भारतीय समाज पर आधुनिकीकरण के प्रभाव

11.6 सारांश

11.7 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

11.8 पारिभाषिक शब्दावली

11.9 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

11.12 निबंधात्मक प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके द्वारा संभव होगा–

- आधुनिकीकरण की अवधारणा को समझना,
- आधुनिकीकरण के आधार ज्ञान की सामाजिकता को स्पष्ट करना,

- समाज में आधुनिकीकरण की विशेषताओं को बताना,
- समाज में आधुनिकीकरण को समाजशास्त्रियों की दृष्टि से व्याख्या करना,
- परम्परा व आधुनिकता में अन्तर को बताना,
- समाज पर आधुनिकीकरण के प्रभावों की चर्चा करना आदि,

11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई के खण्ड का उद्देश्य आधुनिकीकरण की अवधारणा को भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में समझना है। जिसमें आधुनिकीकरण की अवधारणा, परिभाषा, विशेषतायें, परम्परा बनाम आधुनिकता, आधुनिकीकरण का प्रभाव आदि का अध्ययन किया गया है। भारतीय समाज में आज परम्परा और आधुनिकीकरण की दोनों अवधारणायें साथ–साथ चल रही हैं। परम्परा में आधुनिकता के तथा आधुनिकता में परम्परा के तत्व इस तरह घुल मिल गए हैं कि किसी समाज में परम्परा और आधुनिकता के तुलनात्मक प्रभाव को देखकर ही यह ज्ञात किया जा सकता है कि परिवर्तन की वास्तविक प्रकृति कैसी है। परम्परात्मक समाजों में होने वाले परिवर्तनों या औद्योगीकरणों के कारण पश्चिमीं समाजों मे आए परिवर्तनों को समझने तथा दोनों से भिन्नता को प्रकट करने के लिए विद्धानों ने आधुनिकीकरण की अवधारणा को जन्म दिया है। एक तरफ जहा उन्होनें परम्परात्मक समाज को देखा, वहीं दूसरी ओर आधुनिक समाज को। पाश्चात्य विद्वान जब उपनिवेशों एवं विकासशील देशों में होने वाले परिवर्तनों को बताते है, तब वे आधुनिकीकरण की अवधारणा का सहारा लेते है। कुछ विद्वान आधुनिकीकरण को एक प्रकिया मानते है तो कुछ इसे प्रतिफल के रूप में मानते है। संसार के अनेक विकसित देश जहाँ अपनी परम्पराओं को छोड़कर आधुनिकीकरण की दिशा में काफी आगे बढ़ गये, वही भारतीय समाज में परम्परा और आधुनिकता का एक अनूठा मिश्रण देखने को मिलता है। एक और अधिकांश भारतीयों का जीवन जहाँ कर्म और पुर्नजन्म सम्बन्धी विश्वासों, परलोक की अवधारणा, शुभ और अशुभ के सांस्कृतिक मूल्यों, पवित्रतावादी विचारों तथा जाति के नियमों जैसी परम्पराओं से प्रभावित है, वहीं दूसरी ओर, प्रोद्योगिक विकास, नगरीकरण, लोकतांत्रिक मूल्यों, धर्म निरपेक्षता तथा तर्कपूर्ण व्यवहारों का भी प्रभाव तेजी से बढ़ता जा रहा है। आइए अब हम यहा आधुनिकीकरण की परिभाषा व अर्थ को जानने का प्रयास करते है।

11.2 आधुनिकीकरण

11.2.1 आधुनिकीकरण की परिभाषा एवं अर्थ–

एम0एल0गुप्ता व डी0डी0शर्मा0 (2006) वर्तमान समाज परिवर्तन के एक ऐसे दौर से गुजर रहे हैं जिसमें अनेक ऐसी व्यवस्थाओं, सामाजिक मूल्यों और व्यवहार के तरीकों को प्रोत्साहन मिलने लगा है जो उनकी परम्परागत विशेषताओं से काफी अलग है। इसलिए अनेक समाजशास्त्री इस पक्ष में हैं कि किसी समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया को समझना है तो उस समाज में आधुनिकीकरण की विशेषताएँ कितनी बढ़ी हैं अथवा आधुनिकीकरण के साथ परम्पराओं का प्रभाव किस सीमा तक बना हुआ है इसको भी समझना चाहिए। अर्थात आधुनिकीकरण के अर्थ को स्पष्ट करके इसे परम्परा की तुलना में समझने का प्रयत्न करना चाहिए। वर्तमान समय में हम दैनिक जीवन में 'आधुनिक' अथवा 'आधुनिकीकरण' शब्द का प्रयोग बहुत करते हैं जैसे– आधुनिक शिक्षा, आधुनिक ज्ञान, आधुनिक संस्कृति अथवा आधुनिक मूल्य ऐसे शब्द है जिनका प्रयोग हम किसी भी उस दशा के लिए कर देते है जो अपने परम्परागत रूप से भिन्न होती है। जबकि कुछ व्यक्ति यह समझते हैं कि पश्चिमी देशों की तरह वेशभूषा, खान–पान, सामाजिक व्यवहार तथा व्यावसायिक क्रियाएँ वे विशेषताएँ हैं जिन्हें आधुनिकीकरण कहा जा सकता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से आधुनिकीकरण का अर्थ ऐसे सामान्य अर्थ से बिल्कुल अलग है। परिवर्तनशील मूल्यों का समावेश होता है। यह परिवर्तनशील मूल्य विकास, सार्वभौमिकता तथा तार्किकता की दिशा में होते हैं। विभिन्न विद्वानों ने इसी आधार पर आधुनिकीकरण की अवधारणा को निम्नांकित रूपों में परिभाषित किया है। जिसे हम निम्न परिभाषित रूपों में समझने का प्रयास करते है।

एस. सी. दुबे के अनुसार, '' आधुनिकीकरण परिवर्तन का एक विशेष रूप है जो सामाजिक संरचना, मूल्य उन्मेष, प्रेरणा तथा कुछ विशेष प्रतिमानों से सम्बन्धित होता है'' अर्थात किसी समाज में परिवर्तन जब इस तरह होने लगता है कि सामाजिक संरचना, सामाजिक मूल्यों तथा व्यवहार के तरीकों में तार्किकता, समानता, गतिशीलता और सहभागिता के तत्व बढ़ने लगते हैं, तब ऐसे परिवर्तन को आधुनिकीकरण कहा जाता है। आपने अपनी पुस्तक **'Contemporary India and Its Modernization'** में भारत के संदर्भ में आधुनिकीकरण की प्रकिया को समझाने का प्रयास किया है। वे शिक्षा को आधुनिकीकरण का सशक्त साधन मानते है, क्योंकि शिक्षा ज्ञान की वृद्वि करती है एवं मूल्यों तथा धारणाओं में परिवर्तन लाती है जो आधुनिकीकरण के उदद्श्यों तक पहुचनें के लिए आवश्यक है।

मैरियन जे. लेवी – के अनुसार, ''आधुनिकीकरण की परिभाषा शक्ति के जड़ स्रोतों के उपयोग तथा इससे सम्बन्धित प्रयत्नों के प्रभाव को बढाने के लिए उपकरणों के

उपयोग से सम्बन्धित है।'' अर्थात आधुनिकीकरण एक ऐसा परिवर्तन है जिसमें शक्ति के जड़ स्रोतों, जैसे– खनिज पदार्थों, जल–शक्ति तथा ऊर्जा के उपयोग में अधिकाधिक वृद्धि होती है।

डॉ. योगेन्द्र सिंह ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Modernization of Indian Tradition" में लिखा कि, आधुनिकीकरण सांस्कृतिक क्रियाओं का एक विशेष रूप है जिसमें मुख्य रूप से सार्वभौमिक और विकासवादी लक्षणों का समावेश होता है यह लक्षण अतिमानवता से सम्बन्धित होने के साथ ही सजातीयता और वैचारिक आधार से परे हैं। अर्थात आधुनिकीकरण भी संस्कृति का ही एक विशेष पक्ष है, यद्यपि इससे एक ऐसे परिवर्तन का बोध होता है जो परम्पराओं के विषम विकास के रूप में देखने को मिलता है। वे आधुनिक होने का अर्थ फैशनेबल से लेते है।

एम.एन. श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक 'Social Change in Modern India' (1966) में आधुनिकीकरण के संबन्ध में अपने विचार व्यक्त किये है। इनके अनुसार आधुनिक होने का अर्थ अधिकाशंत अच्छाई से लिया जाता है। वे डेनियल लर्नर से सहमत होते हुए लिखते है, ''किसी गैर – पश्चिमी देश में एक पश्चिमी देश के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले परिवर्तन का नाम ही आधुनिकीकरण है। आप आधुनिकीकरण में बढता हुआ नगरीकरण, साक्षरता का प्रसार, प्रति व्यक्ति आय वृद्धि, व्यस्क मताधिकार तथा तर्क का विकास आदि।

अतः उपर्युक्त अवधारणा से स्पष्ट होता है कि आधुनिकीकरण परिवर्तन की एक जटिल प्रक्रिया है जो किसी परम्परागत अथवा पिछड़े हुए समाज में प्रोद्योगिक विकास, धर्मनिरपेक्षता, लौकिकता, स्वतंन्त्रता एवं गतिशीलता जैसी विशेषताओं के प्रभाव में वृद्धि करने से संबन्धित है। यह अवधारणा हमें परम्परात्मक समाजों में होने वाले परिवर्तनों को समझने में मदद देती है।

11.2.2 आधुनिकीकरण की विशेषतायें अथवा आधार

जी0 के0 अग्रवाल (2010) आधुनिकीकरण की अवधारणा को और स्पष्ट समझने के लिए इसकी विशेषताओं अथवा आधारों को समझना आवश्यक है, जिनका उल्लेख विभिन्न विद्वानों ने निम्न किया है–

डेनियल लर्नर ने अपनी पुस्तक 'The Passing of Traditional Society' में आधुनिकीकरण की पाँच मुख्य विशेषताए आधार रूप में बतायी है–

- समानता, स्वतन्त्रता तथा लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित नगरीयता में वृद्धि,
- संचार के साधनों में वृद्धि तथा शिक्षा का प्रसार,

- आर्थिक और राजनीतिक जन – सहभाग में वृद्धि,
- सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि,
- धर्मनिरपेक्ष और तर्कपूर्ण विचारों में वृद्धि।

अतः किसी समाज में जब ये पाँच विशेषताएं स्पष्ट होने लगती हैं, तब वह समाज परम्परा से आधुनिकता की ओर बढ़ता जाता है।

एलेक्स इन्केल्स ने अनेक आधुनिक समाजों का अध्ययन किया और आधुनिकीकरण की दस मुख्य विशेषताओं का उल्लेख किया है–

- नये विचारों के लिए स्वीकृतति,
- विभिन्न कार्यों के लिए नयी पद्धतियों का उपयोग,
- लोगों द्वारा विभिन्न विषयों पर अपने विचार देने की तत्परता,
- समय के अनुसार व्यवहारों में परिवर्तन,
- अतीत की अपेक्षा वर्तमान और भविष्य में अधिक रूचि लेना,
- समय की नियमितता को महत्व देना,
- कार्य कुशलता का बढाने के प्रति सचेत रहना,
- विश्व के प्रति एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना,
- विज्ञान और प्रौद्यौगिकी को उपयोग में लाना,
- सामाजिक न्याय को महत्व देना।

एम.एन.श्रीनिवास, ए. आर. देसाई, शिल्स तथा **बी.बी. शाह** ने आधुनिकीकरण की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए इसकी अनेक विशेषताओं अथवा आधारों का उल्लेख किया है। जिनके आधार पर उन कारकों अथवा दशाओं को भी समझा जा सकता है जो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में वृद्धि करती हैं। ये आधार निम्न है–

- **नगरीकरण में वृद्धि** – आधुनिकीकरण का मुख्य आधार समाज में बढता हुआ नगरीकरण है। आधुनिकीकरण की दशा में केवल ग्रामीण क्षेत्र नगरों के रूप में ही नहीं बदलते बल्कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें नगरीयता से सम्बन्धित मनोवृतियाँ प्रभावपूर्ण बनने लगती हैं। शिक्षा के प्रति लोगों की रूचि बढना, तर्क

के आधार पर काम करना, जीवन के प्रति अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना तथा परलौकिक विश्वासों की जगह वर्तमान जीवन को अधिक महत्व देना आदि।

- **प्रौद्योगिक विकास** – आधुनिकीकरण की एक मुख्य विशेषता प्रौद्योगिक विकास के द्वारा सामाजिक –आर्थिक जीवन में परिवर्तन होना है। अर्थात समाज में जब परिवर्तन और संचार, कृषि और औद्यौगिक उत्पादन तथा दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित नये नये आविष्कारों के द्वारा विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है, तब इस प्रक्रिया को आधुनिकीकरण कहा जाता है।

- **बढ़ती हुई गतिशीलता** – विभिन्न क्षेत्रों में गतिशीलता का बढ़ना आधुनिकीकरण का एक प्रमुख लक्षण है। इस सम्बन्ध में **लर्नर** ने लिखा है, ''एक गतिशील समाज वह है जिसमें तर्क और विवेक को प्रोत्साहन मिलता है तथा लोगों के व्यवहार उनकी अपनी रूचियों से प्रभावित होने लगते हैं। व्यक्ति वह विश्वास करने लगते हैं कि उनका भविष्य पूर्व निर्धारित नहीं है बल्कि उनकी कुशलता पर निर्भर है''। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिकीकरण की दशा में व्यक्तियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति प्रदत्त नहीं बल्कि अर्जित होती है। जिसके परिणामस्वरूप समाज में गतिशीलता बढ़ती है।

- **वैयक्तिक आकांक्षाओं को मान्यता** – सामाजिक विकास के लिए वैयक्तिक आकांक्षाओं को राज्य और समाज द्वारा मान्यता दी जाती है। आधुनिकीकरण की दशा में लोगों का यह विश्वास दृढ़ होने लगता है कि व्यक्तिगत आकाक्षांओं को मान्यता देने से ही लोगों की अधिक परिश्रमी, योग्य और साहसी बनाया जा सकता है। हमारे व्यवहार जैसे–जैसे व्यक्तिगत आकांक्षाओं से प्रभावित होते हैं, समाज में व्यक्तिगत स्वतंन्त्रता का महत्व बढ़ने लगता है। इससे लोगों की मनोवृतियों में परिवर्तन होने के साथ ही ऐसे अविष्कार भी होने लगते हैं जो व्यक्तिगत कुशलता को बढावा देते है।

- **लोकतान्त्रिक मूल्यों में वृद्धि** – आधुनिकीकरण का एक आधार जनसाधारण द्वारा लोकतान्त्रिक मूल्यों में विश्वास करना और उन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना है। सामाजिक समानता, धर्मनिरपेक्षता, विचारों की स्वतन्त्रता, मताधिकार का उपयोग जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर जागरूकता तथा अपने अधिकारों के प्रति चेतना कुछ विशेष लोकतान्त्रिक मूल्य हैं। इन मूल्यों दिशा की ओर होने वाला परिवर्तन ही आधुनिकीकरण है।

- **परिवर्तन में रूचि** – आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एक ऐसी स्थिति का बोध कराती है जिसमें परिवर्तन का स्वागत करना जीवन शैली का अंग बन जाता है। इस सन्दर्भ में प्रोफेसर योगेन्द्र सिंह ने लिखा है कि आधुनिकीकरण से सम्बन्धित परिवर्तन का किसी वैचारिकी पर आधारित होना आवश्यक नहीं होता। इसका तात्पर्य है कि परिवर्तन को स्वीकार करना ही आधुनिकीकरण की विशेषता है, इन परिवर्तनों का सदैव उपयोगी या वैचारिक होना आवश्यक नहीं होता।

- **लौकिक मूल्यों की प्रधानता** – आधुनिकीकरण परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जिसमें पारलौकिक मूल्यों की जगह लौकिक अथवा सांसारिक मूल्यों का अधिक महत्व होता है। इसके फलस्वरूप मोक्ष की जगह सांसारिक सफलताओं को अधिक महत्व मिलने लगता है; पवित्रता और अपवित्रता का सम्बन्ध स्वास्थ्य के तार्किक नियमों से हो जाता है।

अतः आधुनिकीकरण की उपयुर्क्त उल्लेखित विशेषताएं/आधारों से स्पष्ट हो जाता है कि ये मानदण्ड हैं जिनके आधार पर यह समझा जा सकता है कि किसी समाज में परम्परा व आधुनिकीकरण का प्रभाव कितना है। अर्थात वह आधुनिकीकरण की दिशा में कितना आगे बढ़ सका है। इसप्रकार आप यहा जान गये होंगे कि आधुनिकीकरण परिवर्तन का एक विशेष प्रतिमान है।

11.2.3 भारत में आधुनिकीकरण समाजशास्त्रियों की दृष्टि से–

डा0 एस0 सी0 दुबे के अनुसार– दुबे के अनुसार भारत में परम्परा और आधुनिकता विरोधाभास के रूप में मोजूद है। धर्म निरपेक्षता के मार्ग में पवित्रता व अपवित्रता की प्राचीन धारणा बाधक रही है। प्रदत्त और अर्जित पदो का तालमेल नहीं बैठ पाया है। परम्परा प्रदत्त पदों को चाहती है और अर्जित पदों को आधुनिकता बल प्रदान करती है। आधुनिकता तटस्थता चाहती है तो परम्परा भावात्मकता को। आज का भारत परम्परा और आधुनिकता की दुविधा में बंधा हुआ है, क्योंकि वह परम्परा को किस सीमा तक छोडे व आधुनिकता को किस सीमा तक अपनाये। डा0 एस0 सी0 दुबे ने परिवार, जाति, स्थानीयता व धर्म आदि के संदर्भ में आधुनिकीकरण का उल्लेख किया है। परिवार मे व्यक्तिवाद उभरा है, समूह में लिंग, आयु व संबध के आधार पर अधिकार का निर्धारण न होकर योग्यता, अनुभव तथा ज्ञान के आधार पर होता है। संयुक्त परिवार के सदस्यों के पारस्परिक संबध बदले है, स्त्रियों का महत्व व अधिकार परिवार में बढा है। जातियों का नया रूप सामने आ रहा है तथा धर्म में कर्मकाण्डियता व भाग्यवादिता में

स्वप्रगति परीक्षण

1. डेनियल लर्नर ने अपनी पुस्तक The Passing of Traditional Society में आधुनिकीकरण की किन पाँच विषेषताओं को आधार रूप में बतायी है?
2. बढ़ती हुई गतिषीलता के बारे में लर्नर ने क्या लिखा है?
3. डॉ. योगेन्द्र सिंह ने भारत में आधुनिकीकरण के बारे में क्या स्पष्ट किया है?

विश्वास कम हुआ है। नयी तकनीकि समाज में सामने आयी है। अतः स्पष्ट है कि दुबे के विचारों में भारतीय समाज परम्परा और आधुनिकता के बीच सहमा हुआ खडा है, एक और अतीत का आर्कषण है तो दूसरी ओर प्रगति की अनिवार्यता।

डा0 योगेश अटल के अनुसार– भारत में परम्परा और आधुनिकता साथ साथ चल रहे है। वे इसे परिवार के उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते है कि नई शिक्षा व व्यवसाय के कारण लोग शहरों में आकर रह रहे है। जिससे परिवारिक व्यवस्था में परिवर्तन आये है। परिवारिक सदस्यगण विवाह, त्यौहार व उत्सव आदि पर मिलते है। आयकर के कारण दुकानो के खाते अलग–अलग सदस्यों के नाम से चलते है। घर व आफिस की पौशाको में भी अन्तर पाया जाता है। आफिस से वापिस आने के बाद अपनी पौशाक को लोग अधिकत्तर आधुनिकता के साथ ही उतार देते है व अपनी पुरानी परम्परा की पौशाक धारण कर लेते है। स्त्रियां घर में परम्परात्मक है तो वे आधुनिक प्रसाधनों का भी प्रयोग कर रही है। इसप्रकार परम्परा और आधुनिकता समाज में साथ–साथ चलती है।

डा0 रूडोल्फ व रूडोल्फ के अनुसार– भारत समाज में अंग्रजों ने आधुनिकीकरण की नींव रखी है। उन्होंनें भारत को नयी अर्थव्यवस्था और राजनीतिक एकता प्रदान की है। प्रेस व नई शिक्षा तकनीकि ने नये शिक्षित वर्ग को जन्म दिया है व कृषि क्रान्ति ने नई क्रान्ति ला दी है। जिसके परिणामस्वरूप जाति व्यवस्था आधारित समाज में परिवर्तन आये है। एक तरफ जाति ने प्राचीन ग्राम्य व्यवस्था को बनाये रखा तो दुसरी ओर प्रजातन्त्र को भी। भारत में जाति संबध तीन रूपों में देखने को मिलते है– उद्रग गतिशीलता, क्षैतिज गतिशीलता व विभेदमूलक गतिशीलता। इसके साथ ही कानून व न्याय व्यवस्था आदि का भी उल्लेख किया है और कहा कि आधुनिकता के सकारात्मक पक्ष सामने आये है तो कुछ नकारात्मक पक्ष भी सामने आये है।

डॉ. योगेन्द्र सिंह ने बताया कि साधारण आधुनिक होने का अर्थ फैशनेबल से लगाया जाता है। वे आधुनिकीकरण को एक सांस्कृतिक प्रत्यय मानते है जिसमें तार्किक अभिवृति, सार्वभौमिक दृष्टिकोण, परानुभूति, मानवता, प्रौद्यौगिक प्रगति आदि सम्मिलित है। वे आधुनिकीकरण पर एक किसी नृजातीय समूह या सांस्कृतिक समूह का स्वामित्व नहीं मानते वरन् संपूर्ण मानव समाज का अधिकार मानते है। वे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ***Modernization of Indian Tradition"*** में लिखते है कि, आधुनिकीकरण सांस्कृतिक क्रियाओं का एक विशेष रूप है जिसमें मुख्य रूप से सार्वभौमिक और विकासवादी लक्षणों का समावेश होता है यह लक्षण अतिमानवता से सम्बन्धित होने के

साथ ही सजातीयता और वैचारिक आधार से परे हैं। अर्थात आधुनिकीकरण भी संस्कृति का ही एक विशेष पक्ष है, यद्यपि इससे एक ऐसे परिवर्तन का बोध होता है जो परम्पराओं के विषम विकास के रूप में देखने को मिलता है। वे आधुनिक होने का अर्थ फैशनेबल से लेते है।

एम.एन. श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक ***'Social Change in Modern India'*** (1966) में आधुनिकीकरण के संबन्ध में अपने विचार व्यक्त किये है। आप आधुनिक होने को एक तटस्थ शब्द नही मानते है। वे कहते है कि आधुनिक होने का अर्थ अधिकाशंत अच्छाई से लिया जाता है। पश्चिमी देश के प्रत्यक्ष या परोक्ष संपर्क के कारण किसी गैर पश्चिमी देश में होने वाले परिवर्तनो के लिए प्रचलित शब्द आधुनिकीकरण है। आप आधुनिकीकरण में बढता हुआ नगरीकरण, साक्षरता का प्रसार, प्रति व्यक्ति आय वृद्धि, व्यस्क मताधिकार तथा तर्क का विकास आदि को सम्मिलित करते है। श्रीनिवास ने आधुनिकीकरण के तीन प्रमुख क्षेत्र बताये है– भौतिकी संस्कृति का क्षेत्र, सामाजिक संस्थाओ का क्षेत्र व ज्ञान मूल्य व मनोवृतियों का क्षेत्र। ये तीनों क्षेत्र ऊपरी तौर पर अलग–अलग मालूम पढते है, लेकिन ये एक–दूसरे से संबन्धित है। किसी एक क्षेत्र में होने वाला परिवर्तन दूसरे को भी प्रभावित करता है।

अतः विभिन्न विद्धानों के विचारों से आपको यह स्पष्ट हो गया कि भारतीय समाज विभिन्नता लिए हुये है। भारतीय समाज में अधिकांशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, जिसमें कि अनेक परम्पराये विद्यमान है लेकिन इन परम्पराओं के साथ अब वे आधुनिकता को भी अनेक कारणों से अपना रहे है और अपने विचार उस ओर कर रहे है। इसप्रकार भारतीय समाज में परम्परा व आधुनिकता दोनो साथ–साथ चल रही है।

बोध प्रश्न–1

i) "Modernization of Indian Tradition" पुस्तक का लेखक कौन है

.अ) एस0 सी0 दुबे

ब) योगेन्द्र सिंह

स) दुर्खीम

द) उपरोक्त में से कोई नही।

ii) यह कथन किसका है ''आधुनिकीकरण परिवर्तन का एक विशेष रूप है जो सामाजिक संरचना, मूल्य उन्मेष, प्रेरणा तथा कुछ विशेष प्रतिमानों से सम्बन्धित होता है'' ?

NOTES

.....

.....

.....

iii) मैरियन जे. लेवी के अनुसार आधुनिकीकरण को परिभाषित कीजिए ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

iv) **डेनियल लर्नर** के अनुसार आधुनिकीकरण की कोई दो मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

v) **एलेक्स इन्केल्स** के अनुसार आधुनिकीकरण की कोई चार मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

vi) आधुनिकीकरण के चार प्रमुख आधारों को बताइये।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.3 आधुनिकीकरण बनाम परम्परा

प्रत्येक समाज में ये दोनों अवधारणायें साथ–साथ चलती है। समाज में परम्परा जहा स्थिरता का बोध कराती है, वहीं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तनशीलता का बोध कराती है। इस संबध में **मिल्टन सिंगर** कहते है कि परम्परा तथा आधुनिकीकरण दो ऐसे प्रतिमान हैं जिनमें से किसी का भी विशुद्ध रूप किसी समाज में देखने को नहीं मिलता। अर्थात न तो कोई समाज पूरी तरह परम्परागत होता है और न ही किसी समाज की सभी विशेषताएं आधुनिकीकरण से सम्बन्धित होती हैं। अतः इस दृष्टि से परम्परा तथा आधुनिकीकरण के अन्तर को केवल तुलानात्मक आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है। जो कि निम्न दर्शाया गया है, जिसे पढकर आप दोनों के अन्तर को भलीभॉति समझ सकेंगें।

1. परम्परा का सम्बन्ध स्वदेशी संस्कृति से है। इसके विपरीत, आधुनिकीकरण विदेशी संस्कृतियों के सम्मिश्रण का परिणाम है।

2. परम्परा सामाजिक स्थिरता और स्थायित्व का बोध करती है। क्योंकि इसमें उन्हीं विशेषताओं को ग्रहण करने बल दिया जाता है जो एक लम्बे समय से समाज में प्रचलित रही हों। जबकि आधुनिकीकरण में गतिशीलता का समावेश होता हैं।

NOTES

यह व्यक्ति को समय और परिस्थिति के अनुसार तार्किक आधार पर व्यवहार करने को बल प्रदान करती है।

3. लर्नर ने आधुनिकीकरण की विवेचना कुछ ऐसे व्यवहारों ओर मनोवृत्तियों से कि है, जो उपभोग, उत्पादन, रहन–सहन तथा व्यवहार के क्षेत्र में नवाचारों तथा नयी प्रौद्योगिकी के उपयोग को महत्व देती हैं। जबकि परम्परा को एक ऐसा पर्यावरण कहा जा सकता है जो नवीनता का विरोध करके यथा–शक्ति को अधिक महत्व देती है।

4. ऐतिहासिक दृष्टिकोण से परम्परा सामाजिक जीवन का स्त्रोत है, जबकि आधुनिकीकरण को एक व्युत्पति कहा जा सकता है। अर्थात विकास के आरम्भिक स्तर पर परम्परा सभी समाजों की एक अनिवार्य विशेषता होती है। जबकि आधुनिकीकरण की दशा एक बाद की घटना है। परम्पराएँ जब विकास में बाधक बनने लगती हैं अथवा समाज में तर्क और ज्ञान का प्रभाव बढ़ जाता है, केवल तभी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रभावपूर्ण बनती है।

5. आधुनिकीकरण की तुलना में परम्परा का क्षेत्र अधिक व्यापक होता है। जीवन का छोटे से छोटा कोई क्षेत्र ऐसा नहीं होता जो परम्परा से सम्बन्धित न होता हो। इसके विपरीत, आधुनिकीकरण पश्चिमी मूल्यों तथा नयी प्रौद्योगिकी पर आधारित एक विशेष ढंग है जो हमारे जीवन के कुछ पक्षों को ही प्रभावित करती है।

6. परम्परा का विकास एक स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में होता है। प्रत्येक पीढी सामाजिक सीख के द्वारा अपनी परम्पराओं को आगामी पीढी के लिए हस्तान्तरित कर देती हैं। जबकि आधुनिकीकरण से सम्बन्धित विशेषताओं का आगामी पीढियों के लिए होने वाला संचरण बिल्कुल उसी रूप में नहीं होता। प्रत्येक पीढी के अनुभवों, ज्ञान और आकांक्षाओं के अनुसार आधुनिकीकरण से सम्बन्धित तत्वों को व्यैक्तिक कुशलता और प्रयत्नों के द्वारा ही ग्रहण किया जा सकता है।

7. परम्परा सरल समाजों की विशेषता है, जबकि आधुनिकीकरण का प्रभाव बढने के साथ ही समाज का रूप जटिल होता है।

8. परम्परा एक बन्द सामाजिक व्यवस्था को प्रोत्साहन देती है तथा इसके द्वारा जन्म, वंश या व्यवसाय के आधार पर व्यक्ति की प्रस्थिति का निर्धारण किया जा सकता है। जबकि आधुनिकीकरण की दशा में एक खुले हुए सामाजिक

स्तरीकरण को मान्यता मिलती है। इसमें व्यक्ति को मिलने वाली प्रस्थिति उसकी योग्यता, कुशलता और प्रयत्नों से निर्धारित होती है।

9. डॉ. योगेन्द्र सिह का विचार है कि परम्परा में स्थानीयता, सजातीयता ओर एक विशेष वैचारिकी पर आधारित व्यवहारों का अधिक महत्व होता है। आधुनिकीकरण वह दशा है जिसमें सार्वभौमिकता, विजातीयता और वैचारिक तटस्थता पायी जाती है।

11.4 परम्परा तथा आधुनिकीकरण में सम्बन्ध

परम्परा और आधुनिकीकरण की प्रकृति एक दूसरे से भिन्न अवश्य है लेकिन यह दोनों परस्पर संबन्धित और एक–दूसरे पर निर्भर हैं, बिना एक के दुसरे की व्याख्या नही की जा सकती है। संसार का कोई भी समाज न तो पूरी तरह परम्परावादी है ओर न ही पूर्णरुप से आधुनिक है। किसी समाज को हम दूसरे की तुलना में ही एक परम्परागत अथवा आधुनिक समाज कहते हैं। इंग्लैण्ड और भारत की तुलना करते समय हम इंग्लैण्ड को एक आधुनिक समाज और भारत को परम्परागत समाज कहते हैं लेकिन अफ्रीकी देशों से तुलना करने पर भारतीय समाज कई अधिक आधुनिक प्रतीत होने लगता है। इस दशा को स्पष्ट करते हुए **प्रोफेसर शिल्स** ने लिखा है, ''परम्परा और आधुनिकीकरण के बीच कोई गहरी खाई नहीं है। कोई समाज न तो पूरी तरह से परम्परागत होता है ओर न ही आधुनिक समाज अपनी प्रकृति से पूरी तरह मुक्त अथवा खुली प्रकृति के होते हैं। परम्परा ओर आधुनिकीकरण के परस्पर सम्बन्ध अथवा अन्तर्निभरता को निम्नांकित आधारों पर समझा जा सकता है।

1. परम्परा तथा आधुनिकीकरण दो तुलनात्मक दशाएँ हैं। सामान्य अवलोकन से जो विशेषता आधुनिक प्रतीत होती है, किसी दूसरे समाज अथवा विशेषता से तुलना करने पर वही दशा परम्परावादी दिखायी देने लगती है। जैसे–भारतीय समाज में यदि हम ब्राह्मण जातियों की निम्न जातियों से तुलना करें तो ब्राह्मण निम्न जातियों के लिए एक आधुनिक वर्ग था। दूसरी ओर, जब हम ब्रिटिश अधिकारियों के नीचे काम करने वाले ब्राह्मण की स्थिति का मूल्यांकन करते हैं तो ब्राह्मण जातियां बहुत परम्परावादी लगने लगती हैं।

2. प्रत्येक समाज में परम्परा और आधुनिकीकरण के तत्व साथ साथ विद्यमान रहते हैं। जिन पिछड़े या जनजातीय समाजों को हम पूरी तरह परम्परावादी समझते हैं,

उनमें भी परिवर्तन, गतिशीलता, नवाचारों और प्रौद्योगिक विकास के कुछ न कुछ लक्षण अवश्य पाये जाते हैं। जबकि अमरीका, इंग्लैण्ड और जापान जैसे आधुनिक समाजों में भी ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं होती जो परिवर्तन का विरोध करके स्थानीय और जातीय विश्वासों से जकड़े रहते हैं। अतः प्रत्येक समाज में परम्परा और आधुनिकीकरण के तत्व साथ साथ विद्यमान रहते हैं।

3. परम्परा तथा आधुनिकीकरण का सम्बन्ध इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि किसी समाज में आधुनिकीकरण में चाहे कितनी भी वृद्धि हो जाये, व्यक्तियों के व्यवहार किसी न किसी रूप में उनकी परम्पराओं से अवश्य प्रभावित होते रहते हैं। जैसे– भारतीय समाज में आधुनिकीकरण के फलस्वरूप एकाकी परिवारों की संख्या में बहुत वृद्धि हो जाने के बाद भी भारतीय परिवार के सदस्य संयुक्त नातेदारी के बन्धनों से आज भी बँधे हुए हैं। विभिन्न अवसरों पर संस्कारों की पूर्ति को आवश्यक समझा जाता है। त्यौहारों और धार्मिक आयोजनों के अवसर पर निकट सम्बन्धी एक स्थान पर एकत्रित होकर अपनी घनिष्ठता प्रदर्शित करते हैं। अतः आधुनिकता में वृद्धि होने से परम्पराओं के प्रभाव का लोप नहीं हो जाता है।

4. **ब्राउन** का कथन है कि परम्परा और आधुनिकीकरण इस आधार पर सम्बन्धित हैं कि आधुनिकीकरण के विकास में परम्परा सदैव बाधक नहीं होती। भारत में कुछ समय पहले तक जातिगत विभेद, पारलौकिक विश्वास, कर्म का सिद्धान्त और स्थानीय विश्वास हमारी कुछ प्रमुख परम्पराएँ थीं। स्वतंत्रता के बाद जब सामाजिक, आर्थिक, राजनेतिक जीवन में आधुनिकीकरण का प्रभाव बढ़ने लगा तो इन परम्पराओं में आपने आप परिर्वतन के तत्व स्पष्ट होने लगे।

5. रेडफील्ड ने **लघु तथा वृहत् परम्पराओ** के सम्बंध के आधार पर परम्परा तथा आधुनिकीकरण के पारस्परिक सम्बंध को स्पष्ट किया हैं। समाज में वृहत परम्पराओ में आधुनिकीकरण के लक्षणो की प्रधानता होती है, जबकी लघु परम्पराओ में स्थानीय विश्वासो का अधिक समसवेश होता है। इसके बाद वुहत परम्पराएँ छोटी–छोटी परम्पराओ को संरक्षण देती है, जबकी स्थानीय परम्पराए मिलकर वृहत परम्पराओ के प्रभाव को बनाये रखती है। होली, दशहरा, दीपावली तथा क्रिसमस विभिन्न धर्मो की कुछ वृहत् परम्पराएँ हैं। जो समानता, बन्धुत्व, तार्किकता और राष्ट्रीयता जैसे आधुनिक मूल्यों को प्रोत्साहन देती हैं। इसका

तात्पर्य है कि धार्मिक क्षेत्र में भी परम्परा तथा आधुनिकता के तत्वों को एक दूसरे से पूरी तरह अलग नहीं किया जा सकता है।

अतः आप यहा उपरोक्त विवरण से स्पष्ट समझ गये होंगे कि परम्परा के अन्दर आधुनिकीकरण के तथा आधुनिकीकरण के अन्दर परम्परा के तत्व हमेशा विघमान रहते हैं। जिससे ये दोनों एक दूसरे से संबधित है।

11.5 भारतीय समाज पर आधुनिकीकरण के प्रभाव

आइये अब हम यहा भारतीय समाज पर आधुनिकीकरण के प्रभाव को जानने का प्रयास करते है–भारतीय समाज आज आधुनिकीकरण की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है। यहा यह जानना आवश्यक हो जाता है कि भारतीय समाज को आधुनिकीकरण ने किस प्रकार प्रभावित किया है अथवा आधुनिकीकरण के प्रमुख परिणाम क्या–क्या हैं? इन प्रभावो अथवा परिणामो को समझने से पहलें उन दशाओ या कारको पर ध्यान देना आवश्यक है, जिन्होने भारत में आधुनिकीकरण को प्रोत्साहित किया। एम0 एन0 श्रीनिवासन का मानना है कि बिट्रिश शासन काल के दौरान पश्चिमीकरण की प्रकिया वह सबसे महत्वपूर्ण आधार है जिसके परिणामस्वरूप यहा आधुनिकीकरण का प्रभाव बढना प्रारम्भ हुआ । प्रो0 योगेन्द्र सिंह मानते है कि भारत मे पश्चिमीकरण के प्रभाव से राष्ट्रीयता की जिस भावना को बल मिला है उसी के फलस्वरूप यहॉ आधुनिकीकरण की प्रकिया में तेजी आयी है। भारत में स्वतन्त्रता के बाद जिस नई सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था का विकास हुआ। उसी को आधुनिकीकरण में होने वाली वृद्धि का सबसे प्रमुख कारण माना जा सकता है। **आइए यहा हम भारतीय समाज पर आधुनिकीकरण के प्रभाव को निम्नांकित क्षेत्रों में देखने का प्रयास करते है–**

प्रौद्योगिक विकास–भारत मे आधुनिकीकरण का सर्वप्रमुख परिणाम प्रौद्योगिक विकास के रूप मे देखने को मिलता है। प्रौद्यौगिक विकास की प्रकिया ब्रिट्रिश शासन काल के दौरान ही आरम्भ हुई। स्वतन्त्रता के बाद आर्थिक नियोजन के द्वारा इसमे बहुत अधिक वृद्धि हुई। आज भारत मे सूती कपडो, रासायनिक खादो, सीमेण्ट, जूट आदि मशीनों के बडे–बडे कारखाने स्थापित हो चुके है। अणु शक्ति के क्षेत्र में भी भारत एक आत्मर्निभर देश बन चुका है। प्रौद्योगिक विकास के साथ विभिन्न प्रकार के व्यवसांयो मे भी इतनी वुद्धि हुई है कि हमारे समाज में अनेक संरचनात्मक परिर्वतन होने लगे है

और नगरीय जनसंख्या के प्रतिशत में लागातार वृद्धि होने लगी है। जिसका प्रभाव भारतीय समाज में देखने को मिलता है।

कृषि क्षेत्र में प्रभाव– आधुनिकता एक स्पष्ट प्रभाव गांवों में कृषि की नयी प्रविधियों का बढ़ता हुआ उपयोग है। अब अधिकांश ग्रामीण, ट्रैक्टर, कल्टीवेटर, पम्पिंग सैटों, थ्रेशर तथा रूटर आदि का प्रयोग करके कृषि उत्पादन में नये साधनों का प्रयोग बढ़ाने में लगे हुए हैं। अधिकांश किसानों द्वारा उन्नत बीजों, कीटनाशक दवाओं और रासायनिक खादों का उपयोग किया जाता है। ग्रामीण, विकास अधिकारियों के सम्पर्क करके ऐसी सभी जानकारियां लेने का प्रयत्न करते हैं। जिनकी सहायता से कृषि उत्पादन में वृद्धि हो सके।

जीवन स्तर में गुणवत्ता– भारत में भूमी सुधारो तथा विभिन्न विकास कार्यकमो के फलस्वरूप जीवन के सभी पक्षो में आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन मिला है। ग्रामीण क्षेत्रो मे कृषि उत्पादन बढाने से प्रति व्यक्ति आय में वुद्धि हुई। नगरीय क्षेत्रों में नयी प्रौद्योगिकी पर आधारित वस्तुओं का अधिकाधिक उपयोग किया जाने लगा। कुछ समय तक समाज के जो दुर्बल वर्ग जीवन की अनिवार्य सुविधाएं पाने से भी वंचित थे, उनमें भी चीनी और स्टील के बर्तनों का उपयोग बढ़ने लगा है। उनकी वेश–भूषा तथा खान–पान के स्तर में व्यापक सुधार हुआ। मोटर साइकिल, टी0वी0, घड़ी, ट्रांजिस्टर, प्रेशर कुकर, गैस के चूल्हों और सौन्दर्य प्रसाधनों का उपयोग समाज के दुर्बल वर्गों में सामान्य होता जा रहा है। ग्रामों में भी विवाह और दूसरे आयोजनों के समय साज–सज्जा को विशेष महत्व मिलने लगा है। जीवन–स्तर में होने वाला यह सुधार उन मनोवृत्तियों का परिणाम है जो हमारे समाज में आधुनिकता की और इंगित करती हैं।

समाज सुधार को प्रोत्साहन– आधुनिकीकरण का सामाजिक संरचना पर सबसे स्पष्ट प्रभाव समाज सुधार की प्रक्रिया के रूप में देखने को मिलता है। आधुनिकीकरण से उत्पन्न होने वाली नयी मनोवृत्तियों के परिणामस्वरूप उन अन्धविश्वासों और कुरीतियों को प्रभाव तेजी से कम होने लगा जो सैकड़ों वर्षों से भारतीय सामाजिक जीवन को विघटित कर रही थीं। समाज में जैसे–जैसे पश्चिमी मूल्यों और शिक्षा का प्रभाव बढ़ा सती प्रथा, बाल–विवाह, अस्पृश्यता, दास प्रथा, विधवाओं के शोषण, बहुपत्नी विवाह, पर्दा प्रथा, स्त्री–पुरूषों की असमानता तथा दहेज प्रथा का विरोध बढ़ने लगता है। आज अन्तर्जातीय विवाहों में होने वाली वृद्धि आधुनिकीकरण का ही परिणाम है।

अन्तर्जातीय सम्बन्धों में परिवर्तन– भारत में स्वतन्त्रता के बाद आधुनिकीकरण में वृद्धि होने से जाति के नियम तेजी से कमजोर पड़ने लगे। परिवहन के साधनों का विकास होने से सभी जातियों और क्षेत्रों के लोगों को एक–दूसरे के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। प्रौद्योगिक विकास ने सभी जातियों के लोगों को व्यवसाय के नये अवसर प्रदान किये। शिक्षा से चेतना उत्पन्न हुई, जिससे स्पष्ट हुआ कि जन्म के आधार पर कोई भी व्यक्ति ऊंचा अथवा नीचा नहीं होता। इसी का परिणाम है कि आज व्यवसाय का चुनाव करते समय व्यक्ति जाति के नियमों को ध्यान में न रखकर अपनी कुशलता का ध्यान रखता है। गांवों में जजमानी व्यवस्था से सम्बन्धित अधिकांश जातियां अब नई प्रौघौगिकी को अपनाकर अपने परम्परागत पेशों को छोड़ रही है। नाई, धोबी, कुम्हार तथा माली जैसी जातियां नगरों में अपने व्यवसाय को आधुनिक रूप देकर अपने सामाजिक स्तर में सुधार लाना अच्छा समझने लगी हैं। विभिन्न जातियों के बीच खान–पान की दूरी लगभग समाप्त हो चुकी है। विभिन्न जातियों के बीच पारस्परिक सम्पर्क तथा सामाजिक आदान–प्रदान में वृद्धि हो रही है। यह सभी परिवर्तन भारतीय सामाजिक व्यवस्था की अधि–संरचना में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करते हैं।

शिक्षा का प्रसार– आधुनिकीकरण का एक अन्य प्रभाव शिक्षा के प्रति लोगों की मनोवृत्तियों में व्यापक परिवर्तन है। आज अधिकांश माता–पिता आर्थिक कठिनाइयों के बाद भी अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देने के पक्ष में हैं। इसी के फलस्वरूप शिक्षित लोगों के प्रतिशत तथा शिक्षा के उच्च स्तर में व्यापक तैयार करना नहीं बल्कि ज्ञान और विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में नयी पीढ़ी की योग्यता और प्रतिभा में अधिकाधिक वृद्धि करना है। ग्रामीण और जनजातीय समुदायों में भी आज अधिकांश व्यक्ति अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने के पक्ष में हैं। सायंकालीन प्रौढ़ शिक्षा में ग्रामीणों का सहभाग लगातार बढ़ता जा रहा है। वास्तविकता यह है कि शिक्षा आधुनिकीकरण का परिणाम नहीं है बल्कि इससे स्वयं आधुनिकता में गुणात्मक रूप से वृद्धि हो रही है।

लोकतांत्रिक नेतृत्व का विकास– ग्रामीण स्तर पर पंचायती राज व्यवस्था तथा विकास कार्यक्रमों के फलस्वरूप भारत में लोकतान्त्रिक नेतृत्व का विकास हुआ। इससे भी आधुनिकीकरण के तत्वों को प्रोत्साहन मिला।

सामाजिक मूल्यों एवं मनोवृत्तियों में परिवर्तन– आधुनिकीकरण के प्रभाव से भारत के परम्परागत मूल्यों में परिवर्तन होने के साथ ही विभिन्न वर्गों की मनोवृत्तियों में भी व्यापक परिवर्तन हुए। अब अधिकांश लोग भाग्य की अपेक्षा व्यक्तिगत योग्यता और

परिश्रम को अधिक महत्व देने लगे हैं। जातिगत विभेदों की जगह समानता और सामाजिक न्याय के मूल्यों के प्रभाव में वृद्धि हुई है। समाज के विभिन्न वर्ग लौकिक और तार्किक व्यवहारों के महत्व को समझने लगे हैं। धर्मिक कट्टरता के स्थान पर धर्मनिरपेक्ष विचारों का प्रभाव बढ़ा है। गतिशील जीवन का अभिन्न अंग बनती जा रही है। अपने से भिन्न धर्मों और जातियों के लोगों से सम्पर्क बढ़ाने के प्रति जागरूकता में वृद्धि हुई तथा दुर्बल वर्गों के लोग भी अपने अधिकारों के प्रति कहीं अधिक जागरूक होने लगे। यह सभी परिवर्तन भारतीय समाज पर आधुनिकीकरण के बढ़ते हुए प्रभाव को स्पष्ट करते हैं।

अतः भारत में परम्परा से आधुनिकीकरण की ओर होने वाले परिवर्तन से कुछ लोग यह समझने लगते हैं कि आधुनिकीकरण में यदि इसी तरह वृद्धि होती रही तो कुछ समय बाद हमारे समाज की मौलिक परम्पराएं पूरी तरह समाप्त हो जाएंगी। वास्तविकता यह है कि कोई समाज चाहे कितना भी आधुनिक क्यों न हो जाये, वहां किसी न किसी रूप में परम्पराओं का प्रचलन हमेशा बना रहता है। जिन्हें आज हम आधुनिकीकरण के लक्षण कहते हैं, प्रौद्योगिक और वैचारिक प्रगति के साथ भविष्य में उन्हीं को समाज की परम्पराओं के रूप में देखने की सम्भावना की जा सकती है। इस प्रकार परम्परा तथा आधुनिकीकरण परस्पर एक दुसरे से सम्बन्धित है।

बोध प्रश्न–2

i) "Social Change in Modern India" पुस्तक के लेखक कौन है ?

. अ) एस0 सी0 दुबे

ब) योगेन्द्र सिंह

स) दुर्खीम

द) एम0 एन0 श्रीनिवास।

ii) परम्परा व आधुनिकीकरण में अन्तर को संक्षिप्त रूप से स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

स्वप्रगति परीक्षण

4. परम्परा और आधुनिकीकरण के सम्बन्ध में ब्राउन ने क्या कहा है?
5. परम्परा और आधुनिकीकरण के सम्बन्ध में रेफिल्ड के क्या विचार है?
6. भारतीय समाज में कृषि क्षेत्र में आधुनिकी करण का क्या प्रभाव पड़ा है?

NOTES

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

iii) परम्परा व आधुनिकीकरण में क्या संबन्ध है ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

iv) परम्परा व आधुनिकीकरण को परिभाषित कीजिए ?

.....

.....

NOTES

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

v) भारतीय समाज पर आधुनिकीकरण के प्रभाव किन–किन क्षेत्रों में आए है।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

vi) निम्नांकित में से कौन–सी विशेषता आधुनिकीकरण से सम्बन्धित हैः

(अ) धर्मनिरपेक्षता

(ब) नगरीयता में वृद्धि,

(स) तार्किकता

(द) उपरोक्त सभी।

11.6 सारांश

इस इकाई को पढने के बाद आप यह जान चुके होगें कि भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की परिभाषा व अर्थ में विद्वानों ने बताया कि आधुनिकीकरण भी संस्कृति का ही एक विशेष पक्ष है, यद्यपि इससे एक ऐसे परिवर्तन का बोध होता है जो परम्पराओं के विषम विकास के रूप में देखने को मिलता है। वे आधुनिक होने का अर्थ फैशनेबल से लेते है। इसके साथ ही आधुनिकीकरण की विशेषताये व आधारों में नगरीकरण में वृद्धि, प्रौद्यौगिक विकास, बढती हुई गतिशीलता, व्यैक्तिक आकांक्षाओं की मान्यता, लोकतान्त्रिक मूल्यों में वृद्धि व परिवर्तन रूचि आदि को बताया गया है। इन आधार से स्पष्ट होता है कि किसी समाज में परम्परा व आधुनिकीकरण का प्रभाव कितना है। परम्परा व आधुनिकता में अन्तर के साथ ही संबध को बताया गया है। परम्परा जहा सामाजिक स्थिरता और स्थायित्व का बोध करती है, वही आधुनिकीकरण में गतिशीलता का समावेश होता हैं, यह व्यक्ति को समय और परिस्थिति के अनुसार तार्किक आधार पर व्यवहार करने को बल प्रदान करती है। किसी समाज में आधुनिकीकरण में चाहे कितनी भी वृद्धि हो जाये, व्यक्तियों के व्यवहार किसी न किसी रूप में उनकी परम्पराओं से अवश्य प्रभावित होते रहते हैं। इसके बाद भारतीय समाज पर आधुनिकीकरण के प्रभाव को जानने का प्रयास किया गया कि भारतीय समाज आज आधुनिकीकरण की दिशा प्रौद्योगिक विकास, शिक्षा, तकनीकि व सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में तेजी से कितना आगे बढ़ रहा है व परम्पराओं से वह कितना संबधित है। सभी विद्वानों के विचारों स्पष्ट होता है कि आधुनिक वह है जो नई तकनीकि को अपनाने के साथ अपने विचारों से भी आधुनिक होता है, तभी वह व्यक्ति या समाज आधुनिकीकरण कहलाता है।

11.7 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1. • समानता, स्वतन्त्रता तथा लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित नगरीयता में वृद्धि,
   - संचार के साधनों में वृद्धि तथा शिक्षा का प्रसार,
   - आर्थिक और राजनीतिक जन – सहभाग में वृद्धि,
   - सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि,

- धर्मनिरपेक्ष और तर्कपूर्ण विचारों में वृद्धि।

2. इस सम्बन्ध में **लर्नर** ने लिखा है, ''एक गतिशील समाज वह है जिसमें तर्क और विवेक को प्रोत्साहन मिलता है तथा लोगों के व्यवहार उनकी अपनी रूचियों से प्रभावित होने लगते हैं। व्यक्ति वह विश्वास करने लगते हैं कि उनका भविष्य पूर्व निर्धारित नहीं है बल्कि उनकी कुशलता पर निर्भर है''। इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिकीकरण की दशा में व्यक्तियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति प्रदत्त नहीं बल्कि अर्जित होती है। जिसके परिणामस्वरूप समाज में गतिशीलता बढ़ती ळें

3. **डॉ. योगेन्द्र सिंह** ने बताया कि साधारण आधुनिक होने का अर्थ फैशनेबल से लगाया जाता है। वे आधुनिकीकरण को एक सांस्कृतिक प्रत्यय मानते है जिसमें तार्किक अभिवृति, सार्वभौमिक दृष्टिकोण, परानुभूति, मानवता, प्रौद्यौगिक प्रगति आदि सम्मिलित है। वे आधुनिकीकरण पर एक किसी नृजातीय समूह या सांस्कृतिक समूह का स्वामित्व नहीं मानते वरन् संपूर्ण मानव समाज का अधिकार मानते है। वे अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ***Modernization of Indian Tradition"*** में लिखते है कि, आधुनिकीकरण सांस्कृतिक क्रियाओं का एक विशेष रूप है जिसमें मुख्य रूप से सार्वभौमिक और विकासवादी लक्षणों का समावेश होता है यह लक्षण अतिमानवता से सम्बन्धित होने के साथ ही सजातीयता और वैचारिक आधार से परे हैं। अर्थात आधुनिकीकरण भी संस्कृति का ही एक विशेष पक्ष है, यद्यपि इससे एक ऐसे परिवर्तन का बोध होता है जो परम्पराओं के विषम विकास के रूप में देखने को मिलता है। वे आधुनिक होने का अर्थ फैशनेबल से लेते है।

4. **ब्राउन** का कथन है कि परम्परा और आधुनिकीकरण इस आधार पर सम्बन्धित हैं कि आधुनिकीकरण के विकास में परम्परा सदैव बाधक नहीं होती। भारत में कुछ समय पहले तक जातिगत विभेद, पारलौकिक विश्वास, कर्म का सिद्धान्त और स्थानीय विश्वास हमारी कुछ प्रमुख परम्पराएँ थीं। स्वतंत्रता के बाद जब सामाजिक, आर्थिक, राजनेतिक जीवन में आधुनिकीकरण का प्रभाव बढ़ने लगा तो इन परम्पराओं में आपने आप परिर्वतन के तत्व स्पष्ट होने लगे।

5. रेडफील्ड ने **लघु तथा वृहत् परम्पराओ** के सम्बंध के आधार पर परम्परा तथा आधुनिकीकरण के पारस्परिक सम्बंध को स्पष्ट किया हैं। समाज में वृहत

परम्पराओ में आधुनिकीकरण के लक्षणो की प्रधानता होती है, जबकी लघु परम्पराओ में स्थानीय विश्वासो का अधिक समसवेश होता है। इसके बाद वुहत परम्पराएँ छोटी–छोटी परम्पराओ को संरक्षण देती है, जबकी स्थानीय परम्पराए मिलकर वृहत परम्पराओ के प्रभाव को बनाये रखती है। होली, दशहरा, दीपावली तथा क्रिसमस विभिन्न धर्मो की कुछ वृहत् परम्पराएँ हैं। जो समानता, बन्धुत्व, तार्किकता और राष्ट्रीयता जैसे आधुनिक मूल्यों को प्रोत्साहन देती हैं। इसका तात्पर्य है कि धार्मिक क्षेत्र में भी परम्परा तथा आधुनिकता के तत्वों को एक दूसरे से पूरी तरह अलग नहीं किया जा सकता है।

6. आधुनिकता एक स्पष्ट प्रभाव गांवों में कृषि की नयी प्रविधियों का बढ़ता हुआ उपयोग है। अब अधिकांश ग्रामीण, ट्रैक्टर, कल्टीवेटर, पम्पिंग सैटों, थ्रेशर तथा रूटर आदि का प्रयोग करके कृषि उत्पादन में नये साधनों का प्रयोग बढ़ाने में लगे हुए हैं। अधिकांश किसानों द्वारा उन्नत बीजों, कीटनाशक दवाओं और रासायनिक खादों का उपयोग किया जाता है। ग्रामीण, विकास अधिकारियों के सम्पर्क करके ऐसी सभी जानकारियां लेने का प्रयत्न करते हैं। जिनकी सहायता से कृषि उत्पादन में वृद्धि हो सके।

11.8 पारिभाषिक शब्दावली

आधुनिकीकरण – आधुनिकीकरण राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा ऐतिहासिक व समकालीन अविकसित समाज अपने आपको विकसित करने में संलग्न रहते है। अर्थात समाज में परिवर्तन जब इस तरह होने लगता है कि सामाजिक संरचना, सामाजिक मूल्यों तथा व्यवहार के तरीकों में तार्किकता, समानता, गतिशीलता और सहभागिता के तत्व बढ़ने लगते हैं, तब ऐसे परिवर्तन को आधुनिकीकरण कहा जाता है।

नगरवाद– नगरीय जीवन के साथ व्यक्तियों के समायोजन की प्रक्रिया को नगरवाद या नगरीयता कहते है। यह जीवन की एक विशिष्ट शैली है।

नगरीकरण– नगरवाद के लक्षणों (विचारों एवं व्यवहार के रूप) के विकास एवं प्रसार की प्रक्रिया नगरीकरण कहलाती है। **लुई वर्थ** ने ग्रामों के नगरों में बदलने की प्रक्रिया को नगरीकरण की संज्ञा दी है।

परम्परा– परम्परा अर्थात ट्रॅडिशन शब्द की उत्पत्ति ट्रॅडेर शब्द से हुई है।जिसका अर्थ है संचरण या हस्तान्तरण। परम्परा परिपाटियों का एक पुंज है, जो कुछ व्यवहार संबधी मानदंडो और मूल्यों जो इस आधार पर अपनाये जाने पर बल देती है कि इनका वास्तविक या काल्पनिक भूत के साथ तारतम्य है। जो कि भारतीय ग्रामीण समाज में अधिकाशंत देखने को मिलती है।

प्रौद्योगिक विकास– प्रौद्यौगिक विकास की प्रकिया ब्रिट्रिश शासन काल के दौरान ही आरम्भ हुई। स्वतन्त्रता के बाद आर्थिक नियोजन के द्वारा इसमे बहुत अधिक वृद्धि हुई। आज भारत मे सूती कपडो, रासायनिक खादो, सीमेण्ट, जूट आदि मशीनों के बडे–बडे कारखाने स्थापित हो चुके है। अणु शक्ति के क्षेत्र में भी भारत एक आत्मर्निभर देश बन चुका है। प्रौद्योगिक विकास के साथ विभिन्न प्रकार के व्यवसांयो मे भी वुद्धि हुई है।

लघु तथा वृहत् परम्परा– राबर्ट रेडफील्ड द्वारा प्रतिपादित लघु परम्परा से तात्पर्य ऐसे प्रभावों से है जिनका उद्‌गम गावों अर्थात स्थानीय संस्कृति से हुआ है। इसका विकास ग्रामीण समुदायों में रहने वाले अप्रबुद्ध एवं सामान्य जनों के बीच स्वतः होता है। इसे लोक परम्परा के नाम से भी जाना जाता है। जबकि वृहत् परम्परा से तात्पर्य ऐसे उच्च एवं बौद्धिक प्रभावों से है जिनका जन्म बाहर से होता है। इस परम्परा का विकास विधालयों तथा देवालयों में होता है। दार्शनिकों, चिन्तकों तथा साहित्यकारों की परम्पराओं का सृजन एवं हस्तान्तरण सचेतन प्रयासों के द्वारा होता है। वृहत् परम्परा को अभिजन या नगरीय परम्परा भी कहा जाता है। दोनो परम्परायें परस्पर निर्भर एक–दुसरे पर निर्भर है।

लौकिक मूल्यों की प्रधानता – आधुनिकीकरण परिवर्तन की प्रक्रिया में पारलौकिक मूल्यों की जगह लौकिक अथवा सांसारिक मूल्यों का अधिक महत्व होता है। इसके फलस्वरूप मोक्ष की जगह सांसारिक सफलताओं को अधिक महत्व मिलने लगता है; पवित्रता और अपवित्रता का सम्बन्ध स्वास्थ्य के तार्किक नियमों से करना शुरू हो जाता है।

11.9 अभ्यास/बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

i) ब) योगेन्द्र सिंह

ii) एस. सी. दुबे

iii) **मैरियन जे. लेवी** – के अनुसार, ''आधुनिकीकरण की परिभाषा शक्ति के जड़ स्रोतों के उपयोग तथा इससे सम्बन्धित प्रयत्नों के प्रभाव को बढाने के लिए उपकरणों के उपयोग से सम्बन्धित है।'' अर्थात आधुनिकीकरण एक ऐसा परिवर्तन है जिसमें शक्ति के जड़ स्रोतों, जैसे– खनिज पदार्थों, जल–शक्ति तथा ऊर्जा के उपयोग में अधिकाधिक वृद्धि होती है।

iv) **डेनियल लर्नर** के अनुसार आधुनिकीकरण की विशेषताओं मे से **दो विशेषताये** निम्न है–

1. समानता, स्वतन्त्रता तथा लोकतांत्रिक मूल्यों पर आधारित नगरीयता में वृद्धि,
2. संचार के साधनों में वृद्धि तथा शिक्षा का प्रसार,

v) **एलेक्स इन्केल्स** के अनुसार आधुनिकीकरण की विशेषताओं मे से **चार विशेषताये** निम्न है–

1. विभिन्न कार्यों के लिए नयी पद्धतियों का उपयोग,
2. लोगों द्वारा विभिन्न विषयों पर अपने विचार देने की तत्परता,
3. समय के अनुसार व्यवहारों में परिवर्तन,
4. अतीत की अपेक्षा वर्तमान और भविष्य में अधिक रूचि लेना आदि।

vi) आधुनिकीकरण के **चार प्रमुख आधार** निम्न है–

1. नगरीकरण में वृद्धि–
2. परिवर्तन में रूचि
3. प्रौद्योगिक विकास
4. वैयक्तिक आकांक्षाओं को मान्यता

बोध प्रश्न–2

i) द) एम0 एन0 श्रीनिवास।

ii) परम्परा व आधुनिकीकरण प्रत्येक समाज में ये दोनों अवधारणायें साथ–साथ चलती है। समाज में परम्परा जहा स्थिरता का बोध कराती है, वहीं आधुनिकीकरण की प्रक्रिया जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तनशीलता का बोध कराती है। परम्परा सरल समाजों की विशेषता है, जबकि आधुनिकीकरण का

प्रभाव बढने के साथ ही समाज का रूप जटिल होता है। डॉ. योगेन्द्र सिह का विचार है कि परम्परा में स्थानीयता, सजातीयता ओर एक विशेष वैचारिकी पर आधारित व्यवहारों का अधिक महत्व होता है, और आधुनिकीकरण में सार्वभौमिकता, विजातीयता और वैचारिक तटस्थता पायी जाती है।

iii) परम्परा और आधुनिकीकरण की प्रकृति एक दूसरे से भिन्न होने के बावजूद भी दोनों परस्पर संबन्धित हैं, बिना एक के दुसरे की व्याख्या नही की जा सकती है। किसी समाज में आधुनिकीकरण में चाहे कितनी भी वृद्धि हो जाये, व्यक्तियों के व्यवहार किसी न किसी रूप में उनकी परम्पराओं से अवश्य प्रभावित होते रहते हैं। जैसे– भारतीय समाज में आधुनिकीकरण के फलस्वरूप एकाकी परिवारों की संख्या में बहुत वृद्धि हो जाने के बाद भी भारतीय परिवार के सदस्य संयुक्त नातेदारी के बन्धनों से आज भी बँधे हुए हैं। विभिन्न अवसरों पर संस्कारों की पूर्ति को आवश्यक समझा जाता है। त्यौहारों और धार्मिक आयोजनों के अवसर पर निकट सम्बन्धी एक स्थान पर एकत्रित होकर अपनी घनिष्ठता प्रदर्शित करते हैं। अतः आधुनिकता में वृद्धि होने से परम्पराओं के प्रभाव का लोप नहीं हो जाता है।

iv) परम्परा अर्थात ट्रॅडिशन शब्द की उत्पत्ति ट्रॅडेर शब्द से हुई है।जिसका अर्थ है संचरण या हस्तान्तरण। परम्परा परिपाटियों का एक पुंज है, जो कुछ व्यवहार संबधी मानदंडो और मूल्यों जो इस आधार पर अपनाये जाने पर बल देती है कि इनका वास्तविक या काल्पनिक भूत के साथ तारतम्य है। आधुनिकीकरण राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा ऐतिहासिक व समकालीन अविकसित समाज अपने आपको विकसित करने में संलग्न रहते है। अर्थात समाज में परिवर्तन जब इस तरह होने लगता है कि सामाजिक संरचना, सामाजिक मूल्यों तथा व्यवहार के तरीकों में तार्किकता, समानता, गतिशीलता और सहभागिता के तत्व बढ़ने लगते हैं, तब ऐसे परिवर्तन को आधुनिकीकरण कहा जाता है।

v) भारतीय समाज में आधुनिकीकरण की प्रकिया से कृषि क्षेत्र, शिक्षा क्षेत्र, प्रौघौगिकी क्षेत्र, अन्तर्जातीय सम्बन्धों में परिवर्तन आदि प्रभाव समाज में देखने को मिले है जिनका सकारात्मक परिणाम हुआ है, लेकिन वहीं परम्पराओं से भी सामना हुआ है।

vi) (द) उपरोक्त सभी।

11.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

Bottomore, T.B., (1969) *Socioloogy: A guide to problem and literature,* Allen and unvin, London

मजूमदार, डी0एन0 और मदान, टी0एन0, (1986) एन इंट्रोडक्शन टू सोशल एन्थरोपॉलाजी,

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

रावत, हरि कृष्ण, (2002) समाजशास्त्र विश्वकोश, रावत पब्लिकेशन, जयपुर

अग्रवाल, जी0के0 (2012) समाजशास्त्र, एस0बी0पी0डी0 पब्लिकेशन, आगरा

सिंह, योगेन्द्र, (1988) मार्डनाइजेशन आफ इंडियन ट्रेडिशन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर

आहुजा, राम (2000) भारतीय समाज, रावत पब्लिकेशन, दिल्ली

11.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Giddens, Anthony, (1993) *Sociology,* polity press, Cambridge

Mitchell, G Duncan, (1979) *A New Dictionary of Sociology,* Routledge &

Kegan Paul, London

सिहं जे0 पी0, (2008) समाजषास्त्र–अवधारणाएं एवं सिद्धान्त, पीएचआई लर्निग नई दिल्ली

पिकरिंग डब्लयू0 एस0एफ0, (1993) दर्खाइमस् सोशियोलोजि आफ रिलिजन, रटजन एंड केगन

पाल, लंदन

सच्चिदानन्द (1964) कल्चर चेंज इन ट्राईबल, बुकलैंड लि0, कलकत्ता

हारालाम्बोस एम0, (1998), सोषियोलोजी : थीम्स एण्ड प्रर्सपेक्टिव, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,

नई दिल्ली

टर्नर, जे0 एच0, (1916) स्ट्रक्चर आफ सोषियोलोजिकल थ्योरी, रावत पब्लिकेषन, जयपुर

श्रीनिवास,एम0एन0 (1991) आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

11.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. आधुनिकीकरण की परिभाषा दीजिए व आधुनिकीकरण ने भारतीय समाज को किस प्रकार प्रभावित किया है ?
2. परम्परा तथा आधुनिकता परस्पर सम्बन्धित अवधारणएँ हैं, विवेचना कीजिए।
3. परम्परा तथा आधुनिकता में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
4. भारत में आधुनिकीकरण के कारणों और परिणामों की विवेचना कीजिए।
5. भारत में आधुनिकीकरण पर एक निबंध लिखिये।
6. भारत में आधुनिकीकरण की अवधारणा पर एक आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

NOTES

ईकाई–12

औद्योगीकरण

(Industrlisation)

ईकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य।

12.1 प्रस्तावना।

12.2 औद्योगीकरण का अर्थ एवं परिभाषा।

12.3 भारतीय समाज पर औद्योगीकरण के प्रभाव।

12.3.1 पारिवारिक जीवन पर प्रभाव।

12.3.2 सामाजिक जीवन पर प्रभाव।

12.3.3 आर्थिक जीवन पर प्रभाव।

12.3.4 पर्यावरण पर प्रभाव।

12.4 औद्योगीकरण के दुष्परिणमों को रोकने के उपाय।

12.5 औद्योगिक ढाँचा और पंचवर्षीय योजनायें।

12.6 भारत के औद्योगिक विकास की आधारभूत प्रवृत्तियाँ।

12.7 भारत में औद्योगिक पिछड़ेपन का कारण।

12.8 औद्योगिक पिछ़डेपन को दूर करने के उपाय।

12.9 सारांश।

12.10 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

12.11 पारिभाषिक शब्दावली।

12.12 सन्दर्भग्रन्य सूची।

12.0 उद्देश्यः–

इस ईकाई को पढ़ने के बाद आप–

(1) औद्योगीकरण क्या है। इसको समझ सकेंगे।

NOTES

(2) औद्योगीकरण के अर्थ एवं परिभाषा को जान सकेंगे।

(3) भारतीय समाज पर औद्योगीकरण के प्रभाव को जान सकेंगे।

(4) औद्योगीकरण के दुष्परिणामों तथा इसको रोकने के उपाय के बारे में जान सकेंगें।

(5) पंचवर्षीय योजनाओं में औद्योगीकरण के लिए किये गये विभिन्न उपायों एवं प्रावधानों के बारे में जान सकेंगे।

(6) भारत में औद्योगीकरण विकास की आधारभूत प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे।

(7) भारत में औद्योगीकरण पिछड़ेपन के कारणों का जान सकेंगे।

(8) औद्योगीकरण पिछड़ेपन को दूर करने के उपायों के बोर में जान सकेंगे।

12.1 प्रस्तावनाः

विज्ञान ने विश्व की प्रगति के स्वरूप को बदल दिया है। विभिन्न आविष्कारों ने यूरोप में औद्योगीकरण की प्रक्रिया 19 वीं शताब्दी में प्रारम्भ कर दी जिसके परिणाम स्वरूप वहाँ की आर्थिक दशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन आये। अंग्रेजो की पराधिनता के कारण हमारे देश में औद्योगिक क्रान्ति का सूतपात्र 19 वी शाताब्दी से आरम्भ हुआ। दूसरा प्रारम्भ से ही हमारा देश कृषि प्रधान देश रहा है। इस कारण भी औद्योगीकरण की शुरूआत यहां देर से हुई। तथापि यह सत्य है। कि वर्तमान भारतीय समाज में प्रयाप्त औद्योगिक विकास हो चुका है। और उसका असर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पड़ा है।

औद्योगीकरण से पूर्व उत्पादन हेतु मानवीय एंव पशु सक्ति का प्रयोग किया जाता था। किन्तु औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप उत्पादन हेतु अमानवीय शक्तिओं का प्रयोग किया जाने लगा है। सभी आधुनिक उद्योगो में मशीनों से कार्य किया जाता है।

हमारे देश का इतिहास बताता है। कि प्राचीन काल में भारत हस्त–शिल्प उद्योगो में विश्व–प्रसिद्धि को प्राप्त कर चुका था। भारत से बनी हाथ की बनी–बनाई वस्तुएँ विदेशों को निर्यात होती थी।

ठाके की मलमल के चर्चे आज भी लोगो की जुबान पर होते है। भारत में अंग्रेजों के आगमन के कारण भारत के हस्तशिल्प को ग्रहण लगना आरम्भ हो गया था। अब भारत इंग्लैण्ड के लिये कच्चे माल का प्रमुख निर्यात वस्तुएँ भारत आने लगी थी। तथा भारत में औद्योगीकरण की कल्पना नहीं की जा सकती थी। पूरी सत्ता अंग्रेजों के हाथ में थी

वे भारत के हित की बात नही सोच सकते थे। इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी थी। वहाँ के उद्योग धन्धे भारत में कच्चे माल पर आश्रित थे।

1918 के औद्योगिक आयोग (Industrial Commission) की रिपोर्ट के बाद कुछ चुनें हुऐ उद्योगों को भारत लाने की पहल की गई।

इसी क्रम में सूती वस्त्र उद्योग चीनी उद्योग, कागज व दिया सलाई उद्योग को खोलने का क्रम जारी हुआ। परन्तु इसे हम पूर्ण औद्योगीकरण नही कह सकते है। गिने–चुने उद्योगो से हम भारत का भाग्य नहीं बदल सकते थे।

क्योंकि किसी भी देश के औद्योगिक विकास का आधार पूँजी और तकनीकी ज्ञान होता है। दुर्भाग्य से भारत में इन दोनों का अभाश बना हुआ था। आर्थिक विकास के लिये पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाना होता था। परन्तु पूँजी की कमी के कारण ऐसा करना सम्भव नही हो पाया था।

12.2 औद्योगीकरण का अर्थ एंव परिभाषाऐं
Meaning And Definition of Industritization.

औद्योगीकरण शब्द एक प्रकार से यन्त्रीकरण का पार्यावाची है। जब मशीनों का अधिकाधिक प्रयोग करके वस्तु के उत्पादन का प्रयास किया जाता है। तो उसे औद्योगीकरण की प्रक्रिया कहा जाता है। जिसके अन्तर्गत उत्पादन की आधुनिक व्यवस्था एवं सम्बन्धित संस्थाओं का विकास एवं प्रसार होता है। समाजशास्त्र में इसका अर्थ उद्योगों के विकास एंव उत्पादन की आधुनिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप समाज के विकास एवं प्रसार होता है। समाजशास्त्र में इनका अर्थ उद्योगों के विकास एवं उत्पादन की आधुनिक व्यवस्था के परिणामरूवरूप समाज के विभिन्न पक्षों में होने वाला परिवर्तनों के लिये किया जाता है।

औद्योगीकरण की परिभाषा (Definition of Industrialization)

औद्योगीकरण की विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषा निम्न वर्णित है।

(i) पी0 कांग, चांग, के अनुसार (Pee-Kong, Chang) में औद्योगीकरण का परिभाषा इन शब्दों में दी है। औद्योगीकरण एक प्रक्रिया है। जिसमें उत्पादन कार्यो में क्रमबद्ध परिवर्तन होते रहते है। इसके अंतर्गत वे मूलभूत परिर्वतन आते है। जो किसी नऐं

बाजार की स्थापना एवं किसी नऐं क्षेत्र के विदोहन के साथ–साथ होते हैं यह एक प्रकार से पूँजी को गहन व व्यापक बना देने को प्रक्रिया है।

फेयरचाइल्ड के अनुसार (According to Fairchild)

के अनुसार ''औद्योगीकरण व्यवहारिक विज्ञान द्वारा प्रौधोगिक विकास की प्रक्रिया है। जिसमें शक्ति चालित यन्त्रों द्वारा बड़े स्तरों पर उत्पादन किया जाता है। अतः एक व्यापक बिक्री के लिये उत्पादन एवं उपयोगी सामाग्री को तैयार किया जाता है। इस बड़े स्तर का उत्पादन श्रम विभाजन के द्वारा होता है। ''

बिल्बर्ट ई0 यूर के अनुसार (According to kilbert E-Moral)

औद्योगीकरण के अर्थ को इन शब्दों में प्रस्तुत किया है। ''औद्योगीकरण से आशय आर्थिक अत्पादन के लिये शक्ति के बेजान (अ–मानवीय) श्रोतो के विरूद्ध प्रयोग से है। और उस सबसे भी है। जो संगठन यातायात और संचार के परिणामस्वरूप आगे आते है।

एम0 एस0 गोरे के अनुसार (According to M.S. Gore)

औद्योगिक शब्द उस प्रक्रिया को इंगित करता है। जिसमें हाथ से वस्तुओं का उत्पादन सत्य शक्ति चालित द्वारा शक्ति चालित द्वारा यन्त्रों के उत्पादन में बदल दिया जाता है। इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप कृषि की तकनीकि आवागमन तथा संचार और व्यापार एवं वित्त के संगठन में भी परिर्वतन आ जाता है।

औद्योगीकरण की उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है। कि औद्योगीकरण का सम्बन्ध केवल आर्थिक उत्पादन से ही नही है। अपितु समाज की अन्य व्यवस्याओं जैसे की कृषि यन्त्रीकरण एवं संचार तथा आवागमन के साधनों के विस्तार से भी है। औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया साथ–साथ चलती रहती है। जितनी तेजी से औद्योगीकरण होता है। उतनी ही तेजी से नगरीकरण होता है।

12.3 भारतीय समाज पर औद्योगीकरण के प्रभाव
Effect on the Indian Socity Industrization

स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात भारत में औद्योगीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई है। स्वतन्त्र होने के पहले हम जहाँ छोटी–छोटी वस्तुओं के लिये भी विदेशों पर आश्रित रहा करते

ये। वहीं अब अधिंकांश वस्तुऐं भारत में ही बनती है। जितनी तेजी से औद्योगीकरण हुआ है। उतनी ही तेजी से नगरीकरण भी हुआ है। पढ़े–लिखे वर्ग में गतिशीलता की वृद्धि हुई है। सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर औद्योगीकरण के प्रभाव का विवरण दे सकते है।

12.3.1 (क) पारिवारिक जीवन पर प्रभावः–

औद्योगीकरण की प्रक्रिया निम्न प्रकार से पारिवारिक जीवन को प्रभावित करती है।

(i) संयुक्त परिवार का विघटनः–

औद्योगीकरण के कारण कुटीर उद्योग चौपट हो रहे है। क्योंकि हाथ से बनी वस्तुऐं मशीन से बनी वस्तुओं से प्रतियोगिता में पिछड़ जाती जाती है। अतः कुटीर उद्योगो में संलग्न अधिकांश ग्रामवासी औद्योगिक नगरों में जा बसे है। वे नगरो में अपने साथ–साथ अपने परिवारों को भी लेकर चले गये है। इस से संयुक्त परिवारो ंकी जगह एकांकी परिवारों का विभाजित होना प्रारम्भ हो जाता है।

(ii) पारिवारिक नियन्त्रण में कमीः–

औद्योगीकरण ने परिवार के सदस्यों को अत्याधिक व्यस्त कर दिया है। वे परिवार से बाहर रहकर अनेक कार्यो में व्यस्त रहते है। घर से प्राप्त अनुपस्थित रहने के कारण और विचारों की स्वतन्त्रता के कारण पारिवारिक नियन्त्रण की स्वतन्त्रता के कारण पारिवारिक नियन्त्रण शिथिल हो जाता हैं। आधुनिक जटिल समाजों में औपचारिक सामाजिक नियन्त्रण महत्वपूर्ण हो गया है।

(iii) कुप्रथाओं का अंतः–

औद्योगीकरण ने अनेक कुप्रथाओ का अंत किया है। पर्दा प्रथा और दास प्रथा का अंत हो चुका है।

(iv) स्त्रियों की दशा में सुधारः–

औद्योगीकरण और नगरीकरण के प्रभाव के फलस्वरूप स्त्रियों को स्थिति में विशेष प्रभाव पड़ा है। अब परिवार में उनकी स्थिति दासी या नौकरानी की ना होकर गृहस्वामिनी की हो चुकी है।

(v) विवाह के स्वरूप में परिवर्तनः–

अब विवाहों पर लगे पुराने धार्मिक बन्धन टूट रहे है। औद्योगीकरण और नगरीकरण के फलस्वरूप अंतर्जातीय विवहों की संख्या बढ़ रही है। माता–पिता की अत्यधिक व्यस्तता ने युवक–युवतियों को मिलने के पर्याप्त अवसर दिऐ है। फलस्वरूप प्रेम सम्बन्धों का प्रचलन बढ़ा है।

12.3.2 सामाजिक जीवन पर प्रभाव (Effect on social life)

औद्योगीकरण के सामाजिक जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव निम्नलिखित है।

(i) नगरों के आकार में वृद्धिः– औद्योगीकरण के कारण नगरों की संख्या और आकार में बड़ी तीव्रता से वृद्धि है। अनेक औद्योगिक नगर इतने जटिल हो चुकी है। नगरो की जनसंख्या वृद्धि ने अनेक गन्दी वस्तियों को जन्म दिया है।

(ii) सामुदायिक जीवन का हासः– गाँवों में जो सामुदायिकता की भावना थी उसे औद्योगीकरण और नगरीकरण ने खत्म कर दिया है। घनी बस्तिओं में रहने वाले लोग एक दूसरे से अपरिचित रहते है। और तो और कार्य व्यस्तता ने उन्हें और भी व्यक्तिवादी बना दिया है।

(iii) फैशन और बाह्य आडम्बरों में वृद्धिः–औद्योगीकरण के फलस्वरूप बाह्य आडम्बरों और तड़क भड़क में वृद्धि हुई है। प्रायः लोग देखा–देखी और तड़क–भड़क में अधिक विश्वास करने लगे है।

(iv) स्वार्थपरता में वृद्धिः– सामुदायिक भावना के नष्ट हो जाने से व्यक्तिवादी और स्वार्थी भावनाओं का विकास तीव्रता से होता है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप सम्बन्धों में स्वार्थपरता में वृद्धि हुई है।

(v) वेश्यावृति को प्रोत्साहनः– औद्योगिक प्रक्रिया के चलते अनेक ग्रामीण अपने परिवारों को छोड़कर नगरों में कारखानों में काम करने के लिये आते है। इस प्रकार पत्नी से दूर रहने के कारण वे अपनी काम पिपासा को शान्त करने के लिये वेश्याओं के पास जाते है।

(vi) मानसिक तनावों में वृद्धिः– औद्योगीकरण नगरों की भीड़–भाड़, कल–कारखानों का शोर, आय से अधिक व्यय, अत्यधिक श्रम और कृषियता तथा चका चौंध से मानसिक तनाव में वृद्धि हो जाती है।

(vii) बाल अपराधों में वृद्धिः– नगरों में जब माता–पिता काम पर जाने लगते है तो बालको की ठीक प्रकार से देखभाल नही हो पाती है। जिसके परिणामरूवरूप वे बुरी आदतों के शिकार हो जाते है। औद्योगीकरण से गन्दी बस्तियों का विकास होता है। जिससे बाल–अपराधों की संख्या में वृद्धि होती है।

12.3.3 आर्थिक जीवन पर प्रभावः–

औद्योगीकरण आर्थिक जीवन पर निम्न प्रकार से प्रभाव डालता है।

(i) पूँजीवाद का तीव्रता से विकासः– बड़े–'बड़े कारखानों या मिलों की स्थापना के लिये विशाल पूंजी की आवश्यकता होती है। एसी दशा में उत्पादन के साधनों पर केवल अमीर लोगों का प्रभाव हो जाता है।

(ii) विशाल पैमाने एवं उत्पादनः–औद्योगीकरण के कारण विशाल पैमाने पर उत्पादन होने लगता है। जिससे उत्पादन बढ़ता है।

(ii) श्रम विभाजन एवं विशेषीकरणः–विशाल पैमाने के उत्पादन के लिये श्रम–विभाजन होता है। श्रम विभाजन के फलस्वरूप प्रत्येक श्रमिक को एक विशेष कार्य में संलग्न रहना पड़ता है। एक कार्य–करते–करते व्यक्ति उस कार्य विशेष में योग्यता स्थापित कर लेता है।

(iv) वर्गवाद की भावना का विकासः– विशाल औद्योगिक केन्द्रों में पूरा समाज दो वर्गो में विभाजित हो जाता है। एक वर्ग पूँजीपति वर्ग (ii) श्रमिक वर्ग

(v) रहन–सहन का स्तर ऊँचा होनाः–विशाल पैमाने पर सस्ता और सुन्दर माल उत्पन्न होने से व्यापार और वाणिज्य में पर्याप्त प्रगति हुई है। जिससें जनसाधरण का जीवन–स्तर पहले की अपेक्षा पर्याप्त ऊँचा उठ गया है।

(vi) धार्मिक जीवन पर प्रभावः– औद्योगीकरण धार्मिक जीवन को भी प्रभावित करता है। धर्म पर पड़ने वाले झगड़े को हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. आधुनिकीकरण का अर्थ स्पष्ट करें।
2. पी. कांग, चांग के अनुसार आधुनिकीकरण की परिभाषा प्रस्तुत करें।

(vi) धर्म का महत्व कम होनाः– औद्योगीकरण ने धर्म का महत्व काफी क्रम कर दिया है। औद्योगीकरण ने धार्मिक जीवन को अत्यधिक व्यस्त कर दिया है। अतः धर्म चिन्तन का अवसर उसे नही मिलता है। स्वार्थी प्रवृत्ति के विकास में भी धर्म के महत्व को कम कर दिया है।

(ii) लौकिक विचारों का महत्वः– प्राचीनकाल में व्यक्ति दोनों (इहलोक और परलोक) दोनों की चिन्ता करता था। उसे भय लगा रहता था की संसारिक सुखो के चक्कर में कही मेरा (परलोक) ना बिगड़ जाऐं अतः वह नैतिक व धार्मिक आचरण पर बल देता था। परन्तु व्यक्ति अब इस जीवन में अपने शारीरिक सुखों को ही महत्व देता है।

(iii) भौतिक मूल्यों का महत्वः– औद्योगीकरण ने भारतीओं के दृष्टिकोण को भौतिककवादी बना दिया है। अब अध्यात्मिक मूल्यों की अपेक्षा भौतिक मूल्यों से अधिक महत्व दिया जाता है।

12.3.4 पार्यावरण पर प्रभावः–

औद्योगीकरण का पार्यावरण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आज पार्यावाणीय प्रदूषण की जो गम्भीर समस्या प्रत्येक समाज में विकसित हो गयी है उसका कारण काफी समाज सीमा तक उद्योगों से निकलने वाली हानिकारक गैसों व अपशिष्ट तरल पदार्थ है। वायुमण्डल में कार्बन–डाई आक्साईड की बढ़ती हुई मात्रा पार्यावरण को प्रदूषित करती है। और वायु प्रदुषण का एक बड़ा कारक मानी जाती है। अतः औद्योगीकरण से आक्सीजन जैसी प्रणवायु के कम होने का खतरा है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नः–

प्र01–औद्योगीकरण के अर्थ को समझाइयें।

.....

.....

प्र02– औद्योगीकरण को परिभाषित करते हुयें इसके सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को बताइयें।

.....

.....

12.4 औद्योगीकरण के दुष्परिणामों को रोकने के उपायः–

औद्योंगीकरण ने भारत में सामाजिक जीवन को काफी प्रभावित किया है औद्योगीकरण के प्रमुख प्रभावों को रोकने के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते है।

(i) स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्थाः– समाज में बहुत से अपराध स्वस्य मनोरंजन के अभाव की वजह से उत्पन्न होते है। इसलिये औद्योगीकरण के प्रभावों को रोकने के लिये बालको ंके लिये स्वथ्य मनोरंजन की व्यवस्था करनी चाहिये।

(ii) सुविधाजनक कानूनों का निर्माणः– श्रमिकों की सुविधा के लिये ऐसे कानूनों का निर्माण करना चाहिऐ जिनसें श्रमिक के हित में अनेक कार्य किया जा सके। और पूँजीपति वर्ग उनका शोषण ना कर सकें। श्रमिको में इन कानूनों के विषय में चेतना भी विकसित की जानी चाहिए।

(iii) उद्योग धन्धें का विकेन्दीकरणः– उद्योगों की स्थापना इस ठंग से की जानी चाहिऐ कि एक ही स्थान पर अधिक से अधिक कारखानें ना स्थापित किये जाऐं बल्कि विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार के कारखानों एवं क्षेत्रों की स्थापना की जाऐं ताकि सभी कारखानें व क्षेत्रों को उन्नति करने का समान अवसर मिल सकें।

(iv) ग्रामीण उद्योगों का विकासः– औद्योगीकरण के कुप्रभावों को रोकने के लिये ग्रामीण जीवन और उद्योग धन्धें का विकास करना चाहिऐं ताकि अधिक से अधिक श्रमिकों को गांव के बाहर ना जाना पड़े और आवास के समीप ही रोजगार की व्सवस्था हो सकें।

(v) नगरों में स्वच्छ बस्तियों का निर्माणः– औद्योगीकरण के कारण नगरों में आवास की समस्या बढ़ गई है। अतः श्रमिक अस्थायी आवास बनाकर अत्यवस्थित बस्तियां बसा लेते है। जो आगे चलकर गन्दी बस्तिया (Slums) का रूप धारण कर लेती है ये गन्दी बस्तियाँ श्रमिकों और किसानों दोनों के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होती है।

(vi) श्रमिक न्यायालयों की स्थापनाः– औद्योगीकरण के कुप्रभावों को रोकने के लिये हमं ऐसे विशेष न्यायालयों की स्थापना करनी चाहिए जिनका प्रमुख कार्य श्रमिकों तथा पूँजीपतियों के बीच उत्पन्न होने वाले झगड़ों का निपटारा कर सकें।

(vii) परिवार नियोजनः– औद्योगीकरण के कारण नगरों की जनसंख्या में वृद्धि हो गई है। बढ़ती हुई जनसंख्या पर नियन्त्रण के लिये परिवार नियोजन पर सरकार को बल देना चाहिऐ।

(viii) अपराधों पर नियन्त्रणः– औद्योगीकरण के कारण अपराधों पर नियन्त्रण करना कठिन हो जाता है। पारिवारिक विघटन, वैयक्तिक विघटन, बाल अपराध, मघपान तथा युवा अपराधों को अधिक प्रोत्साहन मिलता है।

(ix) स्वास्थ्य सम्बन्धी सुधारः– नगरों की सामान्य बस्तियों तथा मजदूर बस्तियों की सुव्यवस्था एवं सफाई का पूर्ण प्रबन्ध करना चाहियें ताकि नगरों से गन्दगी को दूर किया जा सके। और नगर निवासियों तथा श्रमिकों के स्वास्थ्य को ठीक किया जा सकें।

12.5 औद्योगिक ढाँचा और पंचवर्षीय योजनाऐं :

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत के विकास के बारे मे ंयोजनाकारों के द्वारा सोचा जाने लगा। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से विकास के रास्ते पर चलने की नीति अपनाओं जावे लगी। अतः प्रत्येक पंचवर्षीय योजनाओं में भारत के उद्योग धन्धें के विकास के लिये कुछ कदम मी अपनाऐं जाने लगे और उनमें जो भी प्रगति हुई उसे पंचवर्षीय योजनाओं के क्रम में नीचे दिया जा रहा है।

(i) प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–1956) प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ होने के पूर्व भारत सरकार ने सन् 1948 में औद्योगिक नीति की घोषणा लागू कर दी थी। औघोगिक नीति निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र को अलग–2 कर दिया गया था। देश के आधारभूत उद्योगों को शक्तिशाली बनाने की रणनीति तय की गई थी। इस योजना में सिन्दरी उर्वरक कारखाना चितरंजन का इंजन कारखाना, भारतीय टेलीफोन, उद्योग, इंटीयल कोच फैक्ट्री, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स की स्थापना का कार्य प्रारम्भ किया गया।

(ii) द्वितीय योजना (1956–1961) द्वितीय योजना में 1125 करोड़ रूपया औद्योगिक क्षेत्र में व्यय करने में किया गया यह व्यय योजना काल के कुल व्यय का 24 प्रतिशत था। 1954 की औद्योगिक नीति के अनुसार उद्योगों के विकास का कार्यक्रम तय किया गया।

(**iii**) तीसरी पंचवर्षीय (1961–1966) तीसरी योजना में उद्योगों पर 3000 करोड़ रूपये खर्च किये गये थे। इनमें से 1700 करोड़ रूपये सरकारी क्षेत्र में तथा 1300 करोड़ रूपये नीति क्षेत्र में खर्च हुये। कुल मिलाकर योजना काल में औद्योगिक उत्पादन का लक्ष्य 70 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया।

(**iv**) चौथी योजना (1969–1974) चौथी योजना के दौरान उद्योग पर बिनियोग की गई कुल धनराशि 5300 करोड़ रूपये थी, जिससें से सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में 3050 करोड़ रूपये व्यय किये गये, शेष 2250 करोड़ रूपये गैर सरकारी क्षेत्रों में व्यय किये गये।

(**v**) पाँचवी योजना (1974–1979) पाँचवी योजना के अन्तर्गत संगठित उद्योग व खनन उद्योग पर कुल व्यय 10,135 करोड़ रूपया किया गया था। इनमें से 533 करोड़ रूपये छोटे उद्योगों पर खर्च करनें की व्यवस्था की गई। पाँचवी योजना के कुल व्यय पर उद्योगो पर 26 प्रतिशत व्यय किया गया।

(**vi**) छटी योजना (1980–1985) छटी योजना पर उद्योग में 22000 करोड़ रूपये खर्च करने की व्यवस्था की गई यह कुल योजना व्यय का 22.5/–थी। इस व्यय के अतिरिक्त ऊर्जा विकास पर 4300 करोड़ रूपये और कोयला उद्योग पर 2870 करोड़ रूपया व्यय करने का प्रावधान किया गया।

(**vii**) सातवी योजना (1985–1990) सातवी योजना पर औधोगकि विकास पर 2929 करोड़ रूपये व्यय किये गये जो सातवी योजना के कुल व्यय का 13.4/– था इस योजना में उद्योगों व खनिज पर 25.971 करोड़ रूपया और लघु उद्योगों पर 3.249 करोड़ रूपये व्यय किया गया इस योजना में औसत वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य 87./– निर्धारित किया गया।

आठवीं योजना (1992–1997) आठवीं योजना में 38,083 करोड़ रूपयें विनियोग करने का लक्ष्य रखा गया जो बढ़कर 40759 करोड़ रूपये तक पहुँच गया। आठवीं योजना में औसत वार्षिक औधोगकि विकास दर का लक्ष्य 8 रखा गया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सम्मिलित प्रयास किये गयी थी। इस लक्ष्य से 7.3.% लक्ष्य की प्राप्ति हो गयी थी।

नौवी योजना (1997–2002) नौवी योजना में उद्योगों के लिये 69,972 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया था। उद्योगों के लिये औसत वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य 8 रखा

गया परन्तु 5 की औसत वार्षिक वृद्धि दर ही प्रापत की जा सकी जो आठवी योजना में 7.3 प्रतिशत थी।

दशवीं योजना (2002–2001) दसवीं पंचवर्षीय योजना अवधि में उद्योगों की 8.7 प्रतिशत प्रयाशित समस्त वार्षिक वृद्धि योजनावधि के दौरान 10% की लक्ष्य वृद्धि दर से कम रहने की सम्भावना है।

ग्यारवीं योजना (2007–2012) जैसा की ग्यारवीं योजना के दृष्टिकोण पत्र में बताया गया है। सभी नयें प्रवेशको को श्रम बल में शामिल करना पड़ा गैर कृषि रोजगार में 11 वी योजना में 6 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि की आवश्यकता होगी यह गैर कृषि रोजगार पैदा करने में ही नही बल्कि इसके स्थान और स्वरूप का तालमेल बैठाने में भी एक बड़ी चुनौति है।

12.6 भारत के औद्योगिक विकास की आधारभूत प्रवृत्तियां :

भारत में औद्योगिक विकास की प्रवृत्तियों अथवा विशेषताओं को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है।

(i) औद्योगिक क्षमता का विकासः– भरत ने सभी उद्योगों में आत्म निर्भता के स्तर को प्राप्त कर चुकी है। पूँजीगत वस्तुओं के उत्पादन में विशेष वृद्धि हुई है। जिन उद्योगो की औद्योगिक क्षमता का विकास हुआ है। उनमें से प्रमुख खनन् रसायन, पेट्रों–रसायन उर्वरक आदी है।

(ii) औद्योगिक विकास दरः– भरत की औद्योगिक विकास दर में घट–बढ़ होती रही है। 1948 एवं 1956 में भारी विनियोग कर के नई क्षमता उत्पादन हुआ। फलतह पिछले 5 वर्षो में औद्योगिक उत्पादन बढ़कर 5 गुना हो चुका है। सन् 1954 से 1956 के बीच औद्योगिक विकास दर औसतन 8 की थी।

(iii) आधारभूत उद्योगों का तीव्र विकासः– स्वतन्त्रता के बाद विशेष रूप से पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत भारत के योजनाकारों ने आधारभूत उद्योग जैसे, इस्पात, कोयले, उर्वरक, चीनी, ईधन के प्राथमिक साधन जैसे कोयले का उत्पादन तेलशोधक, कारखानों, इंजीनियरिंग का सामान बनाने वाले उद्योगों में काफी प्रगति हुई है। इन सभी उद्योगों का आधुनिककरण कर दिया गया हैं। तेल और गैस के लिये ग्रहन खोज के कार्याक्रम तैयार किये जाने लगे थे।

इस प्रकार हम कर हैं सकते है। कि भारत के आधारभूत उद्योगों में लगातार विस्तार होता जा रहा है।

(**iv**) उत्पादन में वृद्धिः– भारत के औद्योगीकरण के विकास के कारण उद्योगो में लगातार वृद्धि होती आयी है। कपड़ा, खाद, सीमेन्ट, विद्युत एल्मुनियम कागज आदि के कारखाने में काफी अधिक उत्पादन हुआ।

(**vi**) प्रभावपूर्ण माग एवं औद्योगिक विकासः– किसी भी देश की प्रभावपूर्ण मांग (Effective Dimond) उस देश के औद्योगिक विकास को तय करती है। प्रभावपूर्ण मांग आय स्तर, उपयोग प्रवृति व सम्पत्ति के विवरण पर निर्भर करती है। भारत में आय–स्तर धीरे–धीरे बढ़ा है। उपयोग की सामान्य वस्तुओं की मांग के साथ–साथ उपयोग की टिकाऊ वस्तुओं जैसे रेड़ियों, टी0वी0 फ्रिज, कार, स्कूटर, आदि वस्तुताअें कीमांग में लगातार वृद्धि होती जा रही है।

(**vi**) निर्यात में वृद्धिः– भारत में अब परम्परागत निर्यात के साथ–साथ गैर परम्परागत निर्यात भी बढ़ने लगे है। दूसरे अंतर्गत मशीनों पंखों स्कूटर, साईकिलों, विद्युत उपकरणों का निर्यात बढ़ा है। जहाँ तक परम्परागत निर्यातों का प्रश्न है। उससें बहुत बड़े पैमाने पर निर्यात बढ़े है प्रमुख रूप से तैयार वस्त्र सूती वस्त्र, उन व उनी वस्त्र, मानव निर्मित वस्त्र रेशमी वस्त्र और जूट का सामान है।

12.7 भारत में औद्योगिक पिछडेपन के कारण :

भारत ये अभी भी औद्योगिक पिछडेपन कहें या उसके विकास की धीमी गति कहें या उसकी समस्या कहें बात एक ही है। बहुत कुछ पिछ़डा ही है। अनेकानेक उपायों को अपनाने के बाद भी औद्योगिक उत्पादन की समस्या यहाँ बनी हुई है। इसके पिछड़ेपन के प्रमुख कारण निम्न है।

(1) कीमतों का ऊँचा होनाः– भारतीय उद्योगों के द्वारा जिन वस्तुओ का उत्पादन किया जाता है। उनकी लागते तुलनात्मक दृहश्ट से काफी ऊँची होती है। यही कारण है। कि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भारत की वस्तुओं की मांग काफी कम होती है। अतः हम समुचित निर्यात नही कर पाते है।

(2) आधारभूत उद्योगो का विकासः– भारत में आधारभूत उद्योगों का विकास हो रहा है। परन्तु इनके उत्पादों की घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय माँग इतनी अधिक है की

इनके द्वारा उसकी पूर्ति नही की जा सकती है। अतः हमारे निर्यात नही बढ़ रहे है। और घरेलू माँग की भी पूर्ति नही हो पा रही है।

(3) कुशल श्रमिकों की कमीः– औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने के लिये कुशल श्रमिकों का होना आवश्यक होता है। जब तक कुशल श्रमिक नही होंगे तब तक आशानुकूल उत्पादन नही बढ़ सकता है। श्रमिकों की निपुणता ही वस्तु को उत्कृष्ट बनाती है। परन्तु हमारे श्रमिक अभी भी अकुशल है। जिसके कारण भारत के उत्पाद उच्च कोटि के नही है।

(4) श्रम संधों की दोशपूर्ण नीतिः– हमारे देश में उद्योगों के सामने समय समय पर श्रम संधो के द्वारा श्रमिको की उन समस्याओं को भी उठाया जाता रहा है। जो औचित्यहीन होती है। आऐ दिन उद्योगों में टूल डाउन हड़ताल तालाबन्दी, लड़ाई , झगड़े होते रहते है। अतः सेवायोजकों का अधिकांश समय झगड़ों को निपटाने में ही खर्च होता है।

(5) जनसंख्या तेजी से बढ़नाः– भारत में जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। सरकार का अधिकांश खर्चा जनसंख्या के भरण–पोषण में खर्चा हो रहा है। पारिवारिक दृष्टि से भी जनसंख्या का बढ़ना वृद्धि बचतों को कम कर देती है। अतः पूँजी निर्माण न होने से निवेश की मात्रा को बढ़ाना सम्भव नही है।

(6) कुशल साहसियों का अभावः– हमारे देश में आज भी कुशल साहसियों का अभाव है। उनमें जोखिम झेलने की क्षमता भी अन्य देश के सहसियों की तुलना में कम है। ये लोग गैर परम्परागत तौर–तरीकों से उन्ही वस्तुओं के उत्पादन में लगे हुये है। जिनकी माँग पर दिन पर दिन कम होती जा रही है। जब तक किसी देश में योग्य व साहसी लोग नही होंगे तब तक औद्योगिक विकास में तेजी नही लायी जा सकती है।

(7) ऊर्जा की समस्यः– ऊर्जा आर्थिक विकास का साधन है आज छोटे–बड़े उद्योग धन्धें विद्युत शक्ति से चलते हैं हमारे देश के उद्योगों के सामने विद्युत संकट उत्पादक में बाधक बना हुआ है।

(8) पूँजी का अभावः– निम्न आय व अन्य उपयोग स्तर यह भारत की अर्थव्यवस्था की स्थिति है। बचतों के ना होने के कारण उद्योग धन्धें को खोलने और खुले

हुऐ उद्योगों को पूँजी की आपूर्ति उनकी मांग के अनुरूप न होने से आधोगिक विकास में बाधक बना है।

(9) स्थापित क्षमता का क्रय होनाः– भारत के उद्योगों की क्षमता से कम रही है। और उद्योगो ीक एक समस्या यह है की यह 70 से 90 प्रतिशत तक ही उत्पादन कर पाती है। जिसका स्थपित क्षमता से कम उत्पादन करने का भी प्रभाव रोजगार के स्तर को प्रभावित करता है। उत्पादक क्षमता में कमी में प्रमुख कारण हो सकते है। विद्युत शक्ति का आभाव कच्चे माल की कमी तकनीकि ज्ञान का ना होना रमिकों और साहसियों की अयोग्यता आदी।

(10) सरकारी हस्तक्षेपः– उदारीकरण की नीति से पूर्व देश में उद्योग धन्धें के संचानल में सरकार का कठोर नियन्त्रण था जिससे देष के उद्योगवति काफी निराश थे उन पर अनेक प्रकार के नियन्त्रणें और आपत्तियों के निराकरण में उद्योगों के व्यवस्थापको का अधिकारिक समय बरबाद होकता रहा। आज उदारीकरण की नीति को अपनाने के बाद उद्योगों का `माड़ी बहुत राहत तो मिली है फिर भी सरकार के ,ारा ज्ञान नियन्त्रणों को पूरी तरह से हटाया नही गया है।

12.8 औद्योगिक पिछडेपन को दूर करने के उपायः–

औद्योगिक पिछड़ेपन को दूर करने के निम्न उपाय है।

(1) उद्योगों का आधुनिकीकरण करनाः– भारत में अधिकांश उद्योग पुराने तौर–तरीकों से चलाऐं जाते है विश्व में नई नई तकनीक का विकास हो चुका है अतः देश में औद्योगिक क्रान्ति लानी है। तो उद्योगों का आधुनिकतम मशीनों व तकनीक को उपलब्ध करवाया होगा।

(2) पूँजी की उपलब्धताः– जैसा की हमनें उद्योगों की समस्या के अन्तर्गत इस बात की उल्लेख किया जा सकता है। देश के उद्योग प्रगति कर रहे है। अतः उद्योगों को पार्याप्त मात्रा में पूँजी उपलब्ध करायी जानी चाहिएं।

(3) श्रम सम्बन्धों में सुधारः– श्रमिकों और सेवायोजकों के बीच जब तक मित्रतापूर्वक सम्बन्ध नही होगें तब तक उद्योगों की प्रगति में बाधायें आती जाती रहेंगी। अतः उत्पादक के स्तर पर गिरावट आती है बेरोजगारी बनती है और आर्थिक विकास अवरूद्ध हो जाता है।

स्वप्रगति परीक्षण

3. औद्योगिकरण के दुष्परिणामों को रोकने के लिए सुविधाजनक कानूनों की क्या जरूरत है?
4. औद्योगीकरण के दुष्परिणामों को रोकने हेतु नगरों में स्वच्छ बस्तीयों के निर्माण का क्या औचित्य है?

(4) शक्ति के साधनों का प्र्याप्त दोहनः– उद्योग धन्धों के उत्पादन में शक्ति के साधनों का महत्वपूर्ण स्थान होता है परन्तु भारत में उर्जा के साधनों का समुचित दोहन ना हो पाने के कारण उद्योगो कों आवश्यकता के अनुसार कार्य के लिये साधन नही हो पाता है।

(5) औद्योगिक रूग्णता की समस्या को दूर करनाः– देश के अधिकांश उद्योगों को रोग लग चुका है। लगातार घाटे के कारण अधिकांश उद्योग बन्द होते जा रहे है। अतः सरकार को चाहिए। की वे ऐसे उद्योग को हर प्रकार की सुविधा उपलब्ध कराऐं बैंको के द्वारा भी इन्हें पूँजी उपलब्ध कराई जाऐ। कच्चे माल और मशीनो की सुविधा भी उपलब्ध कराई जाए।

(6) उत्पादन लागत में कमी करनाः– जब तक उद्योग अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग नही करते तब तक उत्पादों की किमतों में कमी की आशा नही कि जा सकती है। अतः कीमत में वृद्धि का एक कारण–'कच्चें माल का समय पर ना मिलना,अकुशल श्रमिको का होना, चार पाँच घण्टा विद्युत कटौती आदि। यदि इस प्रकार के अवरोधों को दूर कर दिया जाता है तो उद्योग अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग कर सकें ।

(7) आधारभूत संरचना का विकासः– औद्योगिक विकास का आधारभूत संरचना का विकास करना आवशक है। जैसे यातायात संचार के साधन ऊर्जा विकास आदी को प्राथमिकता के आधार पर विकसित किया जाना चाहिऐ। यदि उद्योगों का आधारभूत सुविधायें ही नहीं मिल पाऐंगी तो उद्योगपती उद्योग लगाने से पीछे हट जाऐंगे। और औद्योगिक विकास में कमी आ जाऐगी।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नः–

प्र01–भारत में औद्योगिक विकास के आधारभूत प्रवृत्तियों को बताइयें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्र02–भारत में औद्योगिक पिछड़ेपन को दूर करने के उपाय को बताइयें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.9 सरांश

प्रस्तुत ईकाई में औधागिकरण क्या है ? तथा भारतीय समाज पर पड़ने वाले इसके विभिन्न प्रभावों को विस्तार पूर्वक समझाया गया है। इसके साथ ही साथ औद्योगीकरण के दुष्परिणामों एवं इसको रोकने के उपायों के बारे में बताया गया है।

इसी ईकाई में भारत में औद्योगिक विकास को आधारभूत एवं इसके पिछड़ेपन के कारणों को भी बताया गया है।

12.10 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1. औद्योगीकरण शब्द एक प्रकार से यन्त्रीकरण का पार्यावाची है। जब मशीनों का अधिकाधिक प्रयोग करके वस्तु के उत्पादन का प्रयास किया जाता है। तो उसे औद्योगीकरण की प्रक्रिया कहा जाता है। जिसके अन्तर्गत उत्पादन की आधुनिक व्यवस्था एवं सम्बन्धित संस्थाओं का विकास एवं प्रसार होता है। समाजशास्त्र में इसका अर्थ उद्योगों के विकास एंव उत्पादन की आधुनिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप समाज के विकास एवं प्रसार होता है। समाजशास्त्र में इनका अर्थ उद्योगों के विकास एवं उत्पादन की आधुनिक व्यवस्था के परिणामरूवरूप समाज के विभिन्न पक्षों में होने वाला परिवर्तनों के लिये किया जाता है।

2. पी0 कांग, चांग, के अनुसार (च्मम.ज्ञवदहए बिंदह) में औद्योगीकरण का परिभाषा इन शब्दों में दी है। औद्योगीकरण एक प्रक्रिया है। जिसमें उत्पादन कार्यो में क्रमबद्ध परिवर्तन होते रहते है। इसके अंतर्गत वे मूलभूत परिर्वतन आते है। जो किसी नऐं

NOTES

बाजार की स्थापना एवं किसी नऐं क्षेत्र के विदोहन के साथ–साथ होते हैं यह एक प्रकार से पूँजी को गहन व व्यापक बना देने को प्रक्रिया है।

3. सुविधाजनक कानूनों का निर्माणः– श्रमिकों की सुविधा के लिये ऐसे कानूनों का निर्माण करना चाहिऐ जिनसें श्रमिक के हित में अनेक कार्य किया जा सके। और पूँजीपति वर्ग उनका शोषण ना कर सकें। श्रमिको में इन कानूनों के विषय में चेतना भी विकसित की जानी चाहिए।

4. औद्योगीकरण के कुप्रभावों को रोकने के लिये ग्रामीण जीवन और उद्योग धन्धें का विकास करना चाहिऐं ताकि अधिक से अधिक श्रमिकों को गांव के बाहर ना जाना पड़े और आवास के समीप ही रोजगार की व्सवस्था हो सकें।

12.11 पारिभाषिक शब्दावलीः–

1. **कारखाना**–जहॉ कम से कम 10 या 10 अधिक व्याक्ति काम करते हो और बिजली चालित यन्त्र का प्रयोग होता हो अथवा 20 या 20 से अधिक व्यक्ति काम करते हो और बिजली चालित यन्त्र का प्रयोग न होता हो।
2. **तालाबन्दी**–जब श्रमिक कार्य करने के लिए उपलब्ध हो लेकिन मालिक द्वारा कार्य करना का स्थान बन्द कर दिया जाता है।
3. **उदारीकरण**– व्यापार की नीति को सरल बनाना (विश्व बाजार के लिए खोलना)

12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference Book)

1. डा0 ऐ0के0 पन्त, ब्यावसायिक पर्यावरण, प्रकाशक–लक्ष्मीनारायण अग्रवाल आगरा
2. डा0 रामनाथ शर्मा एवं डा0 राजेन्द्र कुमार शर्मा, भारतीय समाज, संस्थायें और संस्कृति। प्रकाशक– एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (नई दिल्ली)
3. डा0 एस0एम0 कपूर एवं डा0 एस0के0 मित्तल, इण्टरमीडिएट समाजशास्त्र प्रकाशक–चित्रा प्रकाशन, मेरठ।
4. इन्द्रजीत सिंह, श्रमिक विधियॉ, सेन्ट्रल पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

NOTES

इकाई– 13

नगरीकरण
(Urbanisation)

इकाई की संरचना

13.0 उददेश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 नगरीकरण
13.3 नगरीकरण की प्रक्रिया
13.4 नगरीकरण की विशेषताएं
13.5 भारत में नगरीकरण के सुधार के प्रयास (74वां संविधान संशोधन)
13.6 भारत में नगरीकरण का सामाजिक प्रभाव
13.7 नगरीकरण की समस्याएं
13.8 नगरीकरण की चुनौतियां
13.9 सारांश
13.10 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर
13.11 पारिभाषिक षब्दावली
13.12 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर
13.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.15 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 उददेश्य

इस इकाई को पठने के उपरान्त आप–

- नगरीकरण क्या है? इसे समझ पायेंगे।
- नगरीकरण की प्रक्रिया, भारत में नगरीकरण के सुधार के प्रयास के विषय में जान पायेंगे।
- भारत में नगरीकरण के प्रभाव को जान पायेंगे।

- नगरीकरण की समस्याओं से अवगत हो पायंगे।

13.1 प्रस्तावना

मनुष्य अपने सामाजिक जीवन की शुरुआत में छोटे–छोटे समूहों/कबीलों में रहता था और धीरे–धीरे इन कबीलों ने गावों का रुप ग्रहण किया जहॉ पर वह अपने जाति, वर्ग और भाषायी विशेष के साथ रहने लगा। किन्तु ज्ञान और विकास ने उसे अपने इस समुदाय से बाहर निकल कर अपने सुखद जीवन के लिए कुछ नया करने के लिए प्रेरित किया। मनुष्य ने अपने सुखद जीवन के लिए हर स्तर पर प्रयास किये हैं और सुखद जीवन के लिए उसके ये प्रयास एक लम्बे संर्घष का परिणाम है।

रोटी, कपड़ा और मकान जैसे अति आवश्यकीय बुनयादी जरुरतों के अतिरिक्त शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार भी व्यक्ति की प्राथमिकता में आ गये हैं। सुखद जीवन के लिए व्यक्ति का एक स्थान से अन्य स्थानों पर पलायन होता रहा है और हो भी रहा है। शायद यह प्रक्रिया, मनुष्य जीवन रहने तक सतत् जारी रहेगी। व्यक्ति के विकास के साथ उसकी जरुरतों में भी वृद्धि हुई है और यह वृद्धि उसके अपने सुखद जीवन के लिए हुई है। नगरों या शहरों का विकास या नगरीकरण भी उसी का परिणाम है। इस इकाई में हम नगरीकरण को समझायेंगे। जिसमें हम नगरीकरण की प्रक्रिया और भारत में नगरीकरण पर चर्चा करेंगे।

13.2 नगरीकरण

नगर, शहर या नगरीकरण शब्द से परिचय होते ही दिमाग में लम्बी–चौड़ी भीड़ भरी सड़कें, उॅची–उॅची इमारतें, चका–चौंध, तेज रफ्तार से भागते वाहनों का चित्र सामने आ जाता है। जीवन को भौतिक सुख प्रदान करने के सभी साधन नगरों में उपलब्ध हैं और बेहतर जीवन नगरीकरण का परिचायक है। समाजशास्त्र के क्षेत्र में ग्रामीण समाज या परिवेश का शहरी पर्यावरण में बदलना या ग्रामीणों के द्वारा नगरीय मूल्यों(Urban Values) को अपने जीवन में अपनाना नगरीकरण कहलाता है। सामाजिक मानवशास्त्र के क्षेत्र में लोक संस्कृति(Folk Culture) का शहरी संस्कृति(Urban Cultural) में परिवर्तित होना नगरीकरण कहलाता है।

जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में जाना 'नगरीकरण' कहलाता है। इसके परिणामस्वरुप जनसंख्या का बढ़ता हुआ भाग ग्रामीण स्थानों में रहने की बजाय शहरी स्थानों में रहता है। थौमसन वारन ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की

हैः ''यह ऐसे समुदायों के व्यक्तियों, जो प्रमुख रुप से या पूर्ण रुप से कृषि से जुड़े हुये हैं, का उन समुदायों में जाना है जो साधारणतया (आकार में) उनसे बड़े हैं और जिनकी गतिविधियां मुख्यरुप से सरकार, व्यापार, उत्पादन या इनसे सम्बद्ध कारबारों पर केन्द्रित हैं''। एन्डर्सन के अनुसार नगरीकरण एकतरफा प्रक्रिया न होकर दोतरफा प्रक्रिया है। इसमें केवल गांवों से शहरों में जाना नहीं होता, परन्तु इसमें प्रवासी के रुखों, विश्वासों, मूल्यों और व्यवहार के संरुपों में भी परिवर्तन होता है। उसने नगरीकरण की पांच विशेषतायें बताई हैंः मुद्रा अर्थव्यवस्था, सरकारी प्रशासन, सांस्कृतिक परिवर्तन, लिखित अभिलेख, और अभिनव परिवर्तन।

नगरीय क्षेत्र' या 'नगर' क्या है? इस शब्द का प्रयोग दो अर्थ में होता है–जनसांख्यिकीय रुप में और समाजशास्त्रीय रुप में। पहले अर्थ में जनसंख्या के आकार, जनसंख्या की सघनता, और दूसरे अर्थ में विषमता, अवैयक्तिकता, परस्पर निर्भरता, और जीवन की गुणवत्ता पर ध्यान केन्द्रित रहता है।

13.3 नगरीकरण की प्रक्रिया

नगरीकरण एक एसी ढांचाई प्रक्रिया है जो सामान्यतः औद्योगिकीकरण से संबंधित है। परन्तु एसा भी नहीं है कि नगरीकरण का स्वरुप हमेशा मात्र औद्योगिकीकरण ही रहा हो। नगरीकरण में हम छोटे–बड़े औद्योगिक और व्यावसायिक, वित्तीय और प्रशासनिक ढांचे को लेते हैं। यातायात और संचार के तकनीकी विकास, सांस्कृतिक और मनोरंजक गतिविधियां नगरीकरण की प्रक्रिया है।

पी0 एम0 हॉसर के अनुसार नगरीकरण वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत शहर की आबादी में वृद्धि होती है या किसी जगह में नये शहर का विकास होता है तो उस प्रक्रिया को नगरीकरण कहा जायेगा। हॉसर के इस विचार का समर्थन करते हुए होप टिजलेट के कहा कि ''नगरीकरण जनसंख्या के केन्द्रीकरण की एक प्रक्रिया है जो दो प्रकार से होती है– पहला, जनसंख्या के केन्द्रिकरण की संख्या में वृद्धि और दुसरा, किसी केन्द्र विशेष के आकार में वृद्धि। अतः नगरीकरण के संबंध में कहा जा सकता है कि नगरीकरण के अन्तर्गत दो प्रकार की प्रक्रियाएं हैं– पहला, शहरों की संख्या में गुणात्मक वृद्धि तथा दुसरा, शहर विशेष के आकार में वृद्धि। कोलर्स एवं निस्टुएन ने नगरीकरण को ग्रामीण जीवन से शहरी जीवन में परिणति बताया है।

पोकॉक ने नगरीकरण को एक एसी प्रक्रिया माना है जिसके अन्तर्गत ग्रामीण लोग शहर की ओर प्रवास करते हैं और नगरों के प्रभाव के कारण उनके तौर–तरीकों में परिवर्तन आता है। पोकॉक के इस विचार का समर्थन नेल्स एंडर्सन ने किया किन्तु साथ ही यह भी कहा कि ग्रामीणों का शहर में जाना और परम्परागत जीवन में परिवर्तन ही नगरीकरण नहीं है, किन्तु साथ ही यह भी कहा कि ग्रामीणों का शहर में जाना और परम्परागत जीवन में परिवर्तन ही नगरीकरण नहीं है, बल्कि यह एक बृहद प्रक्रिया है। प्रवास के आभाव में भी नगरीकरण की प्रक्रिया संभव है। यदि गांव के लोग वहीं पर रहकर नगरीय जीवन शैली को अपनाते हैं तो वह भी नगरीकरण कहा जायेगा। लेकिन जनसंख्याशास्त्रियों ने एक स्वर में इस बात का खंडन करते हुए कहा कि नगरीकरण की प्रक्रिया में प्रवास की बात नहीं जुड़नी चाहिए। प्रवास और नगरीकरण दोनों अलग–अलग प्रक्रियाएं हैं। जनसंख्याशास्त्रियों का कहना है कि लोगों का गांव से शहर की ओर जाना प्रवास की प्रक्रिया है ना कि नगरीकरण की प्रक्रिया। यह बात अलग है कि दोनों एक–दुसरे को बहुत अधिक प्रभावित करते हैं। डेविस ने नगरीकरण को जनसंख्याशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है और कहा कि नगरीकरण समस्त जनसंख्या की नगरीय आबादी में अनुपातिक वृद्धि है या मात्र उस अनुपात में वृद्धि है। यहॉ पर डेविस का कहना यह है कि यदि ग्रामीण आबादी की तुलना में शहरों की आबादी में तेजी से वृद्धि होती है तो उसे नगरीकरण कहा जायेगा, किन्तु यदि गांव और शहरों की आबादी समान अनुपात में बढ़ती है तो उसे नगरीकरण नहीं कहा जायेगा।

नगरीकरण को एक भौगोलिक प्रक्रिया के रुप में स्पष्ट करते हुए स्मेल्स ने कहा कि ''नगरीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत किसी क्षेत्र और वहां के निवासियों का शहरी होना है।'' इस परिभाषा से नगरीकरण के तीन तत्व स्पष्ट होते हैं– 1. गांव से शहर की और पलायन, 2. भूदृष्य में परिवर्तन और 3. आवासीय वातावरण में परिवर्तन। गांव से शहर की ओर पलायन ने शहर की भूमि का विस्तार किया, उसका आकार बढा और सौन्दर्यकरण भी हुआ। मीचेल ने नगरीकरण की प्रक्रिया के साथ पेशे में परिवर्तन की बात कही है। मीचेल का कहना है कि कृषि पर आधारित पेशों को छोड़कर औद्योगिक पेशे को अपनाना भी नगरीकरण है।

13.4 नगरीकरण की विशेषताएँ

नगरीकरण की निम्नलिखित विशेषताएं हैं–

1. **श्रम विभाजन और पेशों में अंतर–** नगरों के अंतर्गत वृहत् पैमाने पर श्रम–विभाजन होता है। विभिन्न तरह के पेशों के अंतर्गत विशिष्टीकरण पाया जाता है। यदि एक तरफ कुछ लोग मजदूरी करते हैं तो दूसरी तरफ कुछ लोग बड़े–बड़े शल्य चिकित्सक भी होते हैं, कुछ अनपढ़ हैं तो कुछ उच्च कोटि के विद्वान भी, कुछ आदमी हस्तनिर्मित सामान बेच रहे हैं तो कुछ आधुनिक कल–कारखानों में बनी परिष्कृत चीजों का भी प्रयोग कर रहे हैं।

2. **कार्य के लिए मशीनों पर निर्भरता–** नगरों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए लोग मशीनों पर अपेक्षाकृत अधिक निर्भर करते हैं जो आधुनिकता का भी परिचायक है। प्रायः वैसी मशीनों पर जिनका संचालन तेल या बिजली से होता है।

3. **आदर्शों और मूल्यों में परिवर्तन–** शहरी जीवन में परम्परागत आदर्शो एवं मूल्यों से लोगों के व्यवहारों का नियन्त्रण बहुत कम होता है। प्राथमिक समूह गौण होने लगते हैं तथा द्वितीयक समूह की प्रधानता बढ़ जाती है। लोगों के आपसी सम्बन्ध बहुत छिछले और अस्थायी हो जाते हैं।

4. **प्रवास और सामाजिक गतिशीलता में लचीलापन–** नगरों में प्रवास और सामाजिक गतिशीलता की प्रवृत्ति बहुत अधिक पायी जाती है। नगरों के लोग आसानी से एक जगह से दूसरी जगह या एक शहर से दूसरे शहर जाने के लिए तैयार रहते हैं। उन्हें अपने स्थान से ग्रामीण लोगों की तरह कोई गहरा लगाव नहीं होता है। बेहतर अवसर की खोज में एक पेशे से दूसरे पेशे में भी जाने को तैयार रहते हैं। वे समान किस्म के पेशे में जगह बदलने में भी नहीं हिचकते हैं। सामाजिक स्थिति एवं मान–सम्मान के लिए लोग स्थान और पेशे में परिवर्तन के लिए तत्पर रहते हैं।

5. **पर्यावरण में परिवर्तन–** शहरी पर्यावरण साधारणतया मानव निर्मित होता है और वह परिवर्तनशील भी होता है। जैसे–जैसे आर्थिक विकास होता है तथा विज्ञान और प्रौद्योगिकी में परिवर्तन आता है वैसे–वैसे पर्यावरण में भी परिवर्तन आता रहता है। कभी शहरों के अंतर्गत हल्के वाहनों, साइकिल और रिक्शा जैसे वाहनों की प्रधानता थी तो आज विभिन्न प्रकार के मोटरकार, स्कूटर, हवाई जहाज और रेलगाड़ी दिखाई पड़ते हैं। सौ साल के अंतराल में शहरों में इतना

अधिक परिवर्तन आ जाता है कि हमारी ऑखें चौंधिया जाती हैं। लेकिन गॉव सौ साल के अंतराल में भी वैसा का वैसा ही बना रह जाता है।

6. **समय की महत्ता–** शहरों में लोगों का जीवन घड़ी की सुई से निर्धारित होता है। समय से लोग दफ्तर जाते हैं और समय से घर वापस आते हैं। विद्यार्थी भी समय के अनुसार वर्ग में जाते हैं और समय से वर्ग से बाहर निकलते हैं। ऐसा लगता है कि शहरों में लोग समय के गुलाम होते हैं। हमारे रोजमर्रे के जीवन में समय की इतनी महत्त होती है कि हम सारा काम–काज घड़ी देखकर ही करते हैं। शहरी लोग किसानों की तरह अपने काम में स्वच्छंद नहीं होते हैं। हमारे व्यस्त जीवन में वक्त की काफी पाबंदियॉ होती हैं।

7. **परिवर्तनशीलता और समायोजन की क्षमता–** शहरी जीवन में लोगों में एक प्रत्याशा की मनोवृत्ति पाई जाती है। जब कभी भी शहरों में कुछ परिवर्तन होता है तो उससे वहॉ के लोगों को ऐसा लगता है कि वहॉ कुछ और भी परिवर्तन होने जा रहा है। जैसे–जैसे शहरों में परिवर्तन आता है, वैसे–वैसे वहॉ लोग भी बदलते जाते हैं क्योंकि शहरी लोगों में समायोजन की क्षमता अधिक पायी जाती है। यथार्थ तो यह है कि शहरी लोग कुछ ज्यादा ही परिवर्तन पसंद करते हैं। शहर के लोग इतने परिवर्तन प्रेमी होते हैं कि जब अक्सर परिवर्तन नहीं दिखायी देता है तो उन्हें कुछ अच्छा महसूस नहीं होता है।

8. **कागजी और कानूनी कार्यवाही पर अधिक विश्वास–** शहरी जीवन में हम मौखिक वादों के आधार पर व्यवहार कम करते हैं। हर कार्य के लिए रेकॉर्ड, कानून, गवाह, लिखित संविदा का सहारा लेते हैं। जिस तरह बड़े–से–बड़े काम भी गॉवों के अंतर्गत अलिखित या मौखिक होते हैं उस तरह की बात शहरों में नहीं पाई जाती है। शहरों के अंतर्गत इतना अधिक अविश्वास या बेईमानी है कि हम हर कार्य को लिखकर ही सम्पन्न करना पसंद करते हैं।

अगर हम आधुनिक नगरीकरण की बात करें तो इसकी विशेषताओं में हमें औद्योगीकरण नजर आता है। औद्योगीकरण के कारण ही नगरों की संख्या में वृद्धि हो रही है। उद्योग और व्यवसाय के कारण कई नगर आपस में इस प्रकार जुड़ जाते हैं कि वो एक ही नगर की तरह दिखाई देते हैं। एसे नगरों की जनसंख्या यदि करोंड़ों में हो तो उसे नगरीय श्रंखला या उपनगरीय समूहन(Conurbation) कहा जाता है। आधुनिक नगरीकरण के संबंध में यह भी कहा जा सकता है कि नगरीकरण का विकास महानगरों

पर आधारित हो रहा है। आधुनिक नगरीकरण के कारण विश्व स्तर पर शहर–गॉव प्रवास की प्रक्रिया में बहुत अधिक बढोत्तरी हुई है। लोग गॉवों की तरफ से शहरों की ओर आ रहे हैं। महानगरों में हर स्तर पर रोजगार के अवसर और औद्योगीकरण के विकास से रोजगार की सम्भावनाओं ने गॉव से शहरों की ओर प्रवास को बढाया है। आधुनिक नगरीकरण ने हमारी संस्कृति और परम्पराओं को विश्व स्तर पर प्रभावित किया है। शहरीकरण ने लोगों के जीवन के मापदण्ड और मूल्यों(Values) को बदल दिया है।

13.5 भारत में नगरीकरण के सुधार के प्रयास(74वां संविधान संशोधन)

भारत में नगर नकायों की आवश्यकता शहरी क्षेत्रों के बेहतर प्रशासन, लोकतांत्रिक ठांचे की मजबूती, शहरी स्थानीय लोगों की सहभागिता और जिम्मेदार क्षेत्रीय प्रशासन के लिए महसूस की गयी। 74वें संविधान संषोधन के माध्मय से नगरीय क्षेत्रों में स्थानीय लोगों को निर्णय लेने के स्तर पर उनकी सक्रिय और प्रभावषाली भागीदारी को सुनिष्चित करने का प्रयास किया गया है । इसके माध्यम से नगर निकायों (नगर निगम, नगर पलिका/नगर परिषद, नगर पंचायत) में षहरी लोगों की भागीदारी बढ़ाने के साथ–साथ यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि अब षहरों, नगरों, मोहल्लों की भलाई उनके हित व विकास संबंधी मुद्दों पर निर्णय लेने का अधिकार केवल सरकार के हाथ में नहीं है। 74वें संविधान संषोधन ने आम जन समुदाय की भागीदारी को स्थानीय स्वषासन में सुनिष्चित किया है। नगर–निकायों को मिले अधिकारों एवं दायित्वों में सबसे महत्वपूर्ण बात यह रही कि योजनाओं के निमार्ण एवं क्रियान्वयन का दायित्व नगर–निकायों को होगा, यही नहीं केन्द्र एवं राज्य की योजनाओं का क्रियान्वयन भी नगर–निकायों के माध्यम से किया जायेगा। यहां इस बात को भी सुनिष्चित किया गया है कि योजनाओं के निमार्ण प्रक्रिया नीचे से ऊपर की ओर चले। जिससे आम जन–समुदाय अपनी प्राथमिकता के अनुसार योजनाओं के निमार्ण और क्रियान्वयन में अपनी प्रभावषाली भागीदारी निभा सके।

74वें संविधान संशोधन को लाने के के पीछे निम्नलिखित सोच थी–

- संविधान के 74वें संषोधन अधिनियम द्वारा नगर–प्रषासन को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है।
- इस संषोधन के अन्तर्गत नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद एवं नगर पंचायतों के अधिकारों में एक रूपता प्रदान की गई है।

- नगर विकास व नागरिक कार्यकलापों में आम जनता की भागीदारी सुनिष्चित की गई है। तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया में नगर व षहरों में रहने वाली आम जनता की पहुंच बढ़ाई गई है।
- समाज के कमजोर वर्गों जैसे महिलाओं, अनुसूचित जाति, जनजाति व पिछड़े वर्गों का प्रतिषतता के आधार पर प्रतिनिधित्व सुनिष्चित कर उन्हें भी विकास की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया है।
- 74वें संषोधन के माध्यम से नगरों व कस्बों में स्थानीय स्वषासन को मजबूत बनाने के प्रयास किये गये हैं।
- इस संविधान की मुख्य भावना लोकतांत्रिक प्रक्रिया की सुरक्षा, निर्णय में अधिक पारदर्षिता व लोगों की आवाज पहुंचाना सुनिष्चित करना है।

74वें संविधान संशोधन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

- देष में नगर संस्थाओं जैसे नगर निगम, नगर पालिका, नगर परिषद तथा नगर पंचायतों के अधिकारों में एकरूपता रहे।
- नागरिक कार्यकलापों में जन प्रतिनिधियों का पूर्ण योगदान तथा राजनैतिक प्रक्रिया में निर्णय लेने का अधिकार रहे।
- नियमित समयान्तराल में प्रादेषिक निर्वाचन आयोग के अधीन चुनाव हो सके व कोई भी निर्वाचित नगर प्रषासन छः माह से अधिक समयावधि तक भंग न रहे, जिससे कि विकास में जनप्रतिनिधियों का नीति निर्माण, नियोजन तथा क्रियान्वयन में प्रतिनिधित्व सुनिष्चित हो सके।
- समाज की कमजोर वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिष्चित करने के लिये (संविधान संषोधन अधिनियम में निर्दिष्ट) प्रतिषतता के आधार पर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व महिलाओं को तथा राज्य (प्रादेषिक) विधान मण्डल के प्राविधानों के अन्तर्गत पिछड़े वर्गों को नगर प्रषासन में आरक्षण मिलें।
- प्रत्येक प्रदेष में स्थानीय नगर निकायों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये एक राज्य (प्रादेषिक) वित्त आयोग का गठन हो जो राज्य सरकार व स्थानीय नगर निकायों के बीच वित्त हस्तान्तरण के सिद्वान्तों को परिभाषित करें। जिससे कि स्थानीय निकायों का वित्तीय आधार मजबूत बने।
- सभी स्तरों पर पूर्ण पारदर्षिता रहे।

74वें संविधान संशोधन के अन्तर्गत नगरों के बेहतर प्रशासनिक और विकासात्मक कार्यों के लिए नगरों के अन्तर्गत नगरपालिकाओं, नगर निगमों और नगर पंचायतों के गठन की व्यवस्था है।

13.6 भारत में नगरीकरण का सामाजिक प्रभाव

भारत में नगरीकरण या बढते नगरों का गहरा सामाजिक प्रभाव हैं। भारत एक ग्राम–प्रधान देश है, यहॉ के लोगों के अपने रीति–रिवाज, खान–पान, वेश–भूषा, सामाजिक बंधन, सामाजिक और पारिवारिक मर्यादाएं हैं। किन्तु नगरों और महानगरों की आधुनिक संस्कृति ने यहॉ के समाज पर गहरा प्रभाव डाला है। भारत में नगरीकरण के सामाजिक प्रभाव को हम निम्नलिखित विन्दुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं।

1. **परिवार और रिस्तेदारी–** नगरीकरण केवल परिवार के ढांचे को ही प्रभावित नहीं करता परन्तु वह परिवार के आन्तरिक और अन्तर–परिवार के सम्बन्धों और उन कार्यों को जो परिवार करता है को भी प्रभावित करता है। शहरी परिवारों पर आई.पी.देसाई, कपाडिया और एलन रास जैसे विद्वानों द्वारा किये गये आनुभविक अध्ययनों ने बतलाया है कि शहरी संयुक्त परिवार का स्थान धीरे–धीरे एकाकी परिवार ले रहा है, परिवार का आकार सिकुड़ रहा है और रिश्तेदारी के सम्बन्ध केवल दो या तीन पीढ़ी तक ही सीमित हो गये हैं।

2. **नगरीकरण और जाति–** नगरीकरण, शिक्षा और व्यक्तिगत उपलब्धि और आधुनिक प्रस्थिति की ओर अभिमुखीकरण का विकास जाति की पहचान को कम करता है। नगर के लोग ऐसे संबंधों के जाल में भाग लेते हैं जिनमें कई जातियों के व्यक्ति होते हैं। रजनी कोठारी के अनुसार, व्यक्ति के प्रति वफादारी का स्थान एक दूसरे को काटने वाली वफादारियों ने ले लिया है आन्द्रे बितेइ ने कहा है कि पाश्चात्य रंग में रंगे हुये अभिजन वर्ग के बंधन जाति के बंधनों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण होते हैं।

3. **नगरीकरण और महिलाओं की स्थिति–** महिलाओं की प्रस्थिति ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में अधिक ऊंची है। तुलनात्मक रूप से शहरी महिलाऍ अधिक शिक्षित एवं उदार है। 1991में ग्रामीण क्षेत्रों के 25 प्रतिशत साक्षर महिलाओं के विपरीत शहरी क्षेत्रों में 54 प्रतिशत महिलाऍ साक्षर थीं। उनमें से

कुछ कार्यरत भी थीं। इस प्रकार उन्हें न केवल अपने आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों की जानकारी थी अपितु वे अपने अधिकारों का उपयोग अपने को अपमानित और शोषित होने से बचने में भी करती थीं। नगरों में लड़कियों के विवाह की औसत आयु भी गांवों के लड़कियों की विवाह की औसत आयु से अधिक थी। लेकिन वर्तमान में जहॉ नगरीकरण ने महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की और शिक्षा ने उन्हें अपने अधिकारों के लिए जागरुक किया वहीं नगरों में बढ़ते अपराधों से महिलाएं हिंसा का शिकार भी हो रहीं हैं। नगरों और महानगरों की ओर शिक्षा और रोजगार के लिए महिलाओं पलायन ने नगरों के लिए उनकी सुरक्षा एक बड़ी चुनौती है। एक ओर नगरों ने जहॉ महिलाओं को आर्थिक निर्भरता प्रदान की है वहीं उनकी सुरक्षा और आवास की व्यवस्था नगरों के लिए एक बड़ी चुनौती भी है।

4. **नगरीकरण और परम्पराएं–** परम्पराएं ग्रामीण समाज की प्रमुख पहचान है। परम्पराएं व्यक्ति के विकास और उसके समाज के विकास को प्रदर्शित करती हैं। नगरीकरण ने अपनी संस्कृति के अन्तर्गत इन परम्पराओं को समाप्त सा ही कर दिया है। नगरीकरण जो आधुनिकीकरण का भी परिचायक है, ने अपनी भौतिकतावादी संस्कृति में परम्पराओं को दर किनार कर दिया है। नगरीकरण में परम्पराएं शून्य हो गयी हैं और अस्तित्व खो रही हैं।

5. **नगरीकरण और ग्रामीण जन–जीवन–** पिछली आधी शताब्दी से हमारे देश में शहरी विकास के कारण ग्रामीण व्यक्तियों का ऐसे शहरी क्षेत्रों में पलायन हुआ जहां पर पहुंचने के लिए जनोपयोगी सेवाएं सुगमता से उपलब्ध थीं। कई व्यक्ति शहरों में इसलिए गये क्योंकि वहां रोजगार उपलब्ध थे। जो अभी भी गांवों में बसे हैं उन्हें भी शहरी जीवन की सुविधाएं उपलब्ध हैं यद्यपि वे शहरी केन्द्रों से मीलों दूर हैं। उत्कृष्ट राजमार्ग, बसें व मोटरें, रेडियो, टेलीविजन और अखबार ग्रामीणों को शहरी रोजगार और शहरी आवास और ग्रामीण सम्पर्क ने न केवल सामाजिक संरूपों में कुछ परिवर्तन किये हैं परन्तु जीवन की एक नई शैली से समन्वय भी स्थापित किया है। ग्रामीणों को अब शहरी जीवन के बारे में अधिक जानकारी है और उससे वे इस प्रकार प्रभावित हुये हैं कि अब वो जाति, धर्म आदि को अत्यधिक महत्व नहीं देते। वे अपने दृष्टिकोण में अधिक उदार हओ गये हैं। वे अब अलगाव में नहीं रहते। कई किसानों ने खेती की नई पद्धतियॉ अपना ली हैं। न केवल उनके मूल्यों और आकांक्षाओं में परिवर्तन आया है परन्तु

उनके व्यवहार में भी परिवर्तन हुआ है। जजमानी व्यवस्था कमजोर हो रही है और अन्तर्जातीय एवं अन्तर्वर्गीय संबंधों में परिवर्तन आ रहा है। विवाह, परिवार और जाति की पंचायतों की संस्थाओं में भी परिवर्तन है। बीमारियों के उपचार के लि प्रारम्भिक तरीकों पर निर्भर रहने के बजाय वे अब आधुनिक मशीनों और दवाईयों का प्रयोग करते हैं। चुनावों में भी इसी प्रकार वे एक प्रत्याशी की धार्मिक अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा के स्थान पर उसकी क्षमताओं और राजनैतिक पृष्ठभूमि को महत्व देते हैं।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि गांवों में अब परम्पराओं का कोई महत्व नहीं है। व्यक्तिवाद परिवारवाद (familism) का स्थान नहीं ले पाया है और न ही धर्मनिरपेक्षता उस बन्धन का स्थान ग्रहण कर पायी है जो धार्मिक है।

13.7 नगरीकरण की समस्याएं

भारत के संदर्भ में देखा जाय तो यहां पर नगरीकरण की अनेक गंभीर समस्याएं हैं। कारण यह है कि रोजगार की तलाश में अधिकांश ग्रामीण और कस्बों के लोग शहरों की ओर रुख कर रहे हैं। अब यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया बन गयी है। बेहतर जीवन की तलाश लोगों को शहरों की ओर मोड़ रही है। जिस कारण शहर अधिक आबादी के कारण अनेक समस्याओं से ग्रसित होते जा रहे हैं। बेहतर नगरीय प्रशासन का न होना या सीमित संशाधनों के चलते नगरीकरण की अनेक समस्याएं पैदा हो रही हैं।

1. **आवास की समस्या और मलिन बस्तियों का निर्माण–** नगरों में व्यक्तियों के आवास या आवास की कमी को पूरा करना एक गंभीर समस्या है। सरकार उद्योगपतियों, पूंजीपतियों, ठेकेदार, निर्धन और मध्यम वर्ग के व्यक्तियों की आवास की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पायी है। यू0एन0आई0 की रिपोर्ट के अनुसार भारत के सबसे बड़े नगरों की जनसंख्या के एक–चौथाई व्यक्ति कामचलाऊ आश्रयों एवं गंदी बस्तियों में रहते हैं। संयुक्त राष्ट्र की एजेन्सी यू0एन0 हैबिटाट ने मलिन बस्ती को नगर की निम्न स्तरीय आवास, गंदगी युक्त, अनौपचारिक रूप से विकसित एवं अस्थायी अवधि वाली बस्ती के रूप में परिभाषित किया है। संयुक्त राष्ट्र के सर्वे के अनुसार विकासषील देषों में 1990 से 2005 की अवधि में नगरीय मलिन बस्तियों की संख्या 47 प्रतिषत से घटकर 37 प्रतिषत हुई है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि मलिन

बस्ती वह है जिसमें रहने वाले व्यक्तियों के लिए न सिर्फ षुद्ध पेयजल, षौचालय, विद्युत आपूर्ति, गंदगी की निकासी आदि का पर्याप्त अभाव रहता है और वहाँ का पर्यावरण भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। भारत में नगरीकरण में वृद्धि के साथ–साथ मलिन बस्तियों की आबादी में भी तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। विगत दो दषकों में मलिन बस्तियों में रहने वालों की संख्या दोगुनी बढ़ी है।

2. **परिवहन और यातायात की समस्या–** परिवहन और यातायात का स्तर भारत किसी भी शहर में बहुत अच्छी नहीं है। कुछ दषकों में भारतीय नगरों में जनसंख्या वृद्धि एवं दो पहिये, तीन पहिए एवं चार पहिये वाले मोटर वाहनों में अत्यधिक वृद्धि के कारण परिवहन की समस्या भी ज्वलंत रूप से उभरी है। वाहनों की वृद्धि के कारण यातायात की गति एवं समय प्रभावित हुआ है तथा यातायात जाम होना नगरीय जीवन षैली की आम विषेषता बन गई है। यातायात जाम के कई नकारात्मक परिणाम हैं जैसे– वाहन चालकों एवं सवारियों के समय की बर्बादी, षिक्षालयों, कार्यालयों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों अथवा अन्य स्थानों पर पहुँचने में विलम्ब होना, उत्पादक गतिविधियों का ह्यस, ईंधन की बर्बादी, वायु एवं ध्वनि प्रदूषण में वृद्धि, वाहन चालकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव आदि। विष्व में सर्वाधिक सड़क दुर्घटनाएं भारत में होती हैं। हाल के सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़े दर्शाते हैं कि भारत में प्रतिवर्ष एक लाख से अधिक व्यक्तियों की मौत सड़क दुर्घटना में होती है जो विष्व के कुल सड़क हादसों का 10 प्रतिषत है। इन समस्याओं के संदर्भ में यातायात की नीति को दुरुस्त करने एवं आधुनिक बनाने और सड़कों को चौड़ा करने तथा यातायात संरचना को विकसित करने की आवष्यकता है ताकि वाहन सवारों एवं पैदल चलने वाले समस्त व्यक्तियों की गतिषीलता को सुरक्षित, अनुकूल, सुगम एवं अवरोध विहीन बनाया जा सके। नगरों के विकास प्रारूप में वाहनों की बढ़ती हुई मांग एवं आपूर्ति को ध्यान में रखते हुए यातायात के प्रबन्धन एवं नगर नियोजन को प्राथमिकता देनी होगी। निजी वाहनों के कम उपयोग को प्रोत्साहन देने, फ्लाई ओवर पुल निर्मित करने, वाहनों के पार्किंग एवं यातायात नियमों को दुरूस्त करने, आदि कार्यक्रमों से यातायात नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन होगा। इसके अतिरिक्त हमारे नागरिक जन–परिवहन व्यवस्था के लिए अधिक किराया नहीं दे सकते,

जिस कारण किराए को कम रखना पड़ता है। जिसके चलते शहर की बस सेवाओं को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

3. **नगरीय निर्धनता–** नगरीय विकास की वर्तमान प्रक्रिया ने जहाँ एक ओर अमीरों की संख्या को बढ़ाया है वहीं दूसरी ओर निर्धनता को अधिक बढ़ाया है। भारत के नगरों में लगभग एक बड़ी निर्धन आबादी कूड़े कचरे को संग्रहित करने तथा उसको दुबारा प्रयोग में लाने के करने के कार्य में संलग्न है। निर्धनता गंदी बस्तियों के निर्माण का आधारभूत कारक है। नगरों में प्रवासी अधिकांष व्यक्ति असंगठित क्षेत्र में मजदूरी में संलग्न हैं जहाँ न्यूनतम मजदूरी प्राप्त नहीं होती। निर्धनता की समस्या आवष्यक रूप से केवल कुल राष्ट्रीय उत्पाद की ही समस्या नहीं है अपितु वितरण की भी है। नगरीय निर्धनता में होने वाली क्रमिक वृद्धि को रोकने हेतु आर्थिक नियोजन एवं नगरीय विकास नीति को प्रभावी रूप से संषोधित करने तथा प्राथमिकताओं को बदलने की आवष्यकता है जिससे धनी एवं निर्धनों की असमानता को कम किया जा सके। औद्योगिक क्षेत्र में विनियोजन का प्रारूप इस प्रकार विकसित करना होगा जिससे अधिकांष व्यक्तियेां को रोजगार प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त औद्योगिक एकाधिकारों की समाप्ति, अनावष्यक सरकारी खर्च व राष्ट्रीय अपव्यय पर नियंत्रण, उद्यमों के लोकतांत्रिक प्रबन्धन जैसे विविध प्रयास नगरीय निर्धनता को कम करने में सहायक होंगे।

4. **कूड़ा और उसके निस्तारण की समस्या–** भारत के नगरों में सड़कों पर जमा कूड़े–कचरे, नालियों से मलमूत्र के उभड़ने, अस्पतालों एवं अन्य सार्वजनिक स्थलों के आसपास बिखरी हुई गंदगी जैसे दृष्य सहजता से दिखाई पड़ते हैं। भारत में प्रतिदिन, प्रति–व्यक्ति 0.2 से लेकर 0.6 किलोग्राम तक कूड़ा पैदा होता है। भारतीय संदर्भ में कूड़ा निस्तारण एक समस्या इसलिए बन गया है क्योंकि व्यवहार में कूड़े को एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर फेंक देने की वर्तमान प्रणाली कूड़े का व्यवस्थित निष्पादन नहीं कर पाती। उर्जा अनुसंधान संस्थान के आकलन के अनुसार सन् 2047 तक भारत में नगरीय कूड़ों के निस्तारण हेतु 1400 वर्ग किलोमीटर जगह की आवष्यकता पड़ेगी। खुले गड्ढों में कूड़ा निस्तारित करने के कारण भूमि प्रदूषण तथा वायु प्रदूषण एवं नदियों में कूड़ा–कचरा तथा मल–मूत्र बहाने के

कारण जल प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होती है। पोलिथीन एंव प्लास्टिक जैसे अक्षरणीय कूड़े के परिणामस्वरूप वातावरण अधिक दुषित हो रहा है।

''सृष्टि'' नामक एक स्वयंसेवी संस्था ने 2000 में किये अपने सर्वेक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष दिया कि भारत में कूड़ा उत्पादन की वर्तमान दर जो प्रतिवर्ष 40000 मैट्रिक टन से कम है वह सन् 2030 तक 125000 मैट्रिक टन तक बढ़ सकती है। कूड़े–कचरे के निस्तारण से जुड़े प्रदूषण को, व्यवस्थित कूड़ा प्रबंधन के जरिये दूर करने की आवष्यकता है।

5. **जल आपूर्ति एवं जल–निकासी की समस्या–** वर्तमान में भारतीय नगरों, महानगरों की यह सबसे बड़ी समस्या है। भारत के किसी भी शहर में जल आपूर्ति और जल निकासी की व्यवस्था एकदम दुरुस्त नहीं है। पानी की आपूर्ति लाइनों में पानी का रिसाव, पाईप लाईनों का टुटना एक आम समस्या है। बरसात के पानी व गन्दे पानी के निकासी की व्यवस्था दम तोड़े हुए है। बरसात के पानी का शहरों में जगह–जगह एकत्र हो जाना आम बात है। गन्दे पानी की निकासी का सुचारु न होना शहरें में गंदगी को बढा रहा है और अनेक बिमारियों का कारण बन रहा है। जिस प्रकार हमें एक राष्ट्रीय जल नीति की आवश्यकता है, उसी प्रकार हमें एक राष्ट्रीय और क्षेत्रीय जल नीति की भी आवश्यकता है।

6. **प्रदूषण–** नगरीकरण की एक प्रमुख समस्या है, प्रदूषण। रोजगार की तलाश में नगरों की बढ़ती जनसंख्या, बढ़ते वाहन, बढ़ते कूड़े–कचरे और ओद्योगिक अवशिष्ट के कारण नगरों का वातावरण दूषित हो रहा है। नगरीकरण के कारण नदियां दूषित हो रही है। शहर का सारा कूड़ा–कचरा और ओद्योगिक अवशिष्ट को पास की नदियों में बहा दिया जाता है। दिल्ली की यमुना नदी इसका एक ताजा उदाहरण है। शहरी उद्योग वातावरण को अपनी चिमनियों से निकलने वाले धुंए और जहरीली गैसों से प्रदुषित का रहे हैं।

13.8 नगरीकरण की चुनौतियाँ

नगरीकरण की अनेक चुनौतियां हैं–

1. **नियोजन–** अधिकांष नगरीय षासन में आधुनिक नियोजन एवं स्वरूप का अभाव है। क्षेत्रीय विविधताएँ सक्षम नियोजन एवं भूमि के उपयोग को बाधित

करती है। कठोर मास्टर प्लान एवं प्रतिबंधित भू–कटिबन्ध अधिनियमों के कारण नगरों में बढ़ती हुई आवष्यकताओं के अनुरूप भवन निर्माण एवं षहरी क्षमताओं के विस्तार हेतु भूमि की उपलब्धता का अभाव है।

2. **आवास–** भवन निर्माण के नियमों एवं प्रतिबंधों के कारण नगरों में भवन की उपलब्धि सीमित है तथा नगरीय भू सम्पत्ति का मूल्य बढ़ा है। पुराने किरायेदारी नियंत्रण अधिनियमों के कारण नगरों में किराये पर भवन की उपलब्धि घटी है तथा नगरीय निर्धनों के समक्ष आवासीय विकल्प सीमित हो गये हैं। अल्प आय वाले व्यक्तियों को घर खरीदने, निर्माण करने अथवा पुनरूद्धार करने हेतु वित्तीय उपलब्धता का अभाव है। नीति, नियोजन एवं नियंत्रण की अपूर्णताओं के कारण मलिन बस्तियों का विस्तार हुआ है। नगरीय स्थानीय स्वषासन एवं सेवा देने वालों की दुर्बल अर्थव्यवस्था के कारण नये क्षेत्रों में भवन निर्माण की संरचना का विस्तार नहीं हो पा रहा है।

3. **सेवा प्रतिपादन–** नगरीय प्रषासन द्वारा सम्पन्न अधिकांष सेवाओं में स्पष्ट लेख–जोख का अभाव है। नगरीकरण में सम्पोषित वित्तीय एवं पर्यावरणीय सेवाएं प्रदान करने की बजाय भौतिक संरचनाओं को बढ़ाने पर बल दिये जाने की प्रवृत्ति है। सेवा प्रदाताएँ क्रियान्वयन एवं रख–रखाव सम्बन्धी व्यय वहन करने में अक्षम हैं तथा वित्तीय सहायता हेतु सरकार पर आश्रित हैं। नगरीय प्रशासन में मूल्य निर्धारण, निर्णय एवं सेवा की गुणवत्ता पर बल देने जैसी स्वतंत्र नियामक ढांचे का सामान्यतया अभाव सा रहता है।

4. **मौलिक संरचना–** अधिकांष नगरीय अभिकरणों में नगरीय संरचना के दुबारा नवीनीकरण हेतु वित्तीय उत्पादन का अभाव है। नगरीय यातायात नीति को उत्तम बनाने की आवष्यकता है जिसमें वाहनों के संचालन के अतिरिक्त बहुसंख्यक पैदल चलने वालों एवं साईकिल सवारों की आवष्यकताओं को भी पूरा करने का लक्ष्य षामिल है।

5. **पर्यावरण संरक्षण–** नगरों में बढ़ते हुए प्रदूषण के कारण नगरीय व्यक्तियों का स्वास्थ्य, उत्पादकता एवं जीवन की गुणवत्ता में कमी आ रही है। नगरों में उपभोगतावादी संस्कृति के प्रसार के परिणामस्वरूप परम्परागत सामाजिक एवं सांस्कृतिक मानदंडों एवं मूल्यों का ह्रास हो रहा है। दूसरों से आगे बढ़ने की होड़ ने नगरीय जीवन षैली में व्यक्तिगत लाभ को बढ़ाया है तथा पारस्परिक समन्वय एवं समरसता को घटाया है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. नगरीकरण की कोई दो विषेषताएँ लिखें
2. नगरीकरण के अन्तर्गत परिवर्तनषीलता और समायोजन की क्षमता ज्यादा हुआ करती हैं?
3. नगरीकरण के चलते जल आपूर्ति और जल–निकासी की समस्या क्या है?

13.9 सारांश

नगरीकरण या नगरों का बसना आधुनिकीकरण की एक प्रक्रिया है। नगरीकरण को औद्योगिकीकरण के रुप में भी देखा जा सकता है। रोजगार की सम्भावना और बेहतर जीवन की तलाश नगरों में आकर समाप्त होती है। नगरों में बढ़ती जनसंख्या ने नगरों के उपर भी बोझ बढ़ाया है। बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं, लोंगों की सुरक्षा, आवास का प्रबन्ध, साफ–सफाई की व्यवस्था, बेहतर यातायात ये सब चुनौतियां और इनकी बेहतर प्रबन्धन नगरीकरण के लिए एक चुनौती है। भारत के नगर इन समस्याओं से लगातार जूझ रहे हैं। नगरों का ये संघर्ष लगातार जारी है।

अभ्यास प्रश्न–

1. जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में जाना 'नगरीकरण' कहलाता है। सत्य/असत्य

2. 'नगरीय क्षेत्र' या 'नगर' शब्द का प्रयोग जनसांख्यिकी और समाजशास्त्रीय रुप में होता है। सत्य/असत्य

3. किस विचारक ने नगरीकरण को ग्रामीण जीवन से शहरी जीवन में परिणति बताया है?

   क. पी0 एम0 हॉसर **ख.** होप टिजलेट

   ग. कोलर्स एवं निस्अुएन **घ.** इनमें से कोई नहीं

4. किस विचारक ने नगरीकरण को भौगोलिक प्रक्रिया के रुप में माना है?

   क. स्मेल्स **ख.** डेविस

   ग. नेल्स एंडर्सन **घ.** हॉसन

5. भारतीय संविधान का कौन सा संविधान संशोधन नगरीकरण से संबंधित है?

   क. 42वां संविधान संशोधन **ख.** 43वां संविधान संशोधन

   ग. 73वां संविधान संशोधन **घ.** 74वां संविधान संशोधन

13.10 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1. 1. **श्रम विभाजन और पेशों में अंतर–** नगरों के अंतर्गत वृहत् पैमाने पर श्रम–विभाजन होता है। विभिन्न तरह के पेशों के अंतर्गत विशिष्टीकरण पाया जाता है। यदि एक तरफ कुछ लोग मजदूरी करते हैं तो दूसरी तरफ कुछ लोग बड़े–बड़े शल्य चिकित्सक भी होते हैं, कुछ अनपढ़ हैं तो कुछ उच्च कोटि

के विद्वान भी, कुछ आदमी हस्तनिर्मित सामान बेच रहे हैं तो कुछ आधुनिक कल–कारखानों में बनी परिष्कृत चीजों का भी प्रयोग कर रहे हैं।

2. **कार्य के लिए मशीनों पर निर्भरता–** नगरों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए लोग मशीनों पर अपेक्षाकृत अधिक निर्भर करते हैं जो आधुनिकता का भी परिचायक है। प्रायः वैसी मशीनों पर जिनका संचालन तेल या बिजली से होता है।

2. **परिवर्तनशीलता और समायोजन की क्षमता–** शहरी जीवन में लोगों में एक प्रत्याशा की मनोवृत्ति पाई जाती है। जब कभी भी शहरों में कुछ परिवर्तन होता है तो उससे वहॉ के लोगों को ऐसा लगता है कि वहॉ कुछ और भी परिवर्तन होने जा रहा है। जैसे–जैसे शहरों में परिवर्तन आता है, वैसे–वैसे वहॉ लोग भी बदलते जाते हैं क्योंकि शहरी लोगों में समायोजन की क्षमता अधिक पायी जाती है। यथार्थ तो यह है कि शहरी लोग कुछ ज्यादा ही परिवर्तन पसंद करते हैं। शहर के लोग इतने परिवर्तन प्रेमी होते हैं कि जब अक्सर परिवर्तन नहीं दिखायी देता है तो उन्हें कुछ अच्छा महसूस नहीं होता है।

3. **जल आपूर्ति एवं जल–निकासी की समस्या–** वर्तमान में भारतीय नगरों, महानगरों की यह सबसे बड़ी समस्या है। भारत के किसी भी शहर में जल आपूर्ति और जल निकासी की व्यवस्था एकदम दुरुस्त नहीं है। पानी की आपूर्ति लाइनों में पानी का रिसाव, पाईप लाईनों का टुटना एक आम समस्या है। बरसात के पानी व गन्दे पानी के निकासी की व्यवस्था दम तोड़े हुए है। बरसात के पानी का शहरों में जगह–जगह एकत्र हो जाना आम बात है। गन्दे पानी की निकासी का सुचारु न होना शहरें में गंदगी को बढा रहा है और अनेक बिमारियों का कारण बन रहा है। जिस प्रकार हमें एक राष्ट्रीय जल नीति की आवश्यकता है, उसी प्रकार हमें एक राष्ट्रीय और क्षेत्रीय जल नीति की भी आवश्यकता है।

13.11 पारिभाषिक शब्दावली

अभिनव– नया या नवीन, परस्पर निर्भरता– एक दुसरे पर निर्भर, प्रवास– एक स्थान से दुसरे स्थान, परिप्रेक्ष्य– सदर्भ या स्थिति विशेष, विशिष्टीकरण–विशेषज्ञता, हस्त निर्मित– हाथों से बना हुआ, परिष्कृत– सजा हुआ, स्वच्छन्द– मुक्त या जो बंधा हुआ न हो, ह्यस– कमी, पुनरूद्धार– दुबारा उत्पादित करना या निर्मित करना, सम्पोषित– ठीक से पोषण या लालन–पालन करना, जनोपयागी– लाभ

13.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. ग
4. स्मेल्स
5. घ

13.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन– जे0पी0 सिंह
2. भारतीय समाज– संगीता वर्मा
3. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन– डॉ0 संजीव महाजन
4. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक समस्याएं– रामनाथ शर्मा और राजेन्द्र शर्मा
5. सामाजिक समस्याएं– राम आहुजा
6. A Review of Urbanistion and Urban Policy in Post-Independent India

13.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन– जे0पी0 सिंह
2. भारतीय समाज– संगीता वर्मा
3. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन– डॉ0 संजीव महाजन
4. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक समस्याएं– रामनाथ शर्मा और राजेन्द्र शर्मा
5. सामाजिक समस्याएं– राम आहुजा
6. A Review of Urbanistion and Urban Policy in Post-Independent India

13.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. नगरीकरण से आप क्या समझते हैं? नगरीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।
2. नगरीकरण की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए भारत में नगरीकरण के सामाजिक प्रभाव बतलाइए।
3. नगरीकरण की क्या समस्याएं हैं? इसकी चुनौतियों को स्पष्ट कीजिए।

ईकाई–14

धर्मनिरपेक्षीकरण
Secularization

ईकाई की रूपरेखाः–

14.0 उद्देश्य।
14.1 प्रस्तावना।
14.2 धर्मनिरपेक्षीकरण का अर्थ।
14.3 धर्मनिरपेक्षीकरण का प्रभाव।
14.3.1 जाति व्यवस्था पर धर्मनिरपेक्षीकरण का प्रभाव।
14.3.2 संस्कारो पर प्रभाव।
14.3.3 परिवारो पर धर्मनिरपेक्षीकरण का प्रभाव।
14.3.4 समुदाय पर धर्मनिरपेक्षीकरण का प्रभाव।
14.4 धर्मनिरपेक्षीकरण के कारक।
14.5 सारांश।
14.6 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर
14.7 पारिभाषिक शब्दावली।
14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

14.0 उद्देश्यः–

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

(1) धर्मनिरपेक्षीकरण क्या है ? इसके बारे में जान सकेंगे।
(2) धर्मनिरपेक्षीकरण के प्रभावों के बारे में जान सकेंगे।
(3) धर्मनिरपेक्षीकरण के कारको को समझ सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

किसी भी आधुनिक शहर में मिलों में काम करने वाले मजदूरों आफिसो में काम करने वाले बाबुओं, दुकानदानों, डाक्टरों, वकीलों और सरकारी कर्मचारियों आदि के दैनिक जीवन पर दृष्टि डालिए तो आप देखेंगे कि भारत के धर्मपरायण देश कहलानें के बावजूद भी आधुनिक काल में उनके जीवन धर्म का महत्व बहुत कम रह गया है। अधिकतर पढ़े लिखें लोग अपने जीवन में विभिन्न क्रियाओं को धार्मिक उद्देश्यों से नही बल्कि वैज्ञानिक अथवा अन्य उद्देश्य से करते है। वे जिन पुरानी परम्पराओं को मानते

भी है उनको इस कारण नही मानते कि धर्म के द्वारा उनका विधान किया गया है। बल्कि वे उनके मूल में किसी न किसी कारण की तलाश कर लेते है। और उसे व्यक्ति अथवा समाज के लिए लाभदायक मानते है। केवल पढ़े–लिखें लोगो में ही नही बल्कि वे पढ़े–लिखे लोगो के भी धर्म का सम्मान कम होता जा रहा है। यद्यपि निश्चय ही पढ़े–लिखे लोगो की तुलना में भारत में उनके जीवन में आज भी धर्म का कही अधिक महत्व है। जीवन का यह धर्मनिरपेक्षीकरण केवल नगर में ही दिखाई पड़ता तो ऐसी बात नहीं है, गॉव के भी दिनचर्या में विभिन्न त्योहारों और रीति–रिवाजों में धर्म का महत्व कम होता जा रहा है। वर्तमान भारत में नगरों और गॉवों में सब कही धर्मनिरपेक्षीकरण का स्वभाव अन्य धर्मा की तुलना में हिन्दू धर्म में अधिक दिखाई पड़ता है। आज भी मुस्लिमों, सिक्खों, जैनों तथा अन्य धर्मो के अनुयायियों की तुलना में हिन्दुओं में धर्मनिरपेक्षीकरण अधिक हुआ है। इसके विवेचन से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन की यह यह प्रक्रिया क्या धर्मनिरपेक्षीकरण है ?

14.2 धर्मनिरपेक्षीकरण का अर्थः–

डा0 एम0एन0 श्रीनिवास ने धर्मनिरपेक्षीकरण की परिभाषा करते हुए लिखा है। ''धर्मनिरपेक्षीकरण शब्द से तात्पर्य है कि जो कुछ पहले धार्मिक माना जाता था वह अब वैसा नही माना जा रहा है। और उसका तात्पर्य विभेदीकरण की एक प्रक्रिया से भी है जो कि समाज के विभिन्न पहलुओं आर्थिक, राजनीतिक कानूनी और नैतिकता के एक दूसरे के प्रति सम्बन्ध में अधिक से अधिक प्रथक होने में दिखलाई पड़ती है''। भारतवर्ष में गॉवों और नगरों में विशेत हिन्दु समाज में धर्म का प्रभाव घटने के अनुपात में धर्मनिरपेक्षीकरण बढ़ा है। इसके निम्नलिखित लक्षण है।

1. धार्मिकता का ह्रास

धर्मनिरपेक्षीकरण का मुख्य लक्षण उसकी वृद्धि के साथ–साथ धार्मिकता का ह्रास है। हिन्दु समाज में आधुनिकतम काल में जीवन के विभिन्न कार्यो मे धार्मिक व्याख्याओं का महत्व कम होते जाने से धर्मनिरपेक्षीकरण बढ़ा दिखायी पड़ता है।

2. विभेदीकरण की प्रक्रिया

धर्मनिरपेक्षीकरण बढ़ने से समाज में विभिन्न पहलुओं में विभेदीकरण बढ़ता है इस प्रकार आधुनिक काल में पढ़ा–लिखा हिन्दु आर्थिक, राजनीतिक कानूनी और नैतिक प्रश्नों को एक–दूसरे से अलग मानता है और इन पर धर्म का कोई प्रभाव नही मानता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नियमों के अनुसार विचार किया जाता है इस प्रकार धर्म के रूप में जीवन के विभिन्न क्षेत्रो को बाँधनें वाला बन्धन समाप्त हो जाता है।

3. विवकेशीलता

धर्मनिरपेक्षीकरण का एक मुख्य लक्षण विवकेशीलता है इसमें व्यक्ति अपने जीवन में उठने वाली प्रत्येक समस्या पर अपने विवके से विचार करता है। और उस सम्बन्ध में धर्म पुस्तकों मे लिखी हुई बातों को विशेष महत्व नही देता। विवेकशील व्यक्ति और सामाजिक जीवन में प्रत्येक बात का विवेक के द्वारा निश्चित करने का प्रयास करता है।

4. वैज्ञानिक दृष्टिकोण

धर्मनिरपेक्षीकरण का एक मुख्य लक्षण जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण है।

फ्रायड व अन्य विचारकों के अनुसार, मनुष्य के जीवन पर ज्यो–ज्यों विज्ञान का प्रभाव पड़ता जाता है त्यों–त्यों धर्म का प्रभाव कम होता जाता है। यही कारण है कि आधुनिक भारत में शिक्षा के प्रसार के साथ–साथ धर्मनिरपेक्षीकरण बढ़ा है। पश्चिम के जिन देशों में विज्ञान की जितनी अधिक प्रगति हुयी है वहाँ पर धर्मनिरपेक्षीकरण का प्रभाव उतना ही अधिक दिखाई पड़ता है।

14.3 धर्मनिरपेक्षीकरण का प्रभावः–

धर्मनिरपेक्षीकरण के लक्षणों से उसकी प्रकृति स्पष्ट होती है। आधुनिक कारण में धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया अंग्रेजी शासन काल में विशेष रूप से विकसित हुयी और नगरीकरण तथा औद्योगीकरण के बढ़ने के साथ–साथ तेजी से बढ़ती गई।

डा0 एम0 एन0 श्रीनिवास ने अपनी पुस्तक (Social charge in modern India) में इन्ही क्षेत्रों में धर्मनिरपेक्षीकरण के प्रभाव का विश्लेषण किया है। यहाँ पर इन तीनों क्षेत्रों में धर्मनिरपेक्षीकरण के प्रभाव का संक्षेप में विवेचन किया जायेगा।

14.3.1 जाति व्यवस्था पर धर्मनिरपेक्षता का प्रभावः–

हिन्दु जाति व्यवस्था में धर्म का प्रभाव सबसे अधिक अशुद्धता और शुद्धता की धारणाओं में दिखलाई पड़ता है। धार्मिक दृष्टिकोण से समाज में कुछ कार्यो को अशुद्ध ठहराया गया है। विशेषतः नीची जातियों के उन्हें करने से वे अशुद्ध मानी जाती है। अपवित्रता की भावना के साथ–साथ छूआछूत की भावना भी लगी हुयी है। उच्च जातियों के व्यक्तियों के लिए निम्न जातियों अथवा अछूत कहलाने वाली जातियों के व्यक्तियों के लिऐ निम्न जातियों के साथ खाना–पीना, उठना–बैठना तो क्या केवल सम्पर्क होने मात्र से ही उच्च जाति का व्यक्ति अपवित्र हुआ माना जाता है। सामाजिक कार्यो में मैला उठाना, झाडू लगाना कसाई का कार्य आदि अपवित्र माने जाते है। और उन कार्यों को करने वाले व्यक्ति को छूने से अपवित्र होती है। धर्मनिरपेक्षीकरण के प्रभाव से आधुनिक हिन्दु काल में समाज में पवित्रता और अपवित्रता की भावनाओं से भारी अन्तर दिखायी

पड़ता है। पहले उच्च जाति के लोग निम्न जाति के व्यवसायों को नही करते थे, शिक्षा विवकेशीलता और विज्ञान के प्रभाव से आजकल पवित्रता और अपवित्रता की धारणाओं को धार्मिक दृष्टि से नहीं बल्कि सफाई के दष्टिकोण से देखा जाता है। अनेक परम्परागत बातों को आज भी माना जाता ह। इसलिए नही कि उनका धार्मिक विद्यान है। बल्कि इसलिए कि सभी सफाई से रहना चाहते है। क्योंकि वह आरोग्य का पहला नियम है। इस प्रकार पवित्रता और अपवित्रता के विचार से सम्बन्धित क्रियाओं का धर्मनिरपेक्षीकरण के विचार से सम्बन्धित क्रियाओं का धर्मनिरपेक्षीकरण किया गया है। और वे धार्मिक नही रह गये है।

14.3.2 संस्कारों में परिवर्तनः–

संस्कार हिन्दु जाति व्यवस्था की एक मुख्य विशेषता है। विभिन्न जातियों के लिए विभिन्न अवसरों पर विभिन्न संस्कार आवश्यक माने गये है। प्राचीन काल में विद्याध्ययन प्रारम्भ होने के कुछ ही समय बाद संस्कार कर दिया जाता था। हिन्दु धर्म में मनुष्यों के लिए जन्म से मृत्यू तक अनेक संस्कारों की व्यवस्था है जिनमें मुख्य है, गर्भाधान, पुसवन, जातकर्म, नामकरण, उपनयन, समावर्तन विवाह और अन्तेयष्टि। इन सभी संस्कारों के अवसर पर विधि–विधान का विस्तार से वर्णन किया गया है। और संस्कार को भली प्रकार पूरा करने के लिये उन सब विधि–विधानों को मानना आवश्यक समझा जाता है। आधुनिक काल में धर्मनिरपेक्षीकरण के प्रभाव से संस्कारों के महत्व और विधि–विधानों में भारी परिवर्तन हो गया है। विवाह का अवसर धार्मिक से अधिक एक सामाजिक अवसर हो गया है। जिसमें सगे–सम्बन्धियों के मिलने–जुलने, खाने–पीने आदि को अधिक महत्व दिया जाता है। विवाह के संस्कार में धर्मनिरपेक्षीकरण का प्रभाव सबसे अधिक दहेज की प्रथा में दिखायी पड़ता है। विवाह सम्बन्ध दहेज की मात्रा से तय किये जाते है। उनमें धार्मिक बातों को उतना अधिक महत्व नही दिया जाता है।

14.3.3 परिवार पर धर्मनिरपेक्षीकरण का प्रभावः–

विवाह विच्छेद की व्यवस्था और सिविल मैरिज की व्यवस्था हो जाने से हिन्दु विवाह का और भी अधिक धर्मनिरपेक्षीकरण हो गया है। परिवार की संस्था में धर्मनिरपेक्षीकरण को प्रभाव सबसे अधिक सदस्यों की दिनचर्या निर्धारित करता है। ब्राम्हणों के लिये पूजा–पाठ, संस्था, यज्ञ आदि का विधान है परन्तु धर्मनिरपेक्षीकरण के प्रभाव से बाम्हण परिवारों में भी बहुत कम लोग नित्य कर्म में निर्धारित इन कार्यक्रमों को करते देखे जाते हैं। स्त्रियो में शिक्षा के प्रभाव से परिवार में चूल्हें चौके का धर्मनिरपेक्षीकरण हुआ है। और उसमें धर्म का प्रभाव तथा शुद्धि और अशुद्धि का विचार लगभग उठ ही गया है।

पढ़े–लिखे लोग होली, दीपावली, और त्योंहारों को उनके धार्मिक महत्व के कारण नही बल्कि उनके सामाजिक और मनौवैज्ञानिक महत्व के कारण मनाते है। समय–समय पर यज्ञ आदि अब भी किये जाते है परन्तु उनसे पुण्य कमानें के स्थान पर वायु के स्वच्छ हाने के महत्व पर अधिक बल दिया जाता है। परिवार की संस्था में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। और उसके अनेक कार्य अन्य समितियाँ लेती जा रही है। विभिन्न परिवारो में मेल मिलाप धार्मिक कारणों से नही बल्कि सामाजिक कारणों से होता है।

14.3.4 समुदाय पर धर्मनिरपेक्षीकरण का प्रभावः–

भारतीय नगरों में तो धर्मनिरपेक्षीकरण अत्यधिक मात्रा में दिखाई पड़ता ही है किन्तु ग्रामीण सामुदायों में जातीय पंचायतो की शक्ति घटती जा रही है। और जहाँ कही ये पंचायते है भी वहाँ वे धार्मिक लक्ष्यों से नही बल्कि राजनैतिक लक्ष्यों को लेकर संगठित की गयी है। ग्रामीण समाज मे सम्मान का आधार धार्मिकता अथवा जाति न रहकर धन और सम्पत्ति हो गये है। इस कारण जमींदार और साहूकार का जितना सम्मान है। उतना ब्राहम्ण का नही है। पैसा हो जाने पर निम्न जाति के व्यक्तियों को भी उच्च जाति के व्यक्तियों से अधिक सम्मान दिया जाता है। फिर भी धर्मनिरपेक्षीकरण के प्रभाव से ब्राम्हण के घर में वैश्य और क्षत्रिय के घर में ब्राम्हण स्त्री देखी जा सकती है। ग्रामीण पंचायत में अधिकतर समस्याओं पर धार्मिक दृष्टि से नही बल्कि सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से विचार किया जाता है। सभी जातियों के व्यक्ति खेती और व्यापार तथा पषु पालन के व्यवसाय करते देखे जा सकते है। व्यवसाय में एक मात्र लक्ष्य अधिक से अधिक पैसा कमाना है और उसमें धार्मिक प्रश्न नही उठाये जाते है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नः–

प्र01 धर्मनिरपेक्षीकरण के प्रभावों के बारे में बताइयें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14.4 धर्मनिरपेक्षीकरण के कारकः–

1. **आधुनिक शिक्षाः–** धर्मनिरपेक्षीकरण का सबसे बड़ा कारण आधुनिक शिक्षा है जो अंग्रेजों के साथ भारत में आई है। इस शिक्षा के साथ भारत में पाश्चात्य संस्कृति का प्रवेश हुआ। इसलिए वर्तमान धर्मनिरपेक्षीकरण की धारा को अंग्रेजी शासन काल में शुरू हुआ माना जा सकता है। आधुनिक शिक्षा ने सबसे अधिक विभिन्न समस्याओं की ओर वैज्ञानिक और विवेकयुक्त दृष्टिकोण को प्रोत्साहित किया। शिक्षा संस्थाओ में विभिन्न जातियों और धर्मो के युवक–यवुतियों के साथ–साथ पढ़ने से पूछताछ शुद्धि–अशुद्धि तथा परस्पर खान–पान, सम्पर्क आदि के बन्धन टूटने लगे।

2. **यातायात और संदेशवाहन के साधनों का विकासः–** धर्मनिरपेक्षीकरण में यातायात और संदेश वाहन के साधनों के विकास का महत्वपूर्ण योगदान है।

रेलो, बसों टैक्सियों आदि के व्यापक प्रचार से लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने लगे जिससे उनको नये–नये लोगो से मिलने का अवसर मिला और उनके विचारों में उदारता आई इससे जाति व्यवस्था को धक्का लगा और उस पर आधारित छूआछूत के साधनों के विकास से लौकिक आधारों पर संगठनों का विकास हुआ और उनका महत्व धार्मिक संगठनों से कहीं अधिक हो गया।

3. **सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलनः–** अंग्रेजी शासन काल में भारतवर्ष में राजाराम मोहन रामय, मोहन राय, सर सैयद अहमद, केशवचन्द्र सेन, महादेव गोविन्द रानाडे, महात्मा गाँधी, स्वामी दयानन्द इत्यादि महापुरूषों के सामाजिक और धार्मिक सुधार के अनेक आन्दोलनो ने ब्रम्ह समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, थियासोफिल सोसाइटी तथा सर्वोदय आन्दोलन विशेष उल्लेखनीय है।

4. **वैज्ञानिक सुधारः–** आधुनिक काल मे हिन्दु विवाह की संस्था पर हिन्दु कोड़ द्वारा किये गये वैधानिक परविर्तनों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। हिन्दु विवाहित स्त्रियों के प्रथक निवास और निर्वाह अधिनियम, हिन्दु विवाह अधिनियम हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियितम से हिन्दु परिवार और विवाह की संस्थाओं का धर्मनिरपेक्षीकरण हुआ है। इस प्रकार धर्मनिरपेक्षीकरण ने सरकार और कानून का महत्वपूर्ण योगदान है। ब्रिटिश सरकार ने तो धर्मनिरपेक्षीकरण को प्रोत्साहन दिया था किन्तु स्वतन्त्र भारत सरकार ने उसको और भी अधिक प्रोत्साहन दिया है।

5. **राजनीतिक संगठनों का योगदानः–** आधुनिक काल में जहाँ अनेक राजनीतिक संगठनों ने हिन्दु धर्म पर सीधा आघात किया है। वहाँ हिन्दु महासभा, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और शिव सेना जैसे दक्षिणी पंथी संगठनों ने हिन्दु धर्म के सुधार पर जोर देकर धर्मनिरपेक्षीकरण को प्रोत्साहित किया है। इस वामपंथी और दक्षिण पंथी दोनों ही प्रकार के राजनितिक संगठनों ने देश में धर्म के महत्व को कम करने और धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने का कार्य किया है।

6. **नगरीकरणः–** गॉवों की तुलना में नगरों में धर्मनिरपेक्षीकरण अधिक हुआ है क्योंकि नगरीकरण, जीवन की भीड़–भाड़, मकानों की कमी, यातायात और सन्देशवाहन के साधनों की अधिकता और आर्थिक समस्याओं की प्रमुखता, फैशन, शिक्षा, राजनीतिक और सामाजिक संगठन पाश्यचात्य संस्कृति का प्रभाव भौतिकवाद, विवकवाद इत्यादि से धर्मनिरपेक्षता बढ़ता है।

7. **हिन्दु धार्मिक संगठन का अभावः–** धार्मिक दृष्टि से ईसाई, मुस्लिम, सिख आदि संगठन जितने संगठित है वैसा संगठन हिन्दु धर्म में नही दिखलाई पड़ता। हिन्दु धर्म के विशाल क्षेत्र में अनेक मत सम्प्रदाय है। जिनके अलग–अलग मठ, धार्मिक नेता और धार्मिक संगठन है। भारतवर्ष में हिन्दु धर्म का अभाव कम होता चला जा रहा है। यहाँ तक कि अपने को हिन्दु कहने में भी शर्माते है।

पढ़े–लिखे हिन्दुओं में एक बहुत बड़ी संख्या ऐसे हिन्दुओं की है। जिनका पूर्णतः धर्मनिरपेक्षीकरण हो चुका है और जो न केवल धर्म की बातों को नही मानते बल्कि उसकी प्रत्येक बात की कटु आलोचना करते है।

8. **भारतीय संस्कृति का धर्मनिरपेक्षीकरण** :– यूँ तो भारतीय धर्म प्राण कहलाती रही, परन्तु आजकल उसका तेजी से धर्मनिरपेक्षता होता जा रहा है। इस धर्मनिरपेक्षीकरण में आधुनिक शिक्षा, फिल्म, रेडियो, समाचार–पत्र आदि अनेक कारकों का महत्वपूर्ण हाथ है। भारत एक लौकिक राज्य है।

9. **व्यवसायों का धर्मनिरपेक्षीकरण**:– प्राचीन हिन्दु समाज में व्यवसायों का चुनाव धार्मिक आधार पर किया जाता था। आजकल नयी पीढ़ी के लोग व्यवसाय के चुनाव में अपने परम्परागत व्यवसाय को करना आवश्यक नही समझते थे और जो भी व्यवसाय आर्थिक दृष्टि से अधिक उपयुक्त दिखलाई पड़ता था वही व्यवसाय करने लगते थे। यह प्रवृत्ति सबसे अधिक ब्राम्हण जाति में दिखाई पड़ती है। स्वाभाविक है कि इससे ब्राम्हणों के जीवन का धर्मनिरपेक्षीकरण हुआ है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नः–

प्र01 धर्मनिरपेक्षीकरण के कारकों के बारे में समझाइयें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14.5 सारांशः–

प्रस्तुत इकाई में धर्मनिरपेक्षीकरण किसे कहते है? इसके लक्षण क्या है को विस्तार पूर्वक समझाया गया है। तथा इसी ईकाई में धर्मनिरपेक्षीकरण के प्रभावों के बारे में भी बताया गया है। इसके साथ ही साथ धर्मनिरपेक्षीकरण के कारको को भी विस्तार से समझाया गया है।

14.6 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1. धर्मनिरपेक्षीकरण का एक मुख्य लक्षण विवकेशीलता है इसमें व्यक्ति अपने जीवन में उठने वाली प्रत्येक समस्या पर अपने विवके से विचार करता है। और उस सम्बन्ध में धर्म पुस्तकों मे लिखी हुई बातों को विशेष महत्व नही देता। विवेकशील व्यक्ति और सामाजिक जीवन में प्रत्येक बात का विवेक के द्वारा निश्चित करने का प्रयास करता है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. विवेकषीलता को धर्म निरपेक्षीकरण का एक प्रमुख लक्षण आप कैसे मानते हैं?
2. परिवार पर धर्म निरपेक्षीकरण का क्या प्रभाव पड़ा है?
3. धर्म निरपेक्षीकरण के कारक के रूप में राजनीतिक संगठनों का क्या योगदान है?

2. विवाह विच्छेद की व्यवस्था और सिविल मैरिज की व्यवस्था हो जाने से हिन्दु विवाह का और भी अधिक धर्मनिरपेक्षीकरण हो गया है। परिवार की संस्था में धर्मनिरपेक्षीकरण को प्रभाव सबसे अधिक सदस्यों की दिनचर्या निर्धारित करता है। ब्राम्हणों के लिये पूजा–पाठ, संस्था, यज्ञ आदि का विधान है परन्तु धर्मनिरपेक्षीकरण के प्रभाव से बाम्हण परिवारों में भी बहुत कम लोग नित्य कर्म में निर्धारित इन कार्यक्रमों को करते देखे जाते हैं। स्त्रियो में शिक्षा के प्रभाव से परिवार में चूल्हें चौके का धर्मनिरपेक्षीकरण हुआ है। और उसमें धर्म का प्रभाव तथा शुद्धि और अशुद्धि का विचार लगभग उठ ही गया है।

   पढ़े–लिखे लोग होली, दीपावली, और त्योंहारों को उनके धार्मिक महत्व के कारण नही बल्कि उनके सामाजिक और मनौवैज्ञानिक महत्व के कारण मनाते है। समय–समय पर यज्ञ आदि अब भी किये जाते है परन्तु उनसे पुण्य कमानें के स्थान पर वायु के स्वच्छ हाने के महत्व पर अधिक बल दिया जाता है। परिवार की संस्था में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। और उसके अनेक कार्य अन्य समितियाँ लेती जा रही है। विभिन्न परिवारो में मेल मिलाप धार्मिक कारणों से नही बल्कि सामाजिक कारणों से होता है।

3. राजनीतिक संगठनों का योगदानः– आधुनिक काल में जहाँ अनेक राजनीतिक संगठनों ने हिन्दु धर्म पर सीधा आघात किया है। वहाँ हिन्दु महासभा, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और शिव सेना जैसे दक्षिणी पंथी संगठनों ने हिन्दु धर्म के सुधार पर जोर देकर धर्मनिरपेक्षीकरण को प्रोत्साहित किया है। इस वामपंथी और दक्षिण पंथी दोनों ही प्रकार के राजनितिक संगठनों ने देश में धर्म के महत्व को कम करने और धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने का कार्य किया है।

14.7 परिभाषिक शब्दावलीः–

1. **लौकिकीकरण** – धर्मनिरपेक्षीकरण
2. **दक्षिणपंथी** – ऐसे संगठन जो धर्म के सुधार पर जोर देते है अथवा बढावा देते है।
3. **पाश्चात्य संस्कृति**– विदेशी सभ्यता एवं संस्कार (यूरोप एवं अमेरिकी सभ्यता)

14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

1. डा0 रामनाथ शर्मा एवं डा0 गजेन्द्र कुमार शर्मा, भारतीय समाज, संस्थायें और संस्कृति, ऐटलांटिक पब्लिकेशन एडं डिस्ट्रीब्यूटर्स
2. V. Indra Devi, secularization of Indian mind, Rawat Publication
3. M.N Srinivas, Social change in modern India.

NOTES

ईकाई – 15

सार्वभौमिकरण
Globalization

ईकाई की रूपरेखाः–

15.0 उद्देश्य।
15.1 प्रस्तावना।
15.2 सार्वभौमिकरण की अवधारणा।
15.3 ऐतिहासिक सन्दर्भ में सार्वभौमिकरण।
15.4 सार्वभौमिकरण के उद्देश्य।
15.5 सार्वभौमिकरण के विकास के कारण।
15.6 सार्वभौमिकरण के प्रेरक।
15.7. भारत में सार्वभौमिकरण।
15.8 सार्वभौमिकरण की ओर कदम।
15.9 सार्वभौमिकरण के प्रभाव।
15.10 सार्वभौमिकरण और राष्ट्रीय सम्प्रभूता।
15.11 सारांश।
15.12 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर
15.13 पारिभाषिक शब्दावली।
15.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

15.0 उद्देश्यः–

इस ईकाई को पढ़ने के बाद आप–

(1) सार्वभौमिकरण क्या है? तथा सार्वभौमिकरण के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के बारे में जान सकेंगे।

(2) सार्वभौमिकरण के उद्देश्य को समझ सकेंगे।

(3) सार्वभौमिकरण के विकास के कारणों को जान सकेंगे।

(4) भारत में सार्वभौमिकरण की स्थिति को समझ सकेंगे।

(5) सार्वभौमिकरण के प्रभाव को जान सकेंगे।

(6) सार्वभौमिकरण के प्रेरको के बारे में समझ सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना :

साधारण शब्दों में सार्वभौमिकरण का अर्थ है। देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करना। भारतीय संदर्भ में इसका अर्थ है विदेशी कंम्पनियों का भारत की विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में निवेश करने की अनुमति देकर अर्थव्यवस्था को विदेशी निवेश के लिए खोलना विदेशी विनियम नियंत्रण अधिनियम जैसे कानूनों का धीरे–धीरे समाप्त करके बहुराष्ट्रीय नियमों को देश में आने की व भारतीय कंम्पनियों को विदेशी कंम्पनियों के साथ सहयोग करने की अनुमति देना तथा दूसरे देशों में संयुक्त परियोजनाएं चालू करने के लिए प्रोत्साहित करना। मात्रात्मक प्रतिबंधों के स्थान पर धीरे–धीरे प्रशुल्कों को प्रतिस्थापित करना और धीरे–धीरे उनको भी कम कर देना जिससे आयात उदारीकरण कार्यक्रमों को व्यापक आधार पर लागू किया जा सके तथा कई तरह के निर्यात प्रोत्साहन (जैसे नगद मुआवाजा सहायता शुल्क वापसी की व्यवस्था, आयात पुनः पूर्ति योजना राजकोषीय रियायतों इत्यादि के स्थान पर विनिमय दर में परिवर्तनों द्वारा निर्यात को प्रोत्साहन देना।

सार्वभौमिकरण की दिशा में भारत सरकार ने आठवें दशक के प्रारम्भ में ही प्रयास करने शुरू कर दिए थे। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विदेशी पूंजी को बहुत सी रियायतें दी गई बहुत से ऐसे क्षेत्रों में बहुराष्ट्रीय नियमों को काम करने की अनुमति नही थी। विदेशी विनिमय नियम आधिनियम को कड़ाई से लागू नहीं किया। आयात उदारीकरण की प्रक्रिया को तेज किया गया तथा विनियम दर में लगातार मूल्यहास (Depreciation) द्वारा निर्यातों को प्रोत्साहित करने का प्रयास किया गया। परन्तु सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया में तेजी भारत सरकार द्वारा जुलाई 1991 में लागू की गई नई आर्थिक नीति के परिणाम स्वरूप आई जो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक के दबाब के कारण अपनाई गई थी। यही कारण है कि आजकल के आर्थिक विवेचन में सार्वभौमिकरण को जुलाई 1991 में अपनाई गई आर्थिक नीति और उसके बाद के बजटों में अपनाई गई उदारीकरण की नीतियों के साथ जोड़ा है।

15.2 सार्वभौमिकरण की अवधारणाः–

सार्वभौमिकरण की अवधारणा को निम्न लिखित तथ्यों के माध्यम से समझा जा सकता है–

1. सार्वभौमिकरण दुनिया के राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के बीच अतः स्वत्रंता एवं निर्भरता में तेजी लाने की प्रक्रिया का नाम है। यह राज्यों के अर्थव्यवस्था के संचालित करने के अधिकार में कटौती करती है।

2. सार्वभौमिकरण का निहितार्थ यही है कि दुनिया तेजी से अंतराष्ट्रीय अतः निर्भरता की प्रक्रिया में शामिल होती जा रही। नतीजतन आज वैसी अर्थव्यवस्थाएँ अप्रासंगिक हो गयी है जिनकी कोई खास राष्ट्रीय पहचान हो तथा जो क्षेत्र विशेष के सर्वोपरि विधानी अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत संचालित हो।

2. नब्बे के दशक में सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया शुरू हुई है। विश्व व्यापार संगठन के रूप में नई संस्थाए एवं नये नियमों का जन्म हुआ। आज इन्ही संस्थाओं एवं नियमों के जरिए विश्व व्यापार का संचालन होता है।

3. आर्थिक गतिविधियों का राष्ट्रीय सीमाओं से पार विस्तार सार्वभौमिकरण का केन्द्र बिन्दु है।

4. यह उस प्रक्रिया का प्रतनिधित्व करता है। जो बढ़ते हुई आर्थिक निर्भरता का धोतक है।

5. सार्वभौमिकरण वस्तुओं, सेवाओं पूँजी तकनीक और सूचना के शब्दों के पार गतिविधियों का प्रतनिघित्व करता है।

6. सार्वभौमिकरण आर्थिक गतिविधियों के संगठन से जुड़ा है। जो कि राष्ट्रीय सीमाओं को नकारती है।

7. इस प्रक्रिया को मुनाफे की संकल्पना और बाजार में प्रतियोगिता के खतरे से बल प्राप्त होता है।

8. सार्वभौमिकरण प्रक्रिया की एक मौलिक विशेषता बढ़ते हुए क्रम में खुलापन है। जिसके तीन आयम है।

   1 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

   2 अन्तर्राष्ट्रीय निवेश

   3 अन्तर्राष्ट्रीय वित

9. सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को बतलाती है कि सीमा रहित अर्थव्यवस्था है। इसकी विशेषता वस्तुओं एवं सेवाओं का मुफ्त प्रवाह है।

15.3 ऐतिहासिक सन्दर्भ में सार्वभौमिकरणः–

सार्वभौमिकरण की शुरूआत के बाद समय–समय पर आवश्यकताओं एवं आर्थिक बदलाव के साथ–साथ इसके स्वभाव में भी बदलाव आता गया। इन बदलावों व सार्वभौमिकरण के बदलते स्वरूप को इस प्रकार से समझा जा सकता है।

1. 1930 के दशक में आर्थिक मंदी के प्रभाव से अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था पतन की ओर अग्रसर था। इस पतन में आर्थिक राष्ट्रवाद एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में था।

2. द्वितीय विश्व युद्ध के पष्चात एक नयी अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था के निर्माण की दिशा में प्रयास शुरू हुआ इन प्रयासों के अन्तर्गत एक नया दृष्टिकोण उभरकर सामने आया इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत मुख्य बल इस बात पर था कि बाजारी शक्ति स्वस्थ्य समृद्धि को प्रोत्साहन नही दे सकती है।

3. इस दृष्टि के अन्तर्गत आर्थिक राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को भी नकारा गया। इसके साथ–साथ राष्ट्रीय सरकारों की भूमिका के महत्व को स्वीकार किया गया। इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत वस्तुतः विभिन्न राष्ट्रीय सरकारो की सम्मिलित भूमिका को स्वीकार किया गया।

4. यह नयी अर्न्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था आंग्ल अमेरिका योजना का परिणाम था इस योजना की प्रमुख विषय वस्तु आर्थिक राष्ट्रीयता के विकास को रोकना तथा मुक्त व्यापार को प्रोत्साहन देना था इसके साथ–साथ अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को भी प्रोत्साहन देना था।

5. इस योजना में उदारवादी आर्थिक क्षेत्र पर बल दिया गया।

6. ब्रिटेन बुड्स में आंग्ल–अमेरिका योजनाः– पर चर्चा के लिऐ एक सम्मेलन का आयोजन किया गया व इस योजना पर सर्वसहमती बनी। इस योजना से यनी अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था का आधार तैयार हुआ है। जिसे ब्रिटेन बुडस –प्रणाली कहा जाता है।

7. यह प्रणाली संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के नेतृत्व में विकसित हुई तथा अंतर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था में यह पहला सामूहिक प्रयास था।

8. इस प्रणाली से आई0एम0एफ0 विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन का उद्गम हुआ। प्रारम्भ में प्रथम दो ही अस्तिव में आया लेकिन तीसरे के स्थान पर 'गेट' आया

9. यह व्यवस्था 40, 50, व 60 के दशक में चलती रही लेकिन 80 के दशक में इस व्यवस्था में पतन आ गया तथा पतन का कारण तेल संकट तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के द्वारा ब्रिटेन बुड्स के सिद्धान्तों के पालन करने से विमुख होना था।

10. 80 का दशक विकसित राष्ट्रों के लिये एक संकट का दशक था संवृद्धि दर में गिरावट आयी। अस्थायित्व की स्थिति उत्पन्न हुई तथा संसाधनों कीआवश्यकता बढ़ गयी।

11. इस संकट ने 90 के दशक में सार्वभौमिकरण की पृष्ठभूमि को तैयार कर लिया।

12. गेट वार्ता के परिणामस्वरूप 1995 में विश्व व्यापार संगठन की स्थापना हुई जिससे सार्वभौमिकरण का एक सशक्त वैधानिक आधार तैयार हो गया।

15.4 सार्वभौमिकरण के उद्देश्यः–

सार्वभौमिकरण के उद्देश्य निम्नलिखित है–

1. व्यापार क्षेत्र में बाधाओं और अवरोधों को समाप्त करनाः– सार्वभौमिकरण का प्रथम उद्देश्य व्यापार क्षेत्र में आने वाली समस्या को समाप्त करना है जिससे मुक्त व स्वतन्त्र व्यापार की स्थापना की जा सके।

2. व्यापार सम्बन्धी कानूनों में एक रूपता लानाः–सार्वभौमिकरण की स्थापना का उद्देश्य विश्व के समस्त देशों में व्यापार के लिये बने कानूनों में एक रूपता लानी थी। जिससे समस्त देश एक दूसरे के साथ सरलतापूर्वक स्वतन्त्र रूप से व्यापार कर सकें।

3. स्वस्थ प्रतियोगिता को प्रोत्साहनः– सार्वभौमिकरण के अन्तर्गत व्यापार के लिऐ बने नियमों का पालन कठोरता से किया जाता है। साथ ही साथ व्यापार में गलाकाट प्रतियोगिता जैसी स्थिति ना पनपने के लिये भी कार्य किये जाते है। जिससे व्यापार में स्वस्थ प्रतियोगिता बनी रहे व गला काट प्रतियोगिता के दुष्परिणामों से बचा जा सके।

4. प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को परम मित्र राष्ट्र का दर्जा प्रदान करानाः–सार्वभौमिकरण के अन्तर्गत इस बात का ध्यान रखा जाता है की प्रत्येक सदस्य राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ किसी प्रकार भेदभाव ना कर सके साथ ही उनके आपस के सम्बन्ध स्वस्थ बनाया जाए जिससे प्रत्येक राष्ट्र एक दूसरे का सम्मान करें तथा दूसरे की उपयोगिता को समझ सके।

5. व्यापारानुकूल परिस्थितियों का निर्माण करनाः– इसके माध्यम से व्यापार क्षेत्र में ऐसे वातावरण बनाने का प्रयास किया जाता है जहाँ प्रत्येक देश दूसरे के साथ सरलतापूर्वक व्यापार कर सके तथा व्यापार के अवरोधों को दूर करते हुए लक्ष्यों की प्राप्ती कर सके।

NOTES

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

प्र01 सार्वभौमिकरण की अवधारणा को समझाइयें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

प्र02 सार्वभौमिकरण के उददेश्यों को बताइयें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

15.5 सार्वभौमिकरण के विकास के कारणः–

सार्वभौमिकरण के विकास में निम्नलिखित कारणों व शक्तियों के कारण इसका विकास हुआ।

1. तेल संकट, ओपेक एवं संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की भूमिका खगोलीकरण (सार्वभौकिरण) के विकास का प्रमुख कारण था। इससे शैक्षिक अर्थव्यवस्था अंतराष्ट्रीय से परिवर्तन होकर राष्ट्रपारीय हो गयी।
2. क्षेत्रीय आर्थिक सहयोग जैसे यूरोपीय संघ इत्यादी से सार्वभौमिकरण को बल मिला।
3. राष्ट्रपारीय कम्पनियों की भूमिका से आर्थिक गतिविधियों का राष्ट्रीय सीमाओं से पार विस्तार हुआ है।

4. बहुपक्षीय व्यापार वार्ताये जो कि गेट के निर्देशन में हुई जिससे सार्वभौमिकरण को बल मिला यह बहुपक्षीय वार्ता का प्रतिनिधित्व करता है।

5. विश्व व्यापार संगठन की स्थापना से सार्वभौमिकरण को विशेष बल मिला।

6. संचार क्षेत्र में क्रांति, कम्प्यूटर एक विकसित तकनीक के रूप में उभरा जिससे वैश्विक गाँव की अवधारणा को बल मिला। विश्व बैंक कि स्थापना व प्रभाव के कारण एकीकरण व वैश्विकरण पर ज्यादा जोर पड़ा।

15.6 सार्वभौमिकरण के प्रेरकः–

आज के विश्व में सार्वभौमिकरण की दर के बढ़ने के पीछें कौन–सी प्रक्रियाएँ है? गिडैन्स (2001) सूचना प्रोद्योगिकी, शीतयुद्ध की समाप्ति अंतराष्ट्रीय संस्थानों की वृद्धि और पराराष्ट्रीय निगमों के विकास को बढ़ते हुए सार्वभौमिकरण के लिए उत्तरदायी कारक मानते है।

सूचना और संचार का विस्तार

संचार में सुधार के बिना वैश्विक जगत् संभव नहीं होगा। अधिक समाकलन और परस्पर संबद्धता के लिए, दूर–दूर स्थित लोगों के बीच सूचना का द्रुत प्रवाह और तीव्र संचार नेटवर्क होने चाहिए। मध्ययुगीन विश्व के लोग जलयानों में यात्रा करते थे। परन्तु पिछली शताब्दी में हवाई यात्रा में द्रुत विकास देखा गया जिससे विश्व के सभी भाग जुड़ गए। सबसे महत्वपूर्ण संदेश और सूचना का प्रवाह है, जिससे हम उस युग में आ गए है जिसे ''सूचना का युग'' कहा जाता है। आज कम्प्यूटर का माउस दबाने से ही वाशिंगटन में बैठे किसी व्यक्ति से बात करना और तत्काल संदेशों, डाटा फाइलों को दूरस्थ स्थित लोगो के पास भेजना संभव हो गया है।

इसके अतिरिक्त संपर्क में बढ़ती इस संभावना से अनेक 'वैश्विक समुदायों' (ग्लोबल कम्युनिटीज) की वृद्धि हुई है। जिनके सदस्य इंटरनेट के द्वारा एक दूसरे से बातचीत करते है अक्सर मुद्दे राष्ट्रीय सीमाओं तक ही सीमित नही रह गए है। अब व्यक्ति एक दूसरे के जीवन में भागीदारी करते है। और विश्व के उन भिन्न भागो में मानवता के सरोकार के लिए अपनी आवाज उठाते है, जिन्हें उन्होंने कभी देखा नहीं है। विश्व भर लोग युद्ध अथवा आतंकवाद या मानव अधिकारों के हनन के विरूद्ध अथवा विकास परियोजनाओं आदि के कारण लोगो के विस्थापन के विरूद्ध कार्यवाई में भागीदारी के लिए अथवा आपदा पीड़ितों की मानवीय सहायता के लिए अर्जियों पर हस्ताक्षर करते है। यह कुछ हद तक व्यक्तियों की पहचान को परिभाषित करने में भी योगदान कर रहा है। अनेक लोग स्वंय को किसी राष्ट्र का नहीं बल्कि विश्व का नागरिक कहते है।

अन्तर्राष्ट्रीय/वैश्विक संस्थान

सार्वभौमिकरण के तहत देशों का समाकलन शासन के विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय तरीकों द्वारा सुगम होता है। आपने लीग ऑफ नेशंस/राष्ट्र संघ के विषय में पढ़ा होगा जिसे द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राष्ट्रों के बीच विवादों को एकसमान मंज पर हल करने के लिये गठित किया गया था जिससे वे युद्ध न करें। यह संघ बाद में संयुक्त संघ (युनाईटेड नेशंस ऑर्गनाइजेशन) अथवा संयुक्त राष्ट्र (यू.एन) के रूप में विकसित हुआ। इसी प्रकार 1990 के दशक में यूरोपीय संघ (ई.यू) अथवा एसिआन (दक्षिण पूर्व एशियाई देशों का संगठन) सार्क (क्षेत्रीय सहयोग के लिऐ दक्षिण एशियाई संगठन) जिसका हमारा देश भी सदस्य है, अथवा नाम (नॉन–एलाइंड मूवमेंन्ट, गुट निरपेक्ष आंदोलन) विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रों के लिए सामूहिक आधार है। गिडेन्स, ई.यू को पराराष्ट्रीय शासन का अग्रणी प्रकार मानते है क्योंकि सदस्य देशों को संघ का सदस्य बनने के लिए अपनी राष्ट्रीय संप्रभुता को कुछ हद तक छोड़ना पड़ता है। वे समान मुद्रा व समान कानूनों का पालन करते है। और उनकी एक ही यूरोपीय संसद और एक समान विदेश नीति होती है।

सार्वभौमिकरण अंतः–सरकारी संगठनों (आई.जी.ओ) और अंतर्राष्ट्रीय गैर–सरकारी संगठनों (आई.एन.जी.ओ) द्वारा भी प्रेरित हो रहा है। अंतः सरकारी संगठन वे निकाय है। जिनके सदस्य किसी गतिविधि में भागीदारी के लिए अथवा किसी ऐसे मुद्दे को संबोधित करने के लिए एकजुट होते है जो समान सरोकार का हों और इसलिए उसका क्षेत्र पराराष्ट्रीय हो। इनका विस्तार यूनीवर्सल पोस्टल यूनियन/सार्वजनिक डाक संगठन से लेकर अंतरिक्ष की खोज या ग्लोबल वार्मिंग (वैश्विक तापन में वृद्धि) तक हो सकता है। अंतर्राष्ट्रीय गैर–सरकारी संगठन ऐसे गैर–सरकारी निकाय है जो पूरी मानवता से संबंधित मुद्दों को व्यापक स्तर पर सेंबोधित करते है। उनके क्रिकलापों का विस्तार व्यापक होता है – पर्यावरणीय सुरक्षा मानव अधिकार शस्त्र नियंत्रण, ड्रग्स/मादक पदार्थो पर नियंत्रण, गरीबी उन्मूलन और शिक्षा जैसे मुद्दे इसमें शामिल है जो वास्तव में वैश्विक है। गीनपीस, एमनस्टी इंटरनेशनल, वर्ल्ड वाइल्ड–लाईफ फंड, इंटरनेशनल कोलीएशन फॉर सोवरेनिटीः द अर्थ इंस्टीटयूट आदि वैश्विक जागरूकता उत्पन्न करने और वैश्विक मुद्दों को संबोधित करने के लिए कार्य कर रहें है।

सीमा विहीन व्यापारः– पराराष्ट्रीय संगठन

सार्वभौमिकरण पराराष्ट्रीय निगमों (ट्रासनेशनल कोर्पोरेशन, टी.एन.सी.) द्वारा प्रेरित है जो विश्व स्तर पर कार्य करते है। अनेक टी.एन.सी स्वंय को बहुराष्ट्रीय निगम (एम.एन.सी) कहलाना पसंद करते है। क्योंकि ये उनके सही प्रचालन को प्रकट करता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, ये विश्व बाजार (ग्लोबल मार्केट) में कार्य संचालन करते है।

वास्तव में, अधिकतर अंतर्राष्ट्रीय व्यापार इन एम.एन.सी के द्वारा किया जाता है जो सरकारों की ओर से व्यापार करते है।

टी.एन.सी. द्वारा ऐसे प्रचालन कैसे सुगम होते है? जैसा कि हमने देखा कि सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों (आई.सी.टी.) ने वित्त के क्षेत्र में भी क्रांति ला दी है। बैंक वित्तीय संस्थान, स्टॉक बाजार 'माउस के दबाने' से ही कार्य करने लगते है और विश्व के एक कोने से दूसरे में धन का स्थानांतरण कुछ सेकेन्ड में हो जाता है। यद्यपि इसमें खतरा भी है। कुछ सेकेंड में ही पूँजी और निवेशों की अर्थव्यवस्था में से हेरफेर हो जाने से अर्थव्यवस्था लड़खड़ा सकती है जैसा 1990 के दशक के अंत में दक्षिण पूर्वी एशियाई मुद्रा संकट के समय हुआ था। ये कहा जाता है कि 'एशियाई चीते' कुछ ही सेकेंड में 'एशियाई मेमने' बन कर रह गए थे।

विश्व राजनैतिक परिदृश्य में परिवर्तन

विश्व ने 1980 के दशक में वैश्विक नीति में बड़े परिवर्तन देखे। 1980 के दशक के अंत में यू.एस.एस.आर के पतन और शीतयुद्ध के अंत के बाद सत्ता के दो खंडो यू0एस0 और पश्चिमी देश पूँजीवादी खंड को प्रदर्शित करते थे और पूर्वी यूरोपीय देश जैसे पूर्व चेकोस्लोवाकिया, पौलेंड हाँगकाँग ईस्टोनिया, लात्विया आदि जो समाजवादी खंड को प्रदर्शित करते थे– का अंत हो गया। इस खंड से अनेक नये देश विकसित हुए जो व्यापार, वाणिज्य और निवेश के लिए पश्चिम यूरोपीय देशों और यू.एस. के निकट आना चाहते थे। इससे पिछले युग का अंत हुआ और अब सभी देश धीरे–धीरे एक समेकित विश्व में एक साथ संगठित हो रहे है।

15.7 भारत में सार्वभौमिकरणः–

1980–81 के बाद से भारत को भुगतान शेष के क्षेत्र में गम्भीर समस्या का सामना करना पड़ा है। दूसरे तेल झटके ने भारत के आयात व्यय में तेज वृद्धि कर दी परन्तु निर्यात आय में बहुत कम वृद्धि हो पाई इसके परिणामस्वरूप व्यापार क्षेत्र में घाटा बहुत बढ़ गया। सातवीं पंचवर्षीय योंजना के दौरान विदेशों से प्रेषण (foreign Remittances) में भी वृद्धि नही हो पाई।

इसका परिणाम यह हुआ कि अदृश्य मंदो से शुद्ध आय सातवीं योजना में हाने वाले व्यापार घाटा के केवल 25 प्रतिशत की ही भरपाई कर सकी। 1990–91 के खाड़ी संकट से स्थिति और गंभीर हो गई। इस वर्ष 16.934 करोड़ रूपये का व्यापार घाटा हुआ। इतना ही नहीं पूरे नौवें दशक में भारत की विदेशी वाणिज्य उधार तथा अनिवासी भारतीयों की जमा राशियों पर निर्भरता लगातार बढ़ती गई क्योंकि रियायती दरो पर प्राप्त विदेशी सहायता आवश्यकता से कही कम थी।

NOTES

साथ ही साथ शुद्ध मदों से आय भी ऋणात्मक थी। इसके परिणाम स्वरूव 19990.1991 में चालू खातें में 17.369 करोड़ रूपये का भारी घाटा हुआ।

1990–91 में भुगतान शेष में भारी घाटा होने पर कुछ विश्व संस्थाओं में भारत के साख मान (Credit Rating) को गिरा दिया। जिससे विदेशी निवेश्को का भारतीय अर्थव्यवस्था में विश्वास को धक्का गला। देश में व्याप्त राजनैतिक अस्थिरता ने समस्या को और गंभीर रूप दिया! इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि विदेशी निवेशकों ने बडी मात्रा में अपनी पूँजी को भारत से निकालना शुरू कर दिया।

अनिवासी भारतीयों के खाते में से अक्टूबर 1990 से 1991 की दूसरी तिमाही तक प्रतिमाह 300 मिलियन डालर निकाले जाते रहे। जनवरी 1991 में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से 1800 मिलियन डालर की सहायता लेने के बावजूद, आयातों पर कठोर नियन्त्रण लगाने के बावजूद, तथा विदेशी बैंको में स्वर्ण गिरवी रखने पर मजबूर हो गया। परन्तु इसके बावजूद संकट से बचा नहीं जा सका। जून 1991 तक आते–आते विदेश मुद्रा भंडार 1,100 मिलियन डालर रह गया। जो दो सप्ताह की आयात आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए काफी नहीं थे। ऐसा लगने लगा कि भारत अपनी ऋण सेवा (Debt Servicing) संम्बन्धी दायित्वों को भी नहीं निभा पाएगा। स्पष्ट है कि स्थिति उत्यन्त गंभीर हो गई और इस कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष या विश्व बैंक से सहयता ली जाए। सहायता तो भारत को आवश्यक मिली परन्तु इन विश्व संस्थाओं की शर्तो पर। इन शार्त्रो की प्रमुख बात यह भी कि भारत सरकार, स्थायित्व एवं संरचनात्मक समायोजना कार्यक्रमों को लागू करें।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक के दबाव में आकर भारत सरकार ने 1991 में जो स्थायित्व एवं संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम लागू किया उसके निम्नलिखित तीन हिस्से थे।

1. स्थायित्व जिसका मूलतः अर्थ यह था कि राजकोषीय घाटे को तथा मुद्रा पूर्ति में वृद्धि की दर को कम किया जाए।

2- घरेलू क्षेत्र में अपनाई जाने वाली नीतियों का उदारीकरण जिसका अर्थ हैं उत्पादन निवेश, कीमतों इत्यादि पर लगाए जाने वाले नियन्त्रण को कम करना तथा सांधनों के आवंटन को बाजार निर्देषों द्वारा निर्धारित करना।

3- विदेशी आर्थिक नीति में उदारीकरण करना अर्थात वस्तुओं, सेवाओं प्रौघोगिकी और पूँजी के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह पर लगाए गए नियन्त्रणों से कम करना और अंततः समाप्त कर देना।

इस प्रकार हम यह कह सकते है की 1990–91 की आर्थिक परिस्थितियों ने भारत को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक द्वारा थोपे गए संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम को अपनाने के लिए विवश कर दिया। क्योकि सार्तभौमिकरण इस संरचना समायोजन कार्यक्रम का ही एक हिस्सा है। इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा की 1990–91 की विकट आर्थिक स्थिति के कारण ही भारत को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक के दबाब में आकर सार्वभौमिकरण की नीति अपनानी पड़ी।

15.8 सार्वभौमिकरण की ओर कदमः–

1991 के बाद भारत सरकार द्वारा सार्वभौमिकरण की तरफ उठाए गए प्रमुख कदम इस प्रकार है।

1. विनिमय दर समायोजन और रूपये की परिवर्तनीयताः–

परिवर्तनीयताः–किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थ व्यवस्था के साथ एकीकृत करने की मुख्य विधि यह है कि उसकी मुद्रा को पूर्णरूपेण परिवर्तनीय बना दिया जाए अर्थात बिना सरकारी हस्तक्षेप के उसे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अपनी विनिमय दर ढूढने के लिए तिरने (Float) की छुट दी जाए। इस कदम के साथ–साथ यह भी आवश्यक होता है कि विनिमय नियन्त्रणों को एक क्रमबद्ध ढंग से धीरे–धीरे कम किया जाए और अततः पूर्णतया समाप्त कर दिया जाए।

2. आयात उदारीकरणः–

1990 में प्रकाशित अपनी रिर्पाट (India Strategy for Trade Reform) में विश्व बैंक ने यह सुझाव दिया था कि आयात उदारीकरण को बडे पैमाने पर लागू किया जाए।

इसके अन्तर्गत प्रमुख सुझाव थे। केवल एक ऋणात्मक (प्रतिबंधक) सूची रखी जाएं और जो वस्तुएं इस सूची में नहीं है उनके आयात की पूरी छूट दी जाए, सभी वस्तुओं पर आयात प्रशुल्क दरों को कम किया जाए तथा भरतीय अर्थव्यस्था में पूँजीगत वस्तुओं मध्यवर्ती वस्तुओं कच्चे माल तथा उपभोक्ता वस्तुओं के आयात की और सुविधाए दी जाए।

3. विदेशी पूँजी को और सुविधाएः–

विदेषी पूँजी को आकर्षित करने के लिए तथा भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत करने के लिए भारत सरकार ने विदेशी निवेशकों के लिए द्वारा खोल दिया। है जैसा कि विदेशी पूँजी और सहायता के विषय में तथा बहुराष्ट्रीय

निगम विदेशी विनिमय अधिनियम तथा विदेशी विनिमय प्रबन्धन अधिनियम के सन्दर्भ में कहा गया है विदेशी निवेशकों को तथा अनिवासी भारतीयों को नई आर्थिक नीति में कई रियायतें व सुविधायें प्रदान की गई है।

15.9 सार्वभौमिकरण के प्रभावः–

सार्वभौमिकरण के प्रभाव को इस प्रकार समझा जा सकता है।

1. परम्परागत और देशी उत्पादों के आधार पर आधुनिक उत्पादों को बल मिला है अर्थात देशी उत्पाद आधुनिक उत्पादों से प्रतिस्थापित हुए परम्परागत हस्तशिल्पों के पतन की स्थिति उत्पन्न हुई है।

2. इससे विकासशील देश के निर्यात को प्रोत्साहन मिला है। कुछ विकासशील देशों ने इस प्रगति को हाल के दिनों में दर्शाया है

3. सार्वभौमिकरण से असमानता की स्थिति को भी बल मिला है। प्रजातांत्रिक तत्वों की अनुपस्थिति से यह परिणाम सामने आया है।

4. उत्पादन प्रक्रिया में महत्वपूर्ण परिवर्तन कम्पनियों के उस क्षेत्र में प्रवेश जहाँ श्रम सस्ता है।

5. सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया न राज्य के नियन्त्रण व हस्तक्षेप की प्रक्रिया को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है। राज्यों की ओर से संस्थापक प्रयास सहायिकी प्रशुल्क आदि को कम किया जा रहा है।

6. श्रमिको के प्रवसन को बल मिला है इससे नये प्रसार के सामाजिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई है।

7. सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया से शोषण प्रक्रिया को बल मिला इससे उत्तर के विकसित देशों की प्रभावशाली स्थिति स्थापित हुई है।

8. प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण के आभाव से विकासशील देशों को लाभ बहुत कम हुआ है। सार्वभौमिकरण के लाभ मुख्यतः विकसित राष्ट्रो को ही मिले है।

9. सामाजिक संघर्ष की स्थिति कई समाजो में अपखंडन की स्थिति तथा अपनी पहचान को स्थापित करने से जुड़े आन्दोलनों का उदय जैसेः– धार्मिक, राष्ट्रवादी, प्रजातांत्रिक पहचान इत्यादि।

10.

स्वप्रगति परीक्षण

1. सार्वभौमिकरण की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए कोई तीन तथ्य प्रस्तुत करें।
2. सार्वभौमिकरण के कोई तीन उद्देश्य लिखें।

NOTES

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नः–

प्र01 सार्वभौमिकरण के भारत पर पडने वाले प्रभावों के बारे में बताइयें।

.....

.....

.....

.....

.....

प्र02 सार्वभौमिकरण के प्रेरको के बारे में विस्तार से समझाइयें।

.....

.....

.....

.....

.....

15.10 सार्वभौमिकरण और राष्ट्रीय सम्प्रभुताः–

सार्वभौमिकरण और राष्ट्रीय सम्प्रभुता के बीच सम्बन्धों को निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर समझा जा सकता है।

1. सार्वभौमिकरण की प्राथमिकताऐं एवं राष्ट्रीय प्राथमिकताएं परस्पर विरोधी है। विकासशील देशों की सार्वभौमिकरण व्यवस्था से राष्ट्रीय हित प्रतिकूल रूप से प्रभावित भी हुए है।

2. विश्व व्यापार संगठन एक सर्वोच्च विधायी निकाय के रूप में स्थापित हुआ जो कि राष्ट्रीय आर्थिक नीतियों को प्रभावित करता है।

3. हाल के दिनों में विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानो में राष्ट्रीय विनमय को एक नयी दिशा प्रदान की गयी। इस स्थिति में ये राष्ट्रों की आर्थिक सम्प्रदाय को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।

4. किसी राष्ट्र के परिपेक्ष्य में विश्व व्यापार संगठन की प्रभाव वस्तुतः वाह्य प्रभाव कों बतलाया है जो कि राष्ट्रीय संप्रभुता का दमन है।

इस प्रकार से हम कह सकते है की किसी राष्ट्र में सार्वभौमिकरण के बढ़ने से उस राष्ट्र की राष्ट्रीय सम्प्रभुता घटने लगती है।

15.11 सारांश

प्रस्तुत ईकाई में सार्वभौमिकरण क्या है? तथा इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या है? इसके बारे में विस्तार पूर्वक समझाया गया है। इसी ईकाई में सार्वभौमिकरण के विकास के कारणों तथा भारत में इसके प्रभावों को विस्तार से समझाया गया है। इसके साथ ही साथ सार्वभौमिकरण के प्रेरक तत्वों तथा सार्वभौमिकरण एवं राष्ट्रीय सम्प्रभुता के बारे में बताया गया है।

15.12 स्वप्रगति परीक्षण–प्रश्नों के उत्तर

1. (1) सार्वभौमिकरण दुनिया के राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के बीच अतः स्वत्रंता एवं निर्भरता में तेजी लाने की प्रक्रिया का नाम है। यह राज्यों के अर्थव्यवस्था के संचालित करने के अधिकार में कटौती करती है।

   (2) सार्वभौमिकरण का निहितार्थ यही है कि दुनिया तेजी से अंतराष्ट्रीय अतः निर्भरता की प्रक्रिया में शामिल होती जा रही। नतीजतन आज वैसी अर्थव्यवस्थाएँ अप्रासंगिक हो गयी है जिनकी कोई खास राष्ट्रीय पहचान हो तथा जो क्षेत्र विशेष के सर्वोपरि विधानी अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत संचालित हो।

   (3) नब्बे के दशक में सार्वभौमिकर ण की प्रक्रिया शुरू हुई है। विश्व व्यापार संगठन के रूप में नई संस्थाए एवं नये नियमों का जन्म हुआ। आज इन्ही संस्थाओं एवं नियमों के जरिए विश्व व्यापार का संचालन होता है।

   (4) आर्थिक गतिविधियों का राष्ट्रीय सीमाओं से पार विस्तार सार्वभौमिकरण का केन्द्र बिन्दु है।

   (5) यह उस प्रक्रिया का प्रतनिधित्व करता है। जो बढ़ते हुई आर्थिक निर्भरता का धोतक है।

सार्वभौमिकरण वस्तुओं, सेवाओं पूँजी तकनीक और सूचना के शब्दों के पार गतिविधियों का प्रतनिधित्व करता है।

2. सार्वभौमिकरण के उद्देश्य निम्नलिखित है–

(1) व्यापार क्षेत्र में बाधाओं और अवरोधों को समाप्त करनाः– सार्वभौमिकरण का प्रथम उद्देश्य व्यापार क्षेत्र में आने वाली समस्या को समाप्त करना है जिससे मुक्त व स्वतन्त्र व्यापार की स्थापना की जा सके।

(2) व्यापार सम्बन्धी कानूनों में एक रूपता लानाः–सार्वभौमिकरण की स्थापना का उद्देश्य विश्व के समस्त देशों में व्यापार के लिये बने कानूनों में एक रूपता लानी थी। जिससे समस्त देश एक दूसरे के साथ सरलतापूर्वक स्वतन्त्र रूप से व्यापार कर सकें।

(3) स्वस्थ प्रतियोगिता को प्रोत्साहनः– सार्वभौमिकरण के अन्तर्गत व्यापार के लिऐ बने नियमों का पालन कठोरता से किया जाता है। साथ ही साथ व्यापार में गलाकाट प्रतियोगिता जैसी स्थिति ना पनपने के लिये भी कार्य किये जाते है। जिससे व्यापार में स्वस्थ प्रतियोगिता बनी रहे व गला काट प्रतियोगिता के दुष्परिणामों से बचा जा सके।

3. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक के दबाव में आकर भारत सरकार ने 1991 में जो स्थायित्व एवं संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम लागू किया उसके निम्नलिखित तीन हिस्से थे।

(1) स्थायित्व जिसका मूलतः अर्थ यह था कि राजकोषीय घाटे को तथा मुद्रा पूर्ति में वृद्धि की दर को कम किया जाए।

(2) घरेलू क्षेत्र में अपनाई जाने वाली नीतियों का उदारीकरण जिसका अर्थ हैं उत्पादन निवेश, कीमतों इत्यादि पर लगाए जाने वाले नियन्त्रण को कम करना तथा सांधनों के आवंटन को बाजार निर्देषों द्वारा निर्धारित करना।

(3) विदेशी आर्थिक नीति में उदारीकरण करना अर्थात वस्तुओं, सेवाओं प्रौघोगिकी और पूँजी के अन्तर्राष्ट्रीय प्रवाह पर लगाए गए नियन्त्रणों से कम करना और अंततः समाप्त कर देना।

इस प्रकार हम यह कह सकते है की 1990–91 की आर्थिक परिस्थितियों ने भारत को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक द्वारा थोपे गए संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम को अपनाने के लिए विवश कर दिया। क्योकि सार्तभौमिकरण इस संरचना समायोजन कार्यक्रम का ही एक हिस्सा है। इसलिए यह कहना गलत नहीं

स्वप्रगति परीक्षण

3. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष तथा विश्वबैंक के दबाव में आकर भारत सरकार ने 1991 में स्थायित्व और संरचनात्मक समायोजन के जो कार्यक्रम लागू किया उसके तीन हिस्से कौन–कौन थे ?

होगा की 1990–91 की विकट आर्थिक स्थिति के कारण ही भारत को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक के दबाब में आकर सार्वभौमिकरण की नीति अपनानी पड़ी।

15.13 पारिभाषिक शब्दावलीः–

1. सार्वभौमिकरण–वैश्वीकरण / भूमण्डलीकरण / खगोलीकरण
2. आई0एम0एफ0–अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक कोष
3. गलाकाट प्रतियोगिता– ऐसी प्रतिस्पर्धा जिसमें एक दूसरे आगे बढने के लिए घाटे का भी व्यवसाय किया जाता है।
4. सम्प्रभुता– ऐसी व्यवस्था जिसमें स्वयं निर्णय लेने का अधिकार हो।

5.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

1. Alok Ray, “External Sector liberalisation in India” Economic & Political Weekly, Oct. 2, 1993
2. Dalic. S, Swamy, The Political Economy of Industralization, (New Delhi) 1994.
3. भूमण्डलीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन, Class 12 N C E R T, 2007
4. भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास, Class 12 N C E R T, 2007
5. मिश्रा एवं पुरी, भारतीय अर्थव्यवस्था
6. दत्त एवं सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था